पहला संस्करण:
सितम्बर, १९५८
२५,०००

मिलने का पता :
आरटीपी सेन्टर
जामिआ नगर नई दिल्ली

मूल्य : २ रुपए ५० नए पैसे
मुद्रक : श्री जैनेन्द्र प्रेस,
जवाहर नगर, दिल्ली-६
आर्ट प्लेटों के मुद्रक
बम्बई आर्ट प्रेस, दिल्ली

भूमिका

देश में हमारी अपनी सरकार के बनते ही उसका ध्यान जिन कामों की तरफ गया उनमें से एक यह था कि नए और कम पढ़े लोगों के लिए ऐसी किताबें लिखाई जाएँ, जिन्हें वे आसानी से पढ़ और समझ सकें और उनसे लाभ उठा सकें। हमारे देश में हजारों वर्ष से किताबों के बिना पढ़ाई का रिवाज रहा है। पर अब कई कारणों से उस तरह की पढ़ाई उतना काम नहीं दे सकती, जितना पहले देती थी। अब किताबों की माँग और उनका प्रभाव दिन दिन बढ़ता जा रहा है। इसलिए आम लोगों के लिए ठीक तरह की किताबों का तैयार किया जाना और भी ज़रूरी हो गया है।

सब लोगों को पढ़ना लिखना सिखाने की नई सरकारी नीति ने इस तरह की किताबों को जल्दी से जल्दी तैयार कराने की माँग को और बढ़ा

दिया है। पढे लिखे लोगो की गिनती देश मे वढती जा रही है। अगर उन्हे अच्छी किताबे नहीं मिलेगी तो पढाई लिखाई के फैलने से देश का वल वढने की जगह हमारी कठिनाइयाँ वढ सकती है। इन नई किताबो के लिखाने मे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ उन्हे पढकर लोगो को अपनी सामाजिक और आर्थिक हालत सुधारने में मदद मिले, उनमे वुद्धि और विज्ञान की कद्र वढे और उनमे वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास हो, वहाँ ऐसा भी न हो कि भारत की पुरानी सभ्यता मे जो अच्छी वाते है उन्हें वे भूल जाएँ।

इस माँग को पूरा करने के लिए भारत सरकार ने जन सावारण के लिए 'ज्ञान सरोवर' नाम से एक विश्व कोश लिखाने की व्यवस्था की है। इस विश्व कोश की तैयारी मे यह ध्यान रखा गया है कि आम लोग इसे पढे तो आजकल की दुनिया मे जो नए नए आर्थिक और राजनीतिक विचार पैदा हो रहे है, उनको समझने लगे और विज्ञान तथा तकनीक मे जो दिन दिन वढती हो रही है उसे भी जान ले। इस तरह अपनी जानकारी वढाकर हमारे देश के लोग नए भारत के और अच्छे नागरिक वन सकेगे। इन सव वातो को इस विश्व कोश मे ऐसी भाषा में वताने की चेष्टा की गई है जो आम लोगो की भाषा है और जिसे सव आसानी से समझ सकते है। हमे आशा है कि यह विश्व कोश इन वातो को पूरा करेगा और हमारे देश के लोगो को इस तरह की वाते वताएगा, जिनसे वे अपनी पुरानी सभ्यता की सचाइयो को पूरी तरह समझते हुए आजकल के विज्ञान और वैज्ञानिक ढग की कद्र करने लगे।

—हुमायूँ कवीर

विषय-सूची

सूरज, चाँद और बुध

सूरज को हम रोज देखते हैं। देखने मे वह वहुत छोटा लगता है, पर है वहुत वडा। इतना वडा कि अदाजा लगाना कठिन है। वह हमारी पृथ्वी से लगभग १३ लाख गुना वडा है और उसके आरपार की लम्बाई पृथ्वी के आरपार की लम्बाई से लगभग सवा सौ गुनी अधिक है। इतना वडा होते हुए भी सूरज हमे छोटा दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि वह हमसे लगभग सवा नौ करोड मील दूर है।

वडी वडी दूरवीनो की सहायता से सूरज का फोटो खीचकर उस फोटो को, या गाढे रग का चश्मा लगा कर सूरज को, देखने से मालूम होता है कि उसकी सतह की सफेदी सव जगह एक जैसी नहीं है। इतना ही नहीं सतह पर कहीं कहीं काले धव्वे भी दिखाई देते हैं। उन धव्वों को 'सूरज के धव्वे' कहते हैं।

सूरज के कुछ धब्बे गड्ढे जैसे और कुछ सतह से उभरे हुए है। उनके आकार बदलते रहते है। वे घटते बढ़ते और बनते बिगड़ते रहते है। वे पूरब से पच्छिम की ओर चलते रहते हैं। जो धब्बे सूरज के बिचले भाग में है, उनकी चाल तेज़ है। उत्तरी और दक्खिनी सतह के धब्बे धीमी चाल से चलते मालूम होते है।

इन बातों से यह अनुमान किया जाता है कि सूरज हमारी पृथ्वी की भाँति ठोस नहीं है। वह कई प्रकार की गैसो का पिंड है। उसमें उफनते हुए समुन्दर की तरह हलचल मची रहती है। उसी हलचल के कारण समय समय पर उसकी सतह पर भँवर या बवंडर उठते और गिरते रहते है। वे भँवर या बवंडर ही हमें धब्बे जैसे नजर आते है।

वे धब्बे हमें काले नज़र आते है। हर धब्बे के बीच का हिस्सा गहरे काले रंग का, और इर्द गिर्द का हिस्सा हल्के काले रंग की झालर जैसा नज़र आता है। लेकिन असल में वे काले नहीं है। अधिक से अधिक काले दिखाई देनेवाले धब्बे भी हमारी तेज से तेज बिजली की रोशनी से कहीं ज्यादा चमकीले हैं। वे काले इसलिए दिखाई देते हैं कि सूरज की सतह का प्रकाश उनकी चमक को दबा लेता है। सूरज की सतह का प्रकाश धब्बों की चमक से हज़ारों लाखों गुना अधिक तेज है।

सूरज के धब्बे

बहुत कम है। यदि चाँद पर किसी ऐसे आदमी को ले जाकर तौला जाए जिसका वज़न पृथ्वी पर दो मन हो, तो चाँद पर उसका वज़न लगभग दस सेर ही होगा।

चाँद पर जो पहाड़ हैं वे पृथ्वी के पहाड़ों ही जैसे ऊँचे ऊँचे हैं। अधिकतर पहाड़ों की चोटियाँ ५,००० से १२,००० फुट तक ऊँची है। किन्तु कहा जाता है कि कुछ चोटियों की ऊँचाई २६,००० से ३३,००० फ़ुट तक भी है। हिमालय की 'एवरेस्ट' चोटी पृथ्वी की सबसे ऊँची चोटी है, जो केवल २९,१४१ फुट ऊँची है। यह बात अब मान ली गई है कि चाँद पर के ज्वालामुखी जैसे दिखाई देने वाले पहाड़ वास्तव मे ज्वालामुखी नहीं है, क्योंकि उनके भीतर से लावा नही निकलता। पर उनकी शकल को देखकर वैज्ञानिकों ने अनुमान किया कि कभी वे ज्वालामुखी पहाड़ रहे होंगे और उनसे लावा निकलता होगा। पृथ्वी के मुकाबले में चाँद पर ऐसे पहाड़ कहीं अधिक हैं। उनके मुँह आम तौर पर गोल दिखाई देते है, जिनके चारों ओर की चारदीवारियाँ दो हज़ार फ़ुट तक ऊँची है।

यदि आदमी चाँद पर पहुँच भी जाए तो वह ज़िन्दा नहीं रह सकता, क्योकि वहाँ साँस लेने तक के लिए हवा नहीं है। हवा न होने से वहाँ कुछ सुनाई भी न देगा। हवा की लहरे ही आवाज़ को हमारे कानों तक पहुँचाती हैं। चाँद पर पहुँचकर आदमी अगर जिन्दा बच जाए तो हवा का दबाव न होने के कारण उसका वज़न बहुत हलका फुलका रहेगा। वह साधारण कदम भी उठाएगा तो उसके डग पंदरह सोलह फुट के होंगे और जरा सी छलाँग में वह पचास फुट की ऊँचाई तक उछल जाएगा। वैज्ञानिको का विचार है कि पानी और हवा न होने के कारण चाँद पर जीव-जंतु न होंगे।

चाँद के जिस भाग पर सूरज का प्रकाश पड़ता है वहाँ बहुत गरमी होती है, और जो भाग सूरज के सामने नहीं पड़ता वहाँ बहुत ठंढ होती है। चाँद का एक दिन हमारे चौदह दिन के बराबर होता है। वहाँ दिन मे कड़ी गरमी और रात में खून जमा देने वाली सरदी पड़ती है।

कहते हैं चाँद हमारी पृथ्वी का ही टुकड़ा है। अब से कोई एक अरब साल पहले उसका जन्म हुआ था। तब पृथ्वी का आकार शकरकंद जैसा था और वह अपनी धुरी पर भयानक तेजी से घूमती हुई सूरज के चारों ओर चक्कर लगा रही थी। धीरे धीरे वह सिकुड़ने लगी और नारंगी की शकल की बन गई। उसी ज़माने मे उसके सिरे का एक भाग टूटकर अलग हो गया। मगर अलग हो जाने के बावजूद टूटा हुआ टुकड़ा नष्ट या गायब नहीं हुआ। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति उसे रोके
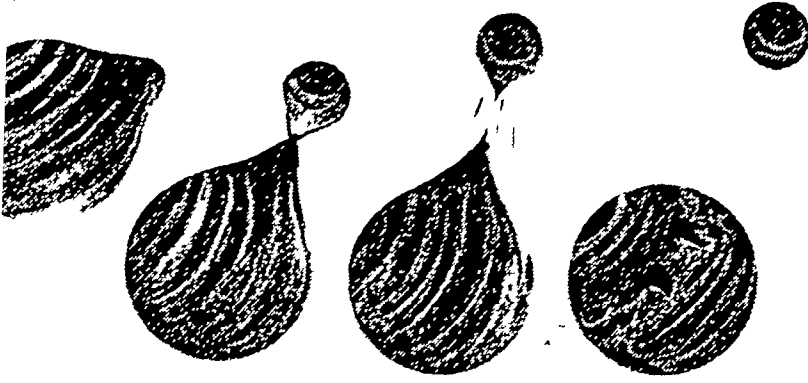
चाँद के जन्म की कल्पना

रही। वही टूटा हुआ टुकड़ा चाँद है, जो पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति मे बँधा हुआ हर घड़ी पृथ्वी के चारो ओर घूमता रहता है।

आकाश के दूसरे पिंडो के मुकाबले मे चाँद हमारी पृथ्वी के अधिक निकट है। फिर भी वह पृथ्वी से लगभग ढाई लाख मील दूर है। आजकल के साधारण हवाई जहाज़ों की चाल एक घंटे मे तीन सौ मील से कुछ ज्यादा है। यदि वे आकाश की ऊपरी सतहों पर उड़ सके तो लगभग एक महीने मे चाँद पर पहुँच सकते हैं। यद्यपि हवाई जहाज़ों का आकाश की ऊपरी सतहो मे उड़ना अभी संभव नहीं हो पाया है, फिर भी वैज्ञानिक लोगो को आशा है कि वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य के लिए चाँद की सैर करना संभव हो जाएगा।

बुध सौर-मंडल का एक ग्रह है। सौर-मंडल के बारे में 'ज्ञान सरोवर' के पहले भाग में बताया जा चुका है। सूरज और चाँद के अलावा आकाश में जो दूसरे अनगिनत चमकते हुए पिंड दिखाई देते है, उन्हे लोग आमतौर से 'तारे' कहते है। मगर ज्योतिषियो और वैज्ञानिको ने सूरज, चाँद और दूसरे पिंडो को उनके गुण और काम के अनुसार तीन श्रेणियो में बाँटा है। कुछ पिंड ग्रह कहलाते हैं, कुछ उपग्रह और कुछ तारे।

ग्रहों और तारो मे अंतर यह है कि तारे एक दूसरे के आकर्षण के दायरे मे बँधकर नही चलते फिरते। पर ग्रह तारो के आकर्षण के दायरे मे बँधकर चलते फिरते रहते है। वे कभी एक तारे के पास पहुँच जाते है और कभी दूसरे तारे के पास। ग्रहों और तारो मे एक और भी अंतर है। तारे हमारे सूरज की तरह तपते रहते है और स्वयं अपनी चमक से चमकते है। ग्रह ठंढ होते है और अपनी चमक से नही चमकते। जब उनके ऊपर सूरज का प्रकाश पड़ता है तभी वे हमे दिखाई देते है।

तारे पृथ्वी से बहुत दूर है। दूर तो ग्रह भी हैं, पर तारो की दूरी को देखते हुए ग्रहों को काफी निकट कहा जा सकता है। मोटे तौर पर समझाने के लिए कहा जा सकता है कि पृथ्वी से ग्रहों की दूरी कुछ ऐसी है जैसे बीस गज पर किसी पड़ोसी का मकान, और तारो की दूरी जैसे सात समुन्दर पार बसा अमरीका। सूरज तारा है। वह किसी और तारे के आकर्षण मे बँध कर नहीं चलता है। पृथ्वी ग्रह है क्योंकि वह सूरज के आकर्षण में बँधकर सूरज के ही चारों ओर घूमती रहती है। चाँद न ग्रह है, न तारा। वह पृथ्वी का ही एक टुकड़ा है और उसके ही चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। इसलिए उसे उपग्रह कहा जाता है। इस तरह आकाश मे जो पिंड चमक रहे हैं, उनमें से कुछ ग्रह, कुछ उपग्रह और कुछ तारे है।

बुध सौर-मंडल के अन्य सभी ग्रहों के मुक़ाबले सूरज के अधिक पास है। उसके आरपार की लम्बाई ३,००० मील है। सूरज के पास होने के कारण वहाँ गरमी और रोशनी खूब होती है। बुध केवल ८८ दिन में सूरज का चक्कर लगा लेता है। इस तरह वहाँ का एक बरस हमारे ८८ दिन के बराबर होता है। पृथ्वी की ही भाँति बुध भी अपनी धुरी पर घूमता है। उसे अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाने में भी ८८ दिन ही लगते हैं।

बुध का मार्ग बहुत छोटा है। उस मार्ग को ज्योतिषी 'कक्षा' कहते हैं। बुध सूरज से बहुत दूर कभी नहीं हटता। बुध को देख पाना कठिन है। कारण यह है कि सूरज के बहुत पास होने से वह कभी सूरज से पहले नहीं निकलता। और निकलने पर सूरज के प्रकाश से वह इतना फीका पड़

जाता है कि दिखाई नहीं देता। शाम को अँधेरा होने से पहले ही वह डूब जाता है। शहरों मे रहनेवालों के लिए बुध को देख पाना और भी कठिन है, क्योंकि वहाँ आसमान पर धुँधलका छाया रहता है। गाँव में वह कभी कभी सुबह को पूरब मे और शाम को पच्छिम मे दिखाई दे सकता है।

दूरबीन से देखने पर भी बुध के बारे मे कोई विशेष जानकारी नही होती। इसका कारण यह है कि वह बहुत छोटा है और पृथ्वी से दूर है। फिर भी इतना जरूर मालूम होता है कि उसमे भी चाँद की तरह कलाएँ होती है और वह भी चाँद की तरह घटता बढता रहता है।
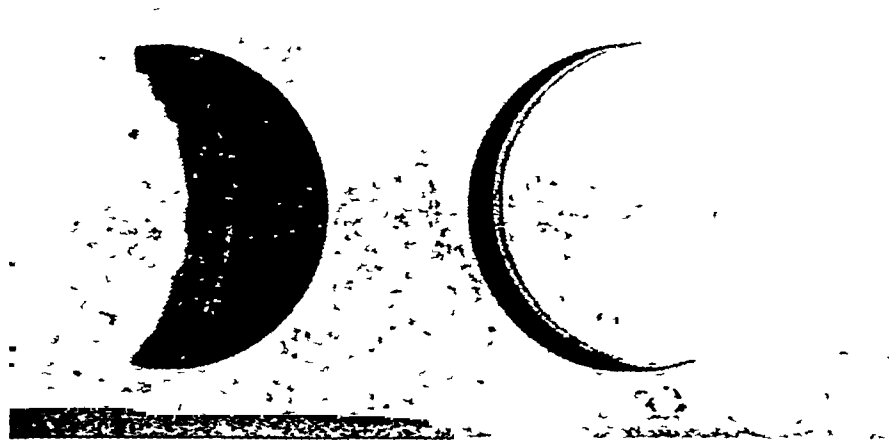
बुध की कलाएँ

बुध पर कुछ धब्बे भी दिखाई देते है। उन्हे देखते रहने से पता चलता है कि चाँद की तरह बुध का भी एक ही रुख सदा सूरज के सामने रहता

है। दूसरा रुख कभी सूरज के सामने नही आता। इसलिए वुध के एक भाग मे सदा दिन रहता है और दूसरे मे सदा रात। ज्योतिपियों का कहना है कि वुध का जो भाग हमेशा सूरज के सामने रहता है, वहाँ इतनी भीपण गरमी पड़ती होगी कि सीसा जैसी धातु तक क्षण भर मे पिघल जाएगी। इसी प्रकार वुध के जिस भाग मे हमेशा रात रहती है, वहाँ भयानक सरदी पड़ती होगी। वुध पर हवा नहीं है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि वहाँ भी जीव-जंतु न होंगे।

प्राचीन सभ्यताएँ

★
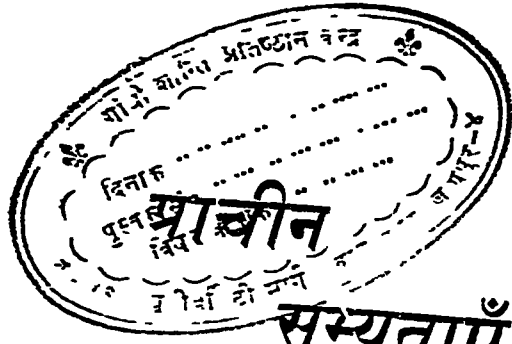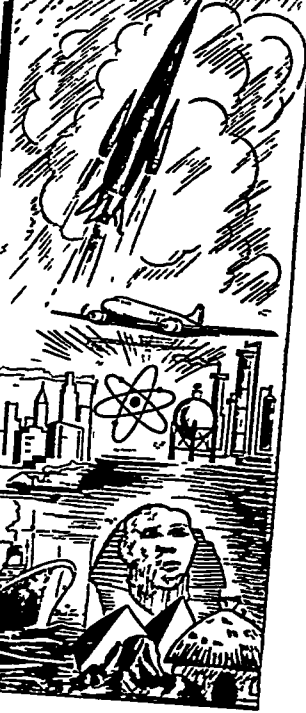
ज्यों ज्यों आवादी वढती है त्यो त्यो रोजी क साधन कम होते जाते है। उस कमी को पूरा करने के लिए मनुष्य परिश्रम करके रोजी के नए साधन पैदा करता है। उसी परिश्रम से मनुष्य के जीवन मे वड़े वड़े परिवर्तन हुए है और होते रहते है।

जिस युग मे पत्थरो के भोंडे और खुरदरे औजारो की जगह वढ़िया, चिकने और पालिश किए हुए औज़ार वनने लग थे, उस युग को "उत्तर पाषाण काल" या पत्थर का नया युग कहते है। उस युग में मनुष्य छोटी छोटी वस्तियाँ वनाकर रहने लगा था। वह दूध के लिए गाएँ और भेड़ें पालने लगा था। शरीर ढकने के लिए घास और पेड के पत्तो के अलावा भेड़ के वाल का भी उपयोग करने लगा था। इस प्रकार मनुष्य ने अपनी वस्ती मे ही अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने के साधन जुटा लिए थे।

मगर आराम के साथ साथ आवादी भी वढ़ने लगी, जिससे आवश्यकताओं को पूरा करने के साधन कम पड़ने लगे। तव एक बस्ती के लोगों ने दूसरी वस्ती के लोगों पर हमला करके उनकी जमीन, उनके पालतू जानवर और उनके जमा किए माल को लूटना शुरू किया। इस प्रकार वे अपनी सम्पत्ति वढ़ाने और अपनी वढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने लगे। उन हमलों में अच्छे सरदारो के कारण जीत होती थी। इसलिए सरदारों का मान और उनका अधिकार वहुत बढ़ गया। मगर जीत के लिए अच्छे सरदार ही काफी न थे, देवताओं की प्रसन्नता और उनका आशीर्वाद भी आवश्यक माना जाता था। इसलिए देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पुजारियों को प्रसन्न करना आवश्यक हो गया और धीरे धीरे पुजारी लोगों का अधिकार सरदारों से भी वढ़ गया। सरदार लोग आम तौर से पुजारियों के आधीन होते थे। मगर कभी कभी ऐसा भी होता था कि वे पुजारियों को ही अपने आधीन कर लेते थे।

देवताओं को पुजारी और सरदार दोनों ही मानते थे। इस लिए देव-स्थान या मंदिर वस्तियो के मुख्य केन्द्र वन गए और मंदिरों के इर्द गिर्द आवादी वढने लगी। साथ ही मंदिर की जरूरते भी वढ़ीं, उनका कारोवार भी वढा, और आगे चलकर मंदिरो के आसपास शहर आवाद हो गए। यह अव से कोई छ हजार साल पहले की वात है।

हमे इतने पुराने ज़माने का हाल उस ज़माने के कुछ टीलों की खुदाई करने से मालूम हुआ है। लगभग हर पुरानी वस्ती के आस पास कुछ पुराने टीले पाए गए हैं। उन्हें देखकर कुछ लोगों ने अनुमान किया कि उनके नीचे पुरानी वस्तियों के खँडहर दवे होंगे। इसी लिए उनकी खुदाई का

मोहजोदडो में मिले जेवर
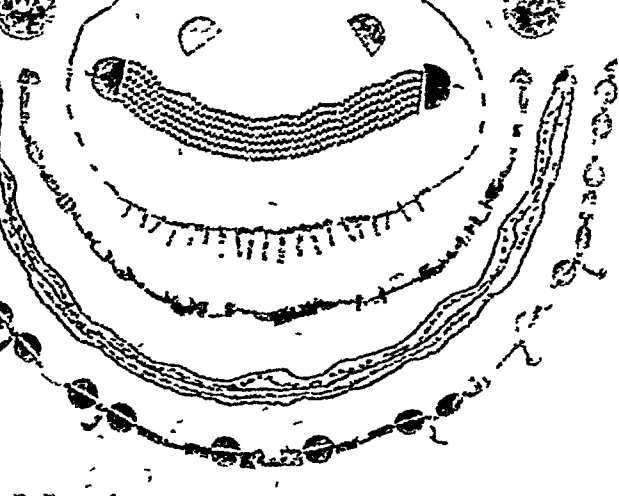
काम शुरू हुआ। खँडहरो की खुदाई का अधिक काम नील और फ़िरात नदियो की घाटियो मे हुआ है। नील मिस्र मे है और फ़िरात ईराक मे। युरोप मे भी यह काम काफी हुआ है। कुछ काम हमारे देश और पाकिस्तान मे भी हुआ है। सिंध नदी की घाटी मे एक टीले को खोदने से एक बहुत ही प्राचीन नगर के खँडहर मिले है जिसे 'मोहजोदडो' कहते है। मोहंजोदडो की खुदाई मे मिले जेवर, मिट्टी के वर्तन और दूसरे सामान को देखकर विद्वानो ने यह अनुमान किया है कि वह नगर ईसा से कम से कम २५०० वरस पहले रहा होगा। पृथ्वी के गर्भ मे मिले उस नगर की सडको, तालावो और इमारतो को देखने मे मालूम होता है कि वह नगर कुछ वातो मे आज-कल के नगरो के समान रहा होगा। मकान एक तरतीब मे वनते थे और सफाई का नियमित रूप से प्रबंध था।

मोहजोदडो की एक गली, जिसमें सफाई के लिए दो नालियाँ है। नालियों मे पता चलता है कि नगर में म

० साल पुराना सुमेरी नगर । बीच में अंडाकार मंदिर बना है
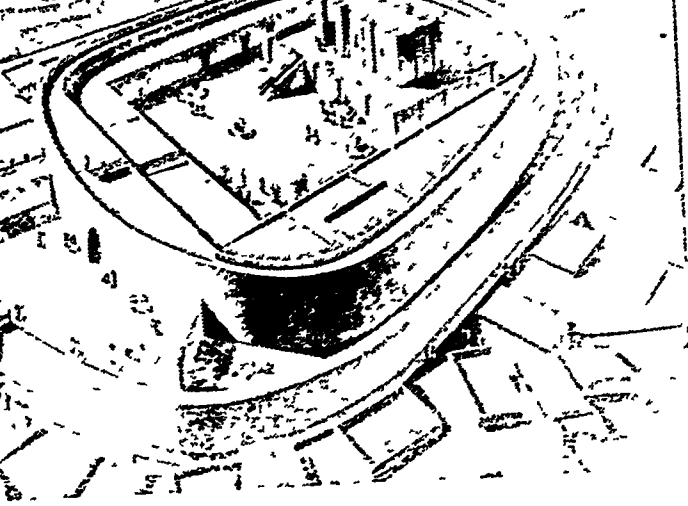
फ़िरात की घाटी में पाए गए सबसे प्राचीन खँडहर सुमेरी सभ्यता के है, जिनसे मालूम होता है कि वहाँ के पहले नगर किसी मंदिर के चारो ओर आबाद हुए होंगे। वे मंदिर देवताओं के स्थान थे, जिनका प्रबंध पुजारी करते थे।

खेती योग्य सारी जमीन मंदिर की सम्पत्ति होती थी और उसके अपने किसान, हर तरह के काम करने वाले कारीगर, और नौकर होते थे। कातने बुनने का काम औरतें करती थी। मंदिर के आमदनी खर्च का हिसाब रखना पुजारियों का काम था। इसलिए लिखने पढ़ने का सिलसिला भी सबसे पहले मंदिरो मे ही शुरू हुआ।

४००० साल पुराने बाबुल नगर के खंडहर। पीछे दूरी पर 'बाबुल की मीनार'

फ़िरात की घाटी में बसे नगरों मे मंदिरों के साथ मीनारें भी बनती थीं। जिन्हें "जिग्गुरत" कहते थे। वे ईंटों के बनाए जाते थे जिनमें ऊपर चढ़ने के लिए चोटी तक सीढ़ियाँ होती थीं। वैसी इमारत बनाने के लिए बहुत जानकारी और अभ्यास की आवश्यकता थी।

उसी समय मिस्र में एक राजा की समाधि बनी जो अब भी संसार के सात आश्चर्यों में गिनी जाती है। वह समाधि नीचे चौकोर है। उसकी प्रत्येक भुजा ७५० फुट लम्बी और उसकी चोटी ४५० फुट ऊँची है। उसके अंदर बड़े बड़े कमरे हैं। वह पत्थर की बहुत बड़ी बड़ी सिलों से बनी है। सिलें बिना चूने गारे के इस तरह चुनी गई हैं कि कहीं थोड़ी भी साँस नहीं दिखाई देती। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि सुमेरी और मिस्री लोगों ने सभ्यता में कितनी उन्नति कर ली होगी।

चीन की पौराणिक कथाओं और हाल की खुदाइयों से पता चलता

समाधि में मिली कुछ चीज़ें (ऊपर से) चीते के सिर जैसा बकसुआ, कांच और लकड़ी की गुरियों से बना हार, कांच की गुरियों के कामवाला बचकाना चप्पल, देवदार का बना नक्काशीदार सरटेकना और सागौन तथा हाथीदांत की बनी कुरसी
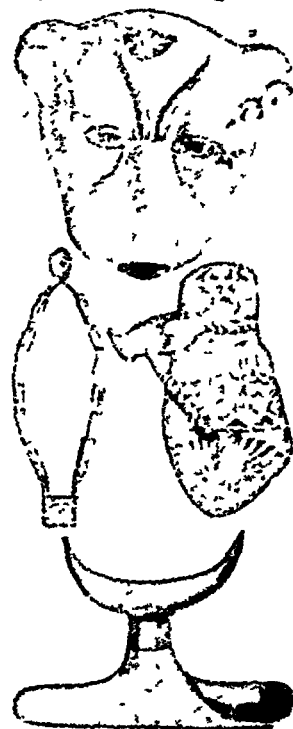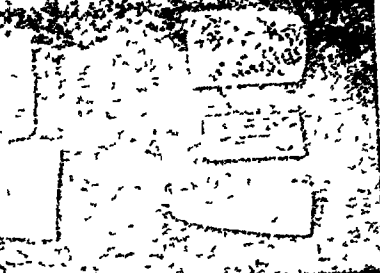
राने ठप्पे, जिनसे चीन में मिट्टी के पर नक्काशी उभारते थे

पुरानी शांग इमारत के खँडहर, जिसकी ... अब भी डेढ फुट ऊँची है।

है कि ईसा से लगभग ३,००० वरस पहले वहाँ भी सभ्यता मे वहुत उन्नति हो चुकी थी। सुमेरिया और मिस्र की सभ्यताओं के प्रभाव से अछूती होती हुई भी चीन की वह सभ्यता किसी रूप मे उनसे नीची न थी। मिस्र की भाँति चीन मे भी लिखाई चित्रों द्वारा आरम्भ हुई। नील, दजला और फिरात की तरह चीन मे ह्वागहो और याँग्ट्सीक्याग नदियों का वड़ा महत्व था। इसलिए सवसे पहले चीनी नगर उन्ही नदियो की घाटियों में वसे।

मोहंजोदड़ो की लिखावट

खेती के लिए फसलो का ध्यान रखना, सिंचाई के लिए नहरें वनवाना और उनकी देखभाल करना आवश्यक था। नील और फ़िरात नदियों का पानी एक खास समय चढता है। यदि उसी समय खेतों मे पानी न पहुँचाया जाए और उसे तालावो मे न जमा कर लिया जाए तो सालभर सिंचाई के लिए पानी न मिले। शायद इसी आवश्यकता को पूरा करने और वाढ़ का ठीक समय मालूम करने के लिए सूरज, चंद्रमा और ग्रहो की चाल का हिसाव लगाया गया। समय को वरसों, महीनों और दिनों में वाँटा गया। एक दिन को वारह वारह घंटों के दो

पच्छिमी एशिया की सबसे पहली चित्रलिपि के नमूने

भागों मे और उन दो भागो को चार चार पहरों मे बाँटा गया। यह बात भी मिस्र में अब से चार हज़ार साल पहले मालूम कर ली गई थी कि साल मे ३६५ दिन होते हैं।

उस ज़माने मे छोटे छोटे रथ और पाल से चलनेवाली नावे भी बनने लगी थी। रथो मे घोड़े जोते जाते थे। धीरे धीरे हवा के जोर से चलने वाली नावे जहाजो जैसी बडी बड़ी बनने लगी। मिस्री लोग जहाज बनाने और चलाने का हुनर अच्छी तरह सीख चुके थे। वे अपने जहाज़ लाल सागर और भूमध्य सागर मे बराबर चलाते रहते थे और उनका व्यापार समुन्दर पार के इलाको तक फैल चुका था। इन बातो से पता चलता है कि तब शहरी जीवन काफी उन्नत था।

पुराने ज़माने का एक रथ

वास्तव मे जिस परिवर्तन के कारण नागरिक जीवन का आरम्भ हुआ और नागरिक सभ्यता की नीव पडी, वह परिवर्तन संसार के उन सभी भागो मे हुआ जहाँ

प्राचीन मिस्र की पाल से चलनेवाली एक बडी नाव
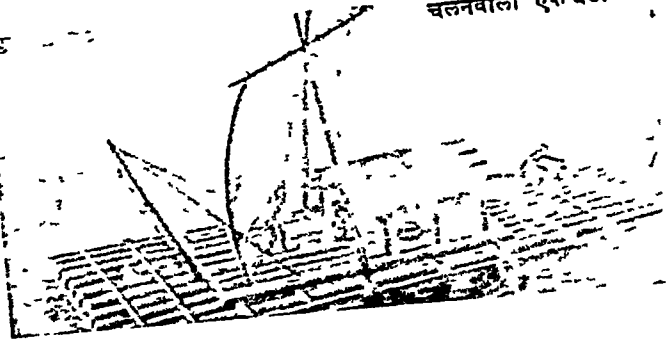
न अधिक सरदी होती है, न अधिक गरमी और जहाँ जमीन से काफी पैदावार होती है। नील, फिरात, दजला, सिंध, यॉंग्ट्सीक्यांग और ह्वांगहो नदियो की घाटियाँ संसार के ऐसे ही भागों मे हैं और वहीं वे परिवर्तन हुए।

नगरो मे बसने का एक नतीजा यह हुआ कि जो काम शुरू किए गए उन्हे जारी रखा जा सका। जो जानकारी प्राप्त हुई उसे शिक्षा द्वारा सुरक्षित रखा जा सका। इसके अलावा मेल जोल और कारोबार के बढने से नए ज्ञान प्राप्त करना भी पहले की अपेक्षा बहुत सरल हो गया।

सामाजिक जीवन के लिए जो व्यवस्थाएँ थी उन्हे क़ायम रखना आवश्यक था। उन्हें कायम रखने के लिए नियम बने, जिनके अनुसार लोग मिल जुलकर एक दूसरे के सहयोग से काम करते थे। सुमेरिया और मिस्र मे नहरों की देखभाल न की जाती तो खेती-बारी का काम असम्भव हो जाता। इसलिए उसकी देखभाल की जिम्मेदारी उन किसानों को सौंपी गई जिनकी ज़मीन उन नहरो के पानी से सींची जाती थी।

नगरों मे रहने से जीवन में एक बहुत बडा परिवर्तन आया। उस समय तक कला-कौशल और व्यापार की अच्छी उन्नति हो चुकी थी। आदमी ने तरह तरह की कच्ची धातुएँ खोज निकालीं थी। उन धातुओं को गला कर और साफ करके औजार और हथियार बनाए जा सकते थे। वे औज़ार और हथियार पत्थर के औज़ारों और हथियारों से ज्यादा उपयोगी और टिकाऊ होते थे। कच्ची धातुओ और दूसरे कच्चे माल की तलाश में सौदागर दूर दूर तक जाने लगे थे। वे कच्चे माल के बदले तैयार माल देते थे। इस तरह आपसी

संबंध पैदा हुए। एक दूसरे के बारे में जानकारी बढ़ी और जीवन को बेहतर बनाने की भावना फैलने लगी।

पर जैसे उत्तर पाषाण-काल में अकाल, बाढ़ या किसी दूसरी दैवी विपत्ति से बस्तियों के नष्ट हो जाने का खतरा रहता था या यह डर बना रहता था कि वे अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या की आवश्यकताओं को पूरा न कर सकेंगी, वैसे ही संसार के पहले नगरों के लिए भी खतरे थे। उनमें अमीर और गरीब, राजा और प्रजा के भेद थे। उन भेदों के कारण झगड़े हो सकते थे, जिनसे जीवन का सारा संगठन बिगड़ जाता। इसके अतिरिक्त नगरों के चारों ओर जंगली जातियों की आबादियाँ होती थीं। वे जंगली जातियाँ नगरों पर आक्रमण करती रहती थीं। शायद नगरों की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि वे अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए कच्चे माल के मोहताज थे, जो बाहर से आता था। अगर उनका आना किसी कारण बंद हो जाता तो उनका काम चलना कठिन हो जाता था।

नगरों की जन-संख्या भी बराबर बढ़ती रहती थी। इसलिए धन पैदा करने के साथ साथ दूसरों के धन को लूटने का सिलसिला भी आरंभ हो गया। उस समय सभ्यता के केंद्रों में एक विशेष ढंग के सरदार भी पैदा होने लगे। वे अपनी दौलत को बढ़ाने के लिए अपने असर को फैलाने लगे। उन्हें अपने उद्योग धंधों की उन्नति के लिए कच्चा माल हासिल करना था। इसलिए वे फौजों के ज़रिए दूसरे इलाकों पर कबज़ा करने लगे। इस तरह नगरों के हाकिम एक दूसरे के धन पर अधिकार करने के लिए बड़ी बड़ी सेनाएँ रखने

लगे और आपस में लड़ने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि सैनिकों को खिलाने पिलाने और हथियारबंद रखने के लिए और अधिक ज़मीन और धन की आवश्यकता पड़ने लगी। नगरों के जो सरदार उस आवश्यकता को पूरा करने में सबसे अधिक सफल हुए, वे राजा बन गए और उन्होंने अपने राज स्थापित कर लिए।

ऐसा पहला राजतंत्र अब से लगभग ५,००० बरस पहले नील की घाटी में स्थापित हुआ और फिरात की घाटी में लगभग ४.५०० बरस पहले। इसी प्रकार संसार के और भागों में भी राजतंत्र स्थापित हुए। इन राजतंत्रों ने उन्नति की, फिर उनका पतन हुआ, और उनके पतन के बाद और बड़े बड़े राज्य स्थापित हुए। राजतंत्रों की उन्नति का दूसरा दौर अब से कोई ३,५०० बरस पहले आरम्भ हुआ।

मिस्र के सबसे पुराने राजाओं में ं

उन्नति के इस दूसरे दौर में नए आविष्कार कम हुए। पर लोहे के औज़ार और हथियार बनने लगे, और सोने चाँदी के सिक्कों द्वारा लेन देन होने लगा। पहले आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए माल बनते थे और माल के बदले माल लिया दिया जाता था। उसके बजाय उन्नति के इस दूसरे दौर में बाजार में बेचने के लिए माल तैयार किया जाने लगा। लोगों को जिस वस्तु की आवश्यकता होती, उसे वे सिक्के देकर बाजार से ख़रीद लेते थे। इस तरह हर प्रकार के माल का उत्पादन बढ़ गया, हर माल की खपत बढ़ गई,

लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ गईं और जीवन का स्तर बहुत ऊँचा हो गया। सभ्यता इतनी तेज़ी से फैली कि भूमध्य सागर के पश्चिमी किनारे से लेकर चीन तक अनेक छोटे बड़े नगर आबाद हो गए।

वह सभ्यता नगरों ही तक सीमित न रहकर गाँवों में भी फैली। किसानों और कारीगरों के अतिरिक्त छोटी बड़ी हैसियत के व्यापारियों, पेशेवर सिपाहियों, पुरोहितों, पुजारियों और धार्मिक नेताओं की संख्या बहुत बढ़ गई। सिक्के के रिवाज के साथ साथ ब्याज का लेन देन भी आरम्भ हुआ, जिसका सामाजिक जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

नगरों की आबादी में भिन्न भिन्न जाति, धर्म और देश के लोग होते थे। उनके आपसी मामलों को सुलझाने के लिए ऐसे कानून बनाने की आवश्यकता हुई जो सब पर लागू हों। सबसे पुराने और प्रसिद्ध कानून वे हैं जिन्हें बाबुल के राजा "हमूरबी" ने अब से ३,७०० बरस पहले जारी किए थे। वे क़ानून पारिवारिक जीवन, विरासत, लेन देन, उधार ब्याज, दंड-विधान इत्यादि के संबंध में थे। उन कानूनों से पता चलता है कि उस समय सामाजिक जीवन कितना पेचीदा हो गया था और लोगों को सन्तुष्ट रखने के लिए यह बताने की कितनी आवश्यकता थी कि सत्य और न्याय क्या है।

पत्थर पर खोदे गए हमूरबी के क़ानून

बाबुल के राजा हमूरबी, जिन्होंने आज से ३७०० बरस पहले सबसे पुराने कानून जारी किये थे
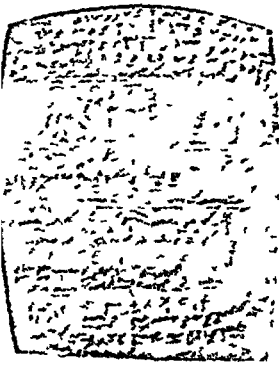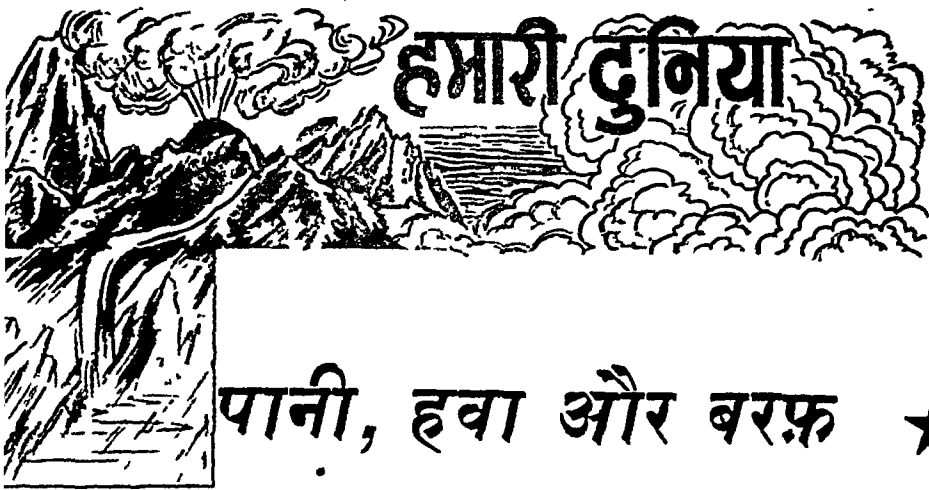
पानी, हवा और बरफ़ ★

पानी, हवा और वरफ का मनुष्य के जीवन और रहन सहन पर वहुत असर पड़ता है। पृथ्वी का अधिकतर भाग अथाह पानी से ढका है। अथाह पानी के वड़े वड़े भागों को महासागर कहते हैं और सूखी धरती के वड़े वड़े टुकड़ों को महाद्वीप। महासागरों और महाद्वीपों के रूप सदा एक से नहीं रहते। वे वदलते रहते हैं, जिसकी वजह से वहुत सी चीज़ें वनती और विगड़ती रहती हैं। महासागरों और महाद्वीपों के रूप मे वह अदल वदल खास तौर से पानी, हवा और वरफ के कारण होता है।

पानी ही वह मुख्य शक्ति है जो धरातल के रूप को वनाने विगाड़ने का काम करती है। संसार मे जितना भी जल है वह समुन्दर से आता है और समुन्दर मे ही लौट जाता है। समुन्दर का पानी भाप वनकर उडता है। भाप वादल वन जाती है और वादल हवा के साथ उड़कर संसार

के अलग अलग भागों में फैल जाते हैं। उनमें से अधिकतर पानी बनकर बरस जाते हैं, और कुछ ओले बनकर गिर पड़ते हैं। ओले भी अन्त में पानी बन जाते हैं। इस तमाम पानी का कुछ हिस्सा धरती सोख लेती है और कुछ फिर भाप बनकर हवा में मिल जाता है। लेकिन उसका अधिकतर हिस्सा उस तरफ बह निकलता है जिस तरफ जमीन नीची होती है और वह नदी नालों में बहता हुआ फिर समुन्दर में जा मिलता है।

हम देखते हैं कि बरसात का पानी नरम मिट्टी को काटकर बहा ले जाता है। नदी नालों का बहता हुआ पानी भी अपने किनारों की मिट्टी को काटता रहता है। इस प्रकार बहता हुआ पानी सबसे पहले धरती को घिसने और काटने का काम करता है। जब पानी की धारा पूरी तेज़ी से बहती है तो उसके बहाव में एक शक्ति पैदा हो जाती है। वह शक्ति चट्टानों और पहाड़ों के बीच राह बनाती, धूल मिट्टी का तो क्या कहना, पत्थर के बड़े बड़े टुकड़ों तक को आसानी से बहा ले जाती है। तेज पानी के बहाव में लुढ़कते हुए पत्थर के ये झोंके भूमि को तोड़ने
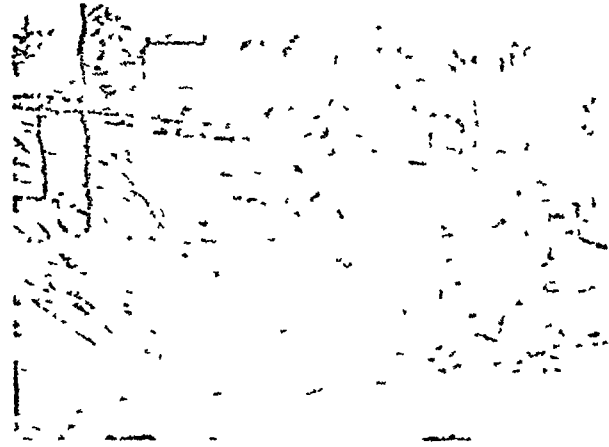
पानी द्वारा धरती का कटाव

फोड़ते रहते हैं। पहाड़ी इलाकों में भूमि बहुत ढालू होती है। इस कारण वहाँ नदी का बहाव भी बहुत तेज़ होता है। वहाँ पर उसका खास काम तोड़ फोड़ करना ही होता है। यही कारण है कि पहाड़ी इलाकों में नदी की घाटी बहुत गहरी होती है।

नदी के काटने से पहाड़ में बनी घाटी, जिससे पानी के काटने की ताकत का पता चलता है

पानी के तेज़ बहाव में बहती हुई चट्टानें और पत्थर एक दूसरे से टकरा कर टूटते रहते हैं। आपस में रगड़ खाने से पत्थर के टुकड़े नुकीले, गोल और चिकने होते रहते हैं। पर रगड़ का असर उन्हीं तक नहीं रहता। उसका असर नदी की गहराई और चौड़ाई पर भी पड़ता है। उनके बराबर टकराने और रगड़ खाने से नदियाँ गहरी और चौड़ी होती हैं।

यही कारण है कि दक्खिन भारत की महानदी, गोदावरी, नर्बदा और कृष्णा नदियों की घाटियाँ बहुत गहरी हैं। पर पहाड़ों को काटने का काम जैसा उत्तरी अमरीका की अनोखी नदी कोलेरेडो ने किया है, वैसा संसार में और किसी नदी ने नहीं किया। वह जिस घाटी में से होकर बहती है वह एक मील गहरी है। इसका कारण यह है कि कोलेरेडो नदी में हजारों साल से पत्थर के बड़े बड़े ढोके आपस में रगड़ खाते हुए बहते रहे हैं।

मैसूर का प्रसिद्ध झरना 'जोग'

पहाड़ी इलाकों में नदियों का पानी कहीं कहीं बहुत ऊँचाई से खड्ड में गिरता है, और वहाँ से फिर वह निकलता है। ऊँचाई से गिरनेवाली पानी की धारा को झरना कहते हैं। नदियाँ अपने साथ जो ढेरों मिट्टी और पत्थर बहाकर लाती हैं, उन्हें वे जगह जगह छोड़ती जाती हैं। इस प्रकार नदी के किनारों पर, मोड़ पर, और कभी कभी बीच में भी तरह तरह की शकल के टीले बन जाते हैं। नदियों के ऐसे ही काम को हम 'रचनात्मक' काम कहते हैं।
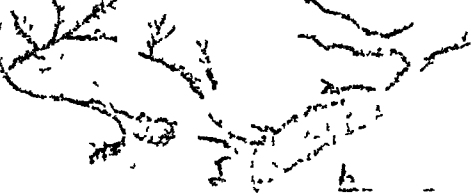
भारी वर्षा के बाद ढाल पर नदी का नालो के रूप में जन्म (बाईं ओर बढ़ा दृश्य) छोटे छोटे नाले आपस में मिलकर छोटी नदी का रूप धारण कर मैदानो को तेजी से काटते हैं और V आकार के कटाव पैदा करते हैं।

जब नदी पहाड़ से उतर कर मैदान मे आती है तो उसकी चाल धीमी पड़ जाती है। मैदानों मे वह काटने बहाने के साथ साथ इकट्ठा करने का काम भी करने लगती है। मैदान में उसका बहाव धीमा हो जाता है। इसलिए वह एक सीध में न बहकर टेढ़े मेढ़े रास्ते बनाती और धीरे धीरे अपने रास्ते को बदलती रहती है। साथ ही वह अपनी घाटी की चौड़ाई को बढ़ाती और मैदान को बराबर करती रहती है। बहाव के अंतिम सिरे पर नदी को चाल बहुत ही धीमी हो जाती है।
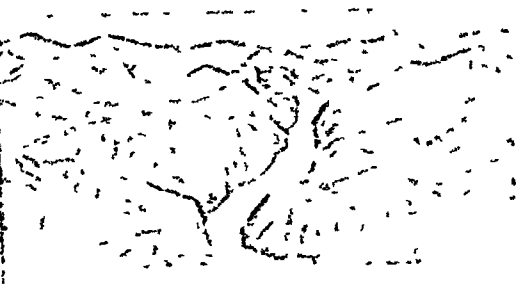
ये नदी कुछ बड़ी होकर तेज हो गई है। इसकी घाटी खड़ी और 'V' आकार की है। तेज मोड़ कम है।

समुन्दर में मिलने से कुछ दूर पहले से उसका खास काम इकट्ठा करना या निर्माण करना ही रह जाता है। वह अपने साथ लाई हुई महीन मिट्टी को इकट्ठा करती रहतो है। उस ढेरों मिट्टी के कारण उसकी तली उथली होती जाती है। आगे इकट्ठा हुई मिट्टी के कारण वह सीधे न बहकर इधर उधर भटकने लगती है। फल यह होता है कि वह धीरे धीरे बढ़ती और टेढ़े मेढ़े रास्ते

प्रौढ़ अवस्था म नदी चौडी घाटी में बहती है और बाढ़ लाती है। घाटी का 'V' आकार खतम हो गया है।

अंतिम दशा म नदी मैदान में इधर उधर भटकती रहती है। किनारों पर जमा की गई मिट्टी के कारण उसका तल उथला और पाट चौड़ा होता जाता है।
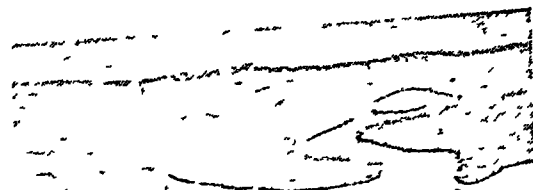
बनाती हुई जगह जगह घोड़े की नाल या धनुष के आकार की झीलें बना देती है। फिर कई शाखाओं में बँट जाती है। ये शाखाएँ बीच बीच मे जमीन के बड़े बड़े टुकडे छोड़ती हुई समुन्दर में मिल जाती है। नदी की शाखाओं के बीच छूटी हुई जमीन के उन टुकडों के आकार ज्यादातर तिकोने होते है और उन्हे डेल्टा कहते है। डेल्टा ग्रीक लिपि का एक अक्षर है, जिसकी शकल तिकोनी (△) होती है। डेल्टा की जमीन बहुत उपजाऊ होती है। भारत की गंगा, मिस्र की नील, अमरीका की अमेजन, उत्तरी अमरीका की मिस्सीसिपी और बर्मा की इरावदी नदियों के डेल्टे संसार के बहुत ही उपजाऊ इलाकों में गिने जाते है।

जिन समुन्दरों मे ज्वारभाटे बहुत आते है, उनमें मिलनेवाली नदियाँ डेल्टा नहीं बना पाती, क्योकि ज्वारभाटे के कारण नदियो की लाई हुई मिट्टी के ढेर बहकर समुन्दर मे मिल जाते है। ऐसी नदियों के मुहाने बहुत चौड़े होते है, जिनमे बड़े बडे जहाज आसानी से आ जा
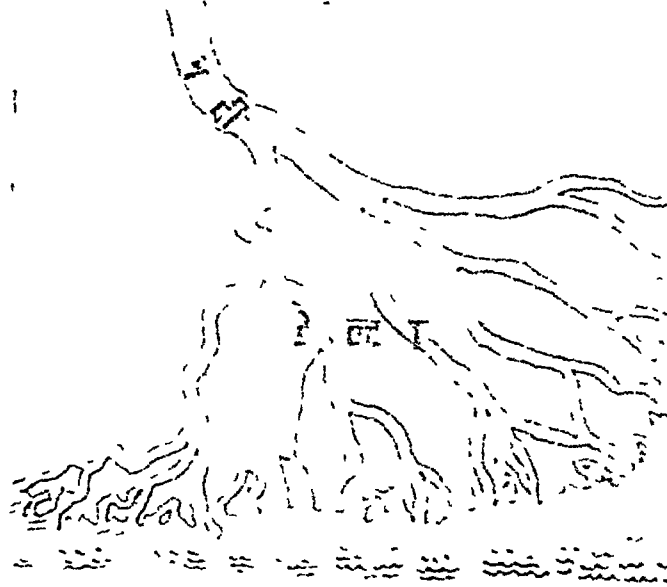
सकते हैं। ऐसे मुहानों को 'वेला संगम' कहते हैं, जो व्यापार के लिए बहुत उपयोगी होते हैं।
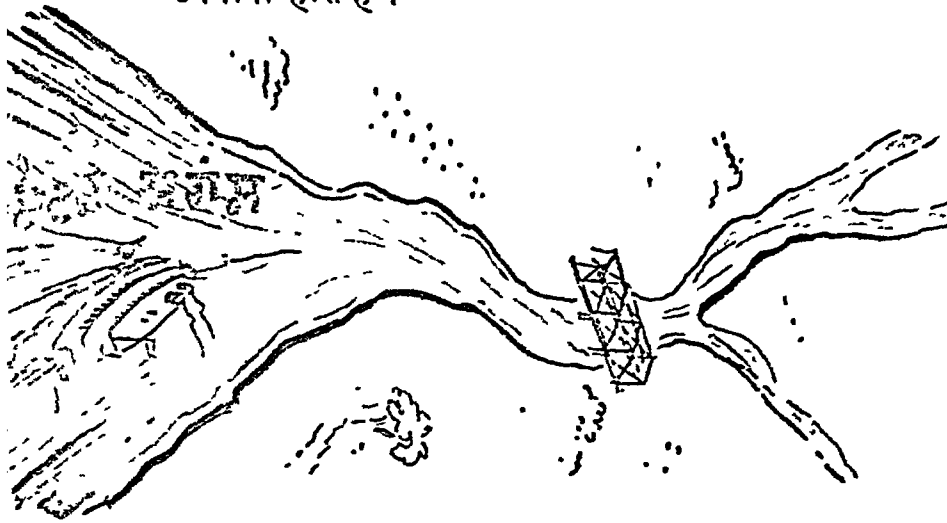
बरसात का जो पानी धरती सोख लेती है, वह झरनों, सोतों और कुँओं के रास्ते फिर धरातल पर आ जाता है और मनुष्य के बहुत काम आता है। धरती का सोखा हुआ कुछ पानी छेदों और दरारों में होकर कठोर चट्टानों के ऐसे भागों में पहुँच जाता है, जहाँ आदमी किसी प्रकार नहीं पहुँच सकता। यदि ऐसी चट्टानें ढलवाँ हुईं तो पानी झरने के रूप में फिर बाहर निकल आता है।

कभी कभी पानी चट्टानों की गहरी तहों में पहुँच जाता है और वहाँ की गरमी से खौल जाता है। वह खौलता हुआ पानी कभी कभी चट्टानों को फोड़कर गरम झरनों के रूप में बाहर निकल आता है। कभी कभी वह खौलता हुआ पानी बहुत नीचे चट्टान के किसी गड्ढे में जमा हो जाता है। यदि चट्टान के ऊपरी भाग से उस गड्ढे तक कोई सूराख हुआ, तो वह पानी भीतरी गरमी

और भाप के ज़ोर से उबलकर धमाके के साथ फव्वारे के रूप में बाहर निकल आता है। ऐसे उबलते पानी के फव्वारों को 'गाइसर' कहते हैं। जब गड्ढे का खौलता पानी चुक जाता है तब गाइसर थोड़े समय के लिए बन्द हो जाते हैं। पर जब गड्ढे में पानी फिर इकट्ठा हो जाता है, तो वह पहले की ही तरह बाहर निकलने लगता है। इस प्रकार गाइसर में से पानी रुक रुक कर नियमित ढंग से कुछ कुछ समय बाद निकलता रहता है।

गाइसर खासकर उन इलाकों में पाए जाते हैं जहाँ ज्वालामुखी पहाड़ बहुत होते हैं। ऐसे गाइसर अमरीका के येलोस्टोन पार्क आइसलैंड और न्यूज़ीलैंड में अधिक पाए जाते हैं। येलोस्टोन पार्क में एक गाइसर है जिसका नाम 'ओल्ड फेथफुल' है। वह हर ६१ मिनट के बाद फूटता रहता है।

येलोस्टोन पार्क का प्रसिद्ध गाइसर 'ओल्ड फेथफुल'

धरती के भीतर पानी का बहाव बहुत धीमा होता है। इसलिए वह चट्टानों को नहीं तोड़ पाता। वहाँ वह अपना काम दूसरे ढंग से करता है। वह चट्टानों के खनिज पदार्थों को घुलाकर बहाता रहता है जिससे चट्टानें धीरे धीरे पोली होती जाती हैं और उनमें कहीं कहीं तहखाने से बन जाते हैं। धरती के नीचे के उन तहखानों में बड़े विचित्र

दृश्य देखने को मिलते हैं। जिस तहखाने की छत चूने से बनी होती है उसकी छत से चूना मिला बहुत गाढा पानी टपकता रहता है। उस गाढ़े पानी का कुछ हिस्सा छत से ही लटका रह जाता है और कुछ तहखाने के फर्श पर गिर जाता है। फ़र्श पर गिरा हुआ हिस्सा भाप बनकर उड़ने लगता है। उधर ऊपर से चूना मिली बूँदें टपकती रहती हैं। इस प्रकार धीरे धीरे ऊपर से टपकता चूना और तले से उठती भाप एक खम्भे का रूप धारण कर लेती है। ऊपर से लटकते हुए खंभानुमा हिस्से को "स्टेलेक्टाइट" और नीचे से उठे हिस्से को "स्टेलेग्माइट" कहते हैं।

अफ्रीका में कांगो के तहखानों में बने स्टेलेक्टाइट और स्टेलेग्माइट

तेज बहनेवाले पानी की धारा तो धरातल को बनाती बिगाड़ती रहती ही है, समुन्दर का पानी भी लगातार वही काम करता रहता है। समुन्दर की लहरें, धाराएँ और ज्वारभाटे लगातार समुन्दर के किनारे या उसके अन्दर की चट्टानों से टकराते रहते हैं। जब समुन्दर की लहरें तट की चट्टानों से टकराती हैं, तब सख्त से सख्त चट्टानें भी कट जाती हैं और उनके अदर गुफाएँ बन जाती हैं। समुन्दर का पानी बरसात के पानी की तरह ही तोड़ फोड़ के साथ साथ किनारों और बीच में बने टापुओं पर निर्माण के काम भी करता रहता है।

समुन्दर की लहरों द्वारा कटने से बनी जापान की मत्सुशिमा खाड़ी में चट्टान की एक मेहराब

इंग्लैंड में डोरसेट तट के पास 'डर्डल डोर' नाम की प्रसिद्ध मेहराब

हवा वह दूसरी शक्ति है जो धरती की रूप-रेखा को बदलने का काम करती है। वह अपना काम दो प्रकार से करती है। एक तो वह अपनी रगड़ से धरती को काटती है और दूसरे धूल को एक स्थान से

दूसरे स्थान पर उड़ाकर ले जाती है। समुन्दर की लहरें भी अपना काम हवा के ही ज़ोर से करती हैं। हवा ही उनमे गति पैदा करती है, जिससे वे किनारे की चट्टानों को लगातार काटती रहती है। लहरे सागर की तली मे और किनारो पर कूड़ा कर्कट भी जमा करती रहती है।

छोटे छोटे तिनके हवा मे उड़कर आपस मे टकराते है और धूल के कण बन जाते हैं। हवा उन कणों को अपने बहाव मे समेटे हुए तेज़ी के साथ चट्टानो से टकराती है, जिससे चट्टानें घिसने और कटने लगती हैं। चट्टानो का कटना या घिसना उनकी सख्ती और नरमी के साथ साथ हवा की शक्ति पर भी निर्भर होता है।

...ा द्वारा घिसी गई चट्टान का खंभानुमा रूप

धीमी चाल से चलनेवाली हवा मे धूल के बारीक कण ही उड़ सकते हैं। पर तेज़ हवा अपने साथ बड़े बड़े कण उड़ाकर ले जाती है, और बहुत तेज़ चलनेवाली प्रचंड आँधी कूड़ा कर्कट और कंकड़ ही नही छोटे छोटे पत्थर तक उड़ा ले जाती है। हवा मे उडनेवाले छोटे बड़े कणों के टकराने से चट्टाने उसी प्रकार कट जाती है जिस प्रकार रेती की रगड़ से लकड़ी। हवा मे उड़ते धूल के कणो के असर से लोहे जैसी सख्त चीज भी नही बच पाती। उनके कारण रेगिस्तान मे रेल की पटरियाँ तक घिस जाती है।

तेज आँधी की मार से चट्टानों और पहाड़ों की अजीब अजीब शकले निकल आती है। कही चट्टाने और पहाड़ एक ओर से घिसे हुए दिखाई देते

है तो कही चारों ओर से। कहीं उनकी शकल गोल हो जाती है तो कहीं नुकीली। कुछ चट्टानो के किनारे बहुत तेज और धारदार हो जाते है। उन्हें देखने से ऐसा लगता है, जैसे किसी कुशल कारीगर ने उन्हे गढ़ कर तैयार किया हो।

चट्टानो का घिसना या रगड़ना पृथ्वी के हर भाग मे एक ही तरह नही होता। जिन भागो मे बरसात अधिक होती है वहां की मिट्टी अधिक गठी हुई होती है। इसलिए हवा धूल के अधिक कण नहीं उड़ा पाती। जहां पर घास, पेड़ और पौधे पृथ्वी को ढके रहते है, वहा भी हवा धूल के अधिक कण नही उड़ा पाती। हवा अपना काम उन्हीं स्थानो पर विशेष रूप से करती है, जहाँ की जमीन नगी मुलायम और रेतीली होती है। रेगिस्तानो मे तो प्रचंड हवा के जोर से रेत के बवंडर समुन्दर की लहरो की भांति उठते, गिरते और उलटते पलटते रहते है। हवा मे उड़ती हुई रेत जहां कहीं ज़रा भी रुकावट पाती है वहाँ बैठ रहती है। झाड़ झंखाड़ की जीन वहे, कही थोड़ा सा गोबर भी रास्ते मे पड़ा मिल जाए, तो उसी के सहारे जमा होने लगती है। वहाँ रेत का ढेर बढ़ने लगता है और धीरे धीरे वह एक बड़े टीले का रूप धारण कर लेता है।

जिन रेगिस्तानो की सतह बलुआ पत्थर (सैंड स्टोन) की होती है, उनमें बालू बहुत होता है। वहां बालू के टीले भी अधिक और ऊंचे ऊंचे होते है। पर जहाँ सतह चूने के पत्थर की होती है, वहां बालू कम होता है और बालू के टीले भी संख्या और ऊँचाई मे कम होते है। यही कारण है कि अरब और सहारा के रेगिस्तानो मे अधिक और ऊँचे ऊँचे बालू के टीले है, और हमारे राजपूताने के रेगिस्तानो मे कम और छोटे छोटे। सहारा के

रगिस्तानों में वालू के टीले ४०० फुट तक ऊँचे हैं, जब कि भारत में उनकी ऊँचाई १५० फुट से अधिक नहीं होती ।

वालू के टीले खेतों, मैदानों, जंगलों और गाँवों को अपने नीचे दबाते हुए आगे बढ़ते रहते हैं । उनका हमला बाढ के हमले से भी अधिक भयानक होता है । एक जमाने मे मिस्र और सीरिया के कई बडे नगर रेत के नीचे दब गए थे । समुन्दरी वालू की बाड से फ्रास के पच्छिमी तट पर भी गाँव के गाँव नष्ट हो चुके है । सिन्धु नदी की घाटी मे धरती के खोदने से एक बहुत पुराने नगर के खँडहर मिले है, जिन्हे मोहंजोदडो के खँडहर कहते हैं । वे खँडहर भारत की पुरानी सभ्यता के चिन्ह है । विद्वानो का विचार है कि मोहंजोदडो भी वालू के ही नीचे दबकर तबाह हुआ था।

हवा के तोड़ फोड़ के काम से भी मनुष्य को लाभ पहुँचता ह । रेगिस्तान मे वालू के टीलों के ही कारण लोगो को पानी मिलता है । धरती की गहराई में जो पानी के सोते होते है, वे वालू के टीलो के नीचे दबकर ऊपर उठ आते है । इसलिए उन टीलो के आस पास थोड़ा ही खोदने पर पानी निकल आता है जिससे वहाँ पेड़ पौधे पैदा हो जाते है, और वह जगह हरी भरी हो जातो है । ऐसे ही स्थानो को "नखलिस्तान" कहते है ।

रेगिस्तान में 'नखलिस्तान' का एक दृश्य
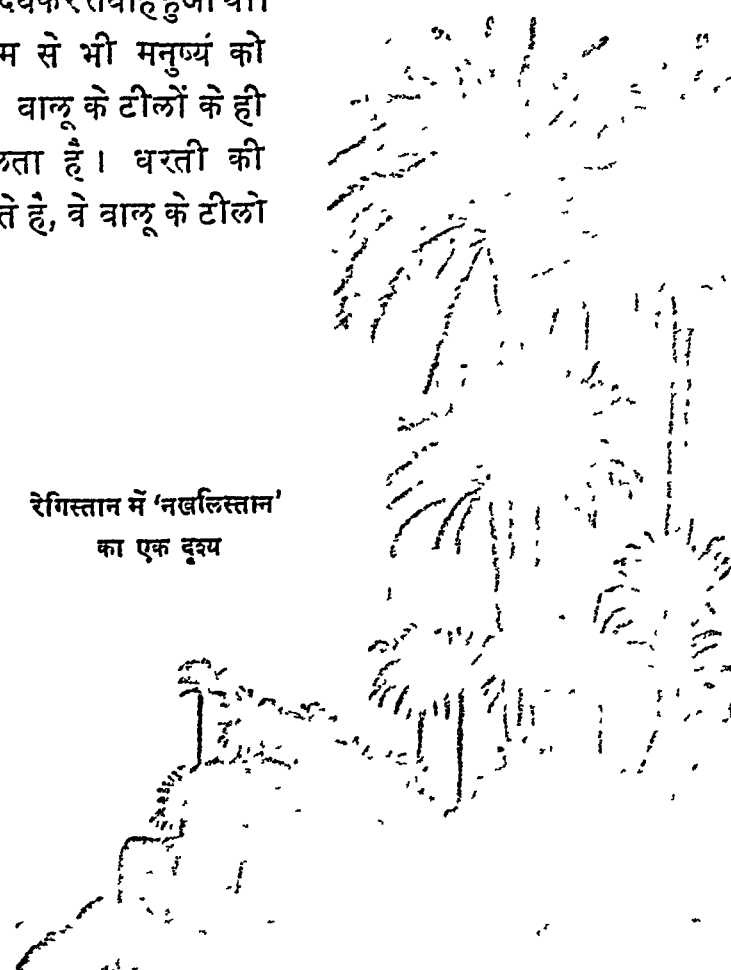
सैकड़ों साल से लगातार चलनेवाली आँधियों में उड़कर आए मिट्टी के कण मध्य यूरोप, मिसीसिपी की घाटी और उत्तरी चीन के निचले भागों में बिछ गए हैं। हवा द्वारा जमा हुई इस मिट्टी को 'लोयस' कहते हैं। लोयस की तहों की मोटाई अलग अलग स्थानों पर अलग अलग है। कहीं वे २० फुट से ४० फुट तक और कहीं १०० फुट तक मोटी है। उत्तरी चीन में तो लोयस की तह ७०० फुट तक मोटी है। अलग अलग स्थानों पर लोयस का रंग भी अलग अलग है। बहुत सी जगहों पर इसका रंग भूरा है। पर चीन की अधिकतर उपजाऊ भूमि पीली लोयस से बनी है। इसी कारण उत्तरी चीन की ह्वांगहो नदी "पीली नदी" कहलाती है। वह जिस समुन्दर में गिरती है उसे भी "पीला सागर" कहते हैं।

चीन में 'लोयस' मिट्टी की ऊँचाई का अनुमान उसमें काट कर बनाए गए घरों से लगाया जा सकता है

बर्फ से भी धरती पर ऐसे उलट फेर होते रहते हैं जिनका मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उत्तरी और दक्खिनी ध्रुवों के आस पास बहुत अधिक ठंड होने से वहाँ पानी नहीं बरसता। ऊँचे पहाड़ों पर भी पानी नहीं बरसता। इन स्थानों पर सदा बर्फ ही गिरती है। एक खास ऊँचाई के बाद बरफ कभी नहीं पिघलती। इस ऊँचाई को 'हिमरेखा' कहते हैं। हिमरेखा समुद्र

के अलग अलग हिस्सों में अलग अलग ऊँचाइयों पर होती है। ध्रुवों के इलाके में वह समुन्दर की सतह पर ही होती है, पर भूमध्य रेखा के पास ८,०००

एन्टार्कटिका में 'हिमावरण' का एक दृश्य

फ़ुट की ऊँचाई पर। हिमरेखा से ऊपर वरफ वरावर अधिक होती जाती है। वहाँ इतनी ठंड होती है कि गरमी में भी वरफ नहीं पिघलती। जब वरफ गिरती है तो वह ताजी धुनी हुई रूई की तरह नरम होती है। लेकिन एक तह पर दूसरी तह का भार वढ़ते जाने से वह ठोस वन जाती है। पर कुछ समय वाद वरफ की निचली तहें ऊपरी तहों के भार से अन्दर ही अन्दर गलने लगती हैं, जिसके कारण मोटी तहें धीरे धीरे खिसकने लगती है, और उनका एक सिलसिला वन जाता है। वरफ़ की मोटी

तहों के उस खिसकते हुए सिलसिले को "हिमनदी", "हिमानी" या "ग्लेशियर" कहते हैं।

हिमालय पर्वत पर हजारों हिमनदियाँ पाई जाती हैं। वहाँ दो या तीन मील लम्बी हिमनदियाँ तो बहुत सी हैं, पर अधिक लम्बी हिमनदियों की संख्या भी कम नहीं है। सिआचन नाम की हिमनदी तो ४५ मील लम्बी है।

स्विटज़रलैंड में 'फिशर' नाम का प्रसिद्ध ग्लेशियर, सतह पर दिखाई देने वाली काली रेखाएँ 'मोरेन' हैं।

हिमनदी शुरू में काफी चौड़ी होती है, परंतु ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ती है पतली होती जाती है। हिमनदी की चाल आम तौर से बहुत धीमी होती है। वह दिन भर में एक या दो फुट की चाल से बहती है। पर कभी कभी उसमें तेज़ी भी आ जाती है। जहाँ धरती अधिक ढलवाँ होती है और गरमी अधिक पड़ती है वहाँ जमी हुई बरफ की निचली तह अधिक पिघलती है। इसलिए हिम का बहाव तेज़ हो जाता है।

हिमनदी के काम मामूली नदियों के काम के मुकाबले में छोटे होते हैं। पानी की नदी की तरह हिमनदी भी रास्ते की चट्टानों को घिसती, काटती

हिमनदी द्वारा घिसी और रगड़ी गई चट्टानें
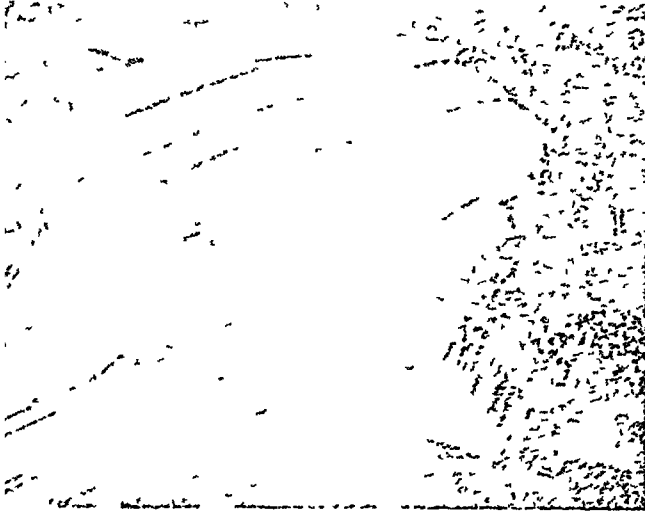
और तोड़ती जाती है। वह चट्टानों के टुकड़ों को अपने साथ बहाकर ले जाती है और रास्ते में चूरे, रोड़े और पत्थर के टुकड़े जमा करती जाती है। फिर भी रोड़ों और पत्थर के टुकड़ों का एक बड़ा ढेर हिमनदी के साथ बहता हुआ अंत तक चला जाता है, और उसके अंतिम सिरे पर जमा हो जाता है। हिमनदी के किनारे और अंत मे जमा होनेवाली चीज़ों को 'मोरेन' कहते है। केवल बरफ़ किसी प्रकार की तोड़ फोड़ नहीं कर सकती। बरफ़ में जमे हुए रोड़े, कंकड़ और पत्थर के टुकड़े हिमनदी के साथ बहते चलते हैं, और वे ही रास्ते की तली और किनारे की चट्टानों को घिसते और तोड़ते फोड़ते है।

चट्टान तथा पत्थर के जो बड़े बड़े टुकड़े पहाड़ों पर से पानी के बहाव के साथ साथ गिरते है, वे पानी की नदी में बहने लगते है और उसकी तली और किनारों से टकरा कर टूट फूट जाते हैं। पर जब वे हिमनदी में गिरते है, तो बरफ में अटक जाते है और ज्यों के त्यों बहुत दूर पहुँच जाते है। हिमनदी

जैसे जैसे आगे बढ़ती जाती है, उसकी घाटी गहरी और चौड़ी होती जाती है। हिमनदी दूसरी नदियों की तरह नई घाटी नहीं बना सकती, पर दूसरी नदियों की बनाई सँकरी और गहरी घाटियों को काट और घिसकर चौड़ी और गहरी अवश्य कर देती है।

जिस घाटी में हिमनदी एक बार बह चुकी हो उसे पहचानना बहुत सरल है। ऐसी घाटी चौड़ी और घिसी हुई होती है। उसके शुरू वाले छोर पर बहुत बड़ा खड्ड होता है, जिसे 'हिमागार' कहते हैं। उसमे तेज़ मोड़ नहीं होते और उसके तल की सतह ढाल और सीढ़ी-नुमा होती है।

न्यूज़ीलैंड में हिमनदी से बनी 'रोटोरोआ' झील

हिमनदियों की बरफ को भी एक न एक दिन पानी या भाप बनना पड़ता है। गरम घाटियों में पहुँचने पर उसकी बरफ पिघलने लगती है, और उसके पानी से झीलें और नदियाँ फूट पड़ती हैं।
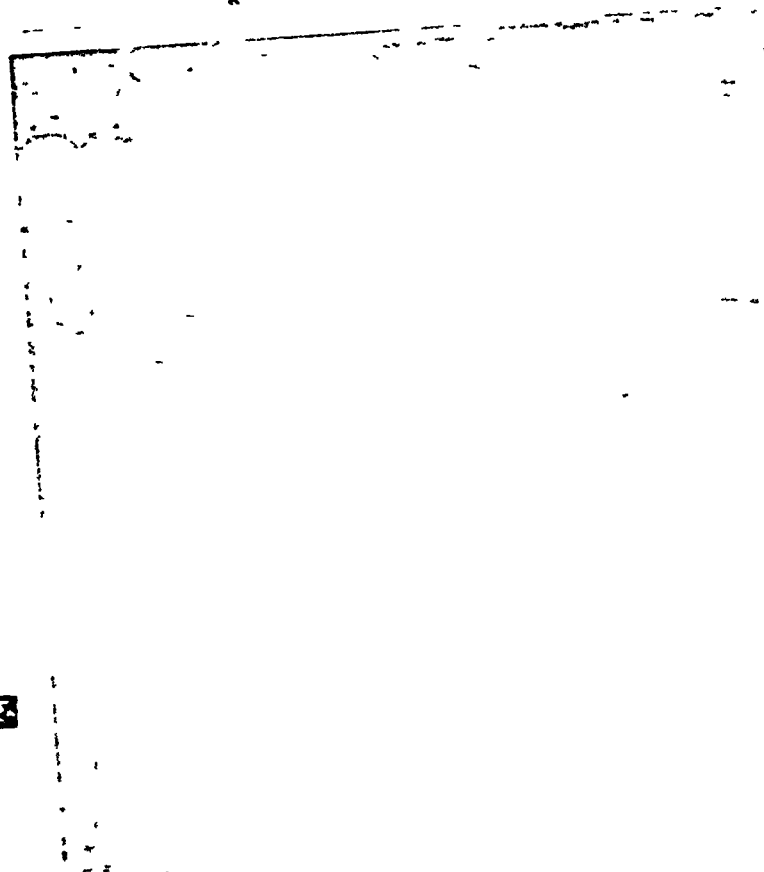
स्विट्जरलैंड की वहुत सी झीलें और भारत की मानसरोवर और राकासताल झीलें इसी प्रकार वनी है। मानसरोवर और राकासताल झीलो से ही सिंध, सतलज, गंगा और ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ निकली है। हिमनदियो के वनाए झरने और झीले मनुष्यो के लिए वहुत काम की होती है। ऐसे झरनो से वहुत सी जगहों पर पनविजली पैदा की जाती है, जिनसे कई तरह के घरेलू धंधे चालू हो सकते है।

ग्रीनलैंड, एन्टार्कटिक और आइसलेंड जैसे वहुत ठंडे इलाक़ो मे इतनी वरफ गिरती है कि वहाँ के पर्वत, मैदान और घाटियाँ वरफ की मोटी तहों से ढकी रहती हैं। चारों ओर वरफ के सिवा और कुछ नही दिखाई देता। दूर दूर तक फैली वरफ की इन मोटी तहों को 'हिम-आवरण' कहते हैं। ऐसे इलाक़े की हिमनदी वहती हुई समुन्दर तक पहुँच

दक्षिणी महासागर ऐसी ही विशाल हिमशिलाओं से ढका रहता है

ऊपर के चित्र में एक बहुत बड़े शिलाखंड की दो विशाल चोटियां दिखाई दे रही हैं। शिलाखंड का अधिकतर भाग पानी में ढका है। पास में एक गश्त लगाने वाला जहाज खड़ा है, जो शिलाखंड के टूटकर दो टुकड़े हो जाने पर दूसरे जहाजों को खतरे की सूचना देगा।

जाती है और उसमें बहती हुई बर्फ की चट्टानें टूट टूटकर समुन्दर में गिरकर तैरने लगती हैं। बर्फ के उन भारी टुकड़ों को 'हिमशिला' कहते हैं। कुछ हिमशिलाएँ मीलों लम्बी चौड़ी होती हैं। उनका थोड़ा हिस्सा ही पानी के ऊपर रहता है, जिससे वे दूर से दिखाई नहीं देती और कभी कभी जहाज उनसे टकराकर टूट जाते हैं। हिमशिलाएँ जब पानी की गरम धारा से टकराती हैं तो पिघलने लगती हैं और उनके साथ आए पत्थर आदि समुन्दर की तली में बैठ जाते हैं।

समुन्दर में बहती हुई सपाट हिमशिला

(१)

श्रीलंका

श्रीलंका एक टापू है। वह भारत के दक्खिनी छोर से लगभग मिला हुआ है। श्रीलंका और भारत के सम्बन्ध बहुत पुराने हैं। अब से कोई २,५०० बरस पहले उत्तर भारत से 'विजय' नाम का एक व्यक्ति वहाँ गया था। उस समय श्रीलंका के एक भाग में 'वेद्धा' जाति का राज था। विजय ने 'वेद्धा' जाति की एक राजकुमारी से शादी कर ली और उसकी सहायता से राजा को हराकर श्रीलंका मे अपना राज कायम कर लिया। 'वेद्धा' लोग वहाँ के सबसे पुराने

निवासी थे। उस जाति के कुछ बचे खुचे आदिवासी आज भी श्रीलंका के जंगलों में पाए जाते हैं।

कहा जाता है कि विजय के पिता का नाम 'सिंह' था। इसलिए उसने श्रीलंका का नाम 'सिंहल-द्वीप' रख दिया और बहुत समय बीतने पर श्रीलंका के निवासी 'सिंहली' कहलाने लगे।

श्रीलंका के आदिवासी

विजय का राजघराना 'महावंश' कहलाता है। जिसने ईस्वी पूर्व ५४३ से सन् २७५ ई० तक राज किया। पर साढ़े आठ सौ साल का यह राज लगातार कायम नहीं रहा। कई बार ऐसा हुआ कि दक्खिनी भारत से साहसी लोगों के गिरोह के गिरोह वहाँ गए और उस समय के राजा को हराकर खुद राजा बन बैठे। पर हर बार महावंश के लोगों ने किसी न किसी प्रकार अपना राज वापस ले लिया।

महावंश के बाद सन् ३०२ ईस्वी से सन् १७०८ ईस्वी तक श्रीलंका में 'सुलावंश' ने राज किया। इस वंश में कई प्रगतिशील और अच्छी रुचि वाले राजा हुए। उनमें से कुछ कला और संगीत के बड़े पारखी थे। उस काल में दूर दूर के देशों के साथ श्रीलंका के सम्बन्ध कायम हुए और कई देशों को राजदूत भेजे गए।

सन् १७९८ इस्वी के बाद वहाँ कुछ वर्षों तक पुर्तगालियों और डचो का राज रहा और अंत में अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अभी हाल तक वहाँ अंग्रेजों का ही राज था। उन्हीं के ज़माने मे श्रीलंका नाम बिगड़कर सीलोन पड़ा। आज भी अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग श्रीलंका को सीलोन ही कहते हैं। किंतु आज़ाद होने के बाद से उसका सरकारी नाम 'श्रीलंका' हो गया है।

जलवायु और भौगोलिक स्थिति ने श्रीलंका के इतिहास और सभ्यता पर काफी असर डाला है। चारों ओर समुन्दर से घिरे हुए उस टापू की शक्ल नक्शे पर पान के पत्ते जैसी दिखाई देती है। दक्खिन की ओर लगभग बीच मे ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं, जिनकी चोटियाँ छ हज़ार से पौने नौ हज़ार फ़ुट तक ऊँची है। देश की सभी नदियाँ उन्हीं पहाड़ों से निकलकर समुन्दर की ओर बहती हैं। उन पहाड़ों के चारों ओर मैदान हैं, जो समुन्दर की ओर ढालू होते गए हैं और जो पूरब, दक्खिन और पच्छिम मे कम चौड़े हैं, किन्तु उत्तर की ओर काफी दूर तक फैले हुए हैं।

श्रीलंका के दक्खिन-पच्छिमी भाग मे मानसूनी हवा के कारण खूब वर्षा होती है। अधिक वर्षा और नम जलवायु के कारण देश का वह भाग 'गीला प्रदेश' कहलाता है। विषुवत रेखा के पास होने से उस भाग की जलवायु मे बहुत अदल बदल नहीं होती। इसलिए वहाँ खेती अधिक होती है।

पूरब, पच्छिम और उत्तर के मैदानों को 'सूखा प्रदेश' कहते हैं, क्योंकि वहाँ वर्षा कम होती है। तेज धूप और खुश्की के कारण जमीन,

नदी और तालाब सूखे रहते हैं। सूखे प्रदेश का अधिकांश भाग बंजर और वीरान है। जलवायु और मलेरिया की बीमारी के कारण कोई वहाँ रहना पसंद नहीं करता। किंतु पुराने जमाने में 'सूखे प्रदेश' के उत्तरी मैदानों में ही श्रीलंका की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति पैदा हुई और वहीं फली फूली। इसका प्रमाण यह है कि प्राचीन बस्तियों के ज्यादातर खँडहर उसी इलाके में हैं। उस युग में भारत से आनेवाले लोग भी उत्तर के सूखे प्रदेश में ही आबाद हुए, क्योंकि समुन्दर पार करने पर श्रीलंका का उत्तरी भाग ही पहले मिलता है।

क्षेत्रफल में श्रीलंका २५,००० वर्गमील से कुछ अधिक है और आबादी ८० लाख है। वहाँ निवासियों में अधिकतर सिंहली नसल के लोग हैं। वे पुराने जमाने में भारत से जाकर वहाँ बस गए थे। सिंहलियों की संख्या लगभग ५८ लाख है। वे लोग अधिकतर बौद्ध हैं और सिंहली भाषा बोलते हैं। उनके अलावा एक बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो हाल में भारत से जाकर वहाँ आबाद हुए हैं। उनमें से अधिकांश मद्रास प्रान्त के रहनेवाले हैं। लगभग छ फीसदी आबादी 'मूर' जाति के मुसलमानों की है। वे अपने को उन अरब सौदागरों की संतान बताते हैं जो प्राचीन काल में वहाँ जाकर बसे थे। ईसाइयों की आबादी भी लगभग १० फीसदी है। वे ज्यादातर कैथोलिक हैं और पच्छिमी तट पर आबाद हैं। कुछ 'वेद्दा' और 'यक्ख' नाम के आदिवासी भी हैं जिनकी संख्या दिन पर दिन घटती जा रही है।

श्रीलंका के निवासी आमतौर से स्वस्थ और साहसी होते हैं। उत्तर भारत के रहनेवालों की भाँति उनका रंग गेहुँआ होता है। सूरत शक्ल हिन्दुस्तानियो जैसी होती है। उनके मकान छोटे, पर साफ़ सुथरे होते हैं। उनका पहनावा दक्खिन भारत के लोगों के पहनावे जैसा सादा होता है। सूखी मछली और चावल उनका आम भोजन है।

श्रीलंका का एक साधारण परिवार

वहाँ की ८० फ़ीसदी आबादी पूरे देश के लगभग एक तिहाई भाग में बसी हुई है। बाकी २० फ़ीसदी लोग 'सूखे प्रदेश' में बहुत दूर दूर पर आबाद हैं। भारत की भाँति वहाँ की आबादी का अधिकतर भाग गाँवों में रहता है। खेती उनका मुख्य धंधा है। केवल १५ फीसदी लोग शहरों मे आबाद हैं। वे लोग या तो मज़दूर और नौकरी पेशा है या व्यापार करते हैं।

पैदावार मे चाय, रबड़ और नारियल श्रीलंका की खास पैदावारें हैं। वहाँ भारत को छोड़कर दूसरे सभी देशों से अधिक चाय पैदा होती है। खेती के ज़रिए होनेवाली लगभग तीन चौथाई आमदनी इन्हीं तीन चीज़ों से होती है। यही कारण है कि

देश के जितने भाग में खेती होती है उसके दो तिहाई हिस्से मे चाय, रबड़ और नारियल की उपज होती है। ये चीज़े दूसरे देशो को भेजी जाती है, जिससे श्रीलंका को विदेशी मुद्रा की आमदनी होती है और विदेशी व्यापार बढ़ाने की सुविधाएँ हासिल होती हैं। सौ बरस पहले नारियल ही देश की आमदनी का मुख्य जरिया था। पिछली सदी मे चाय और रबड़ की बढ़ती हुई माँग ने उसे तीसरे नंबर पर डाल दिया।

नारियल का बाग़

धान वहाँ का खास अनाज है। 'गीले प्रदेश' के पहाड़ी इलाको, घाटियों और उनके आस पास के मैदानों में दूर दूर तक धान के खेत फैले हुए हैं। वे हज़ारों छोटे छोटे टुकड़ों में बँटे हुए पहाड़ों पर लगभग ३,००० फ़ुट की ऊँचाई तक फैले हुए हैं। धान के अलावा श्रीलंका में फल, तरकारियाँ, तम्बाकू और दूसरे अनाज भी पैदा होते हैं, किंतु उनसे देश की आवश्यकता पूरी नही होती। इसलिए श्रीलंका की सरकार को हर साल चावल और दूसरे अनाज विदेशो से मँगाने पड़ते हैं। पहले वहाँ दालचीनी भी बहुत पैदा होती थी, पर अब उसकी उपज कम हो गई है।

खनिज पैदावार में पेंसिल का मसाला, कई तरह के क़ीमती और सस्ते रत्न, काला सीसा, शीशे की रेत और चीनी के बर्तन बनाने की तरह तरह की मिट्टी वहाँ अधिक होती है। श्रीलंका का 'चंद्रकात मणि' या 'मून-स्टोन'

श्रीलंका की औरतें टोकरियाँ बना रही हैं।
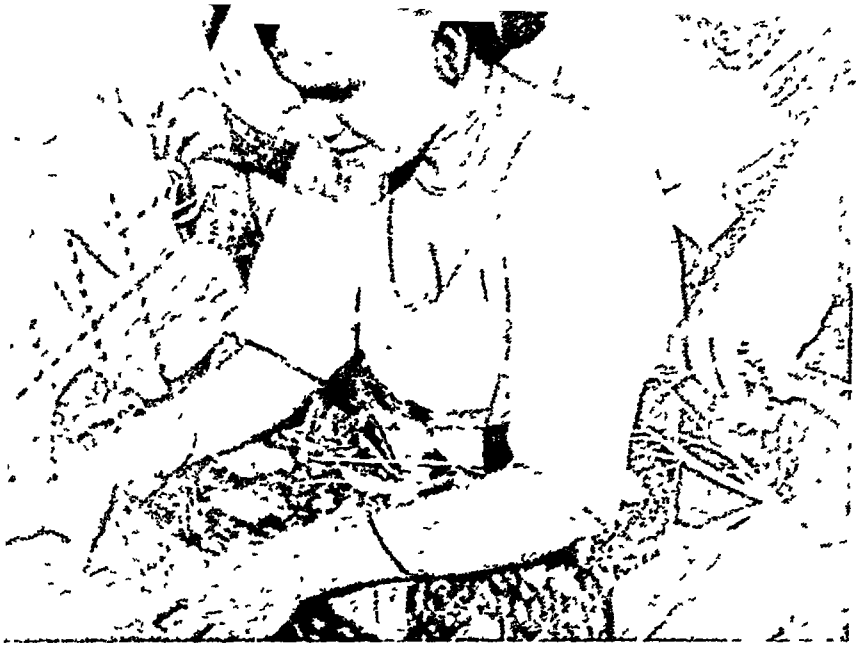
सारे संसार में प्रसिद्ध है। कहीं कही अभ्रक की भी छोटी छोटी खानें है। कच्चा लोहा काफ़ी पाया जाता है, किंतु एक जगह नहीं। इसलिए उससे अधिक लाभ नही उठाया जा सकता।

श्रीलंका मे उद्योग और दस्तकारियों की अच्छी प्रगति हुई है। वहाँ नमक, सिमेंट, कपड़ा, सिगरेट, साबुन और जूते बनाने के अनेक कारखाने है। चाय और रबड़ के कारखानो मे काम आनेवाली मशीनें भी बनती है। शीशे, चीनी मिट्टी और मिट्टी के बर्तन बनाने का काम बहुत होता है। दियासलाई, सिगार, लाख के सामान, टोकरियो और ऊन से बननेवाली जालियों आदि का कारोबार वहाँ काफ़ी फैला हुआ है।

जब से 'गीले प्रदेश' के अधिकतर जंगल काटकर वहाँ खेती होने लगी है, तब से लकड़ी का उद्योग बहुत कम हो गया है। 'सूखे प्रदेश' मे जंगल तो है पर वहाँ की लकड़ी तिजारती काम के लिए
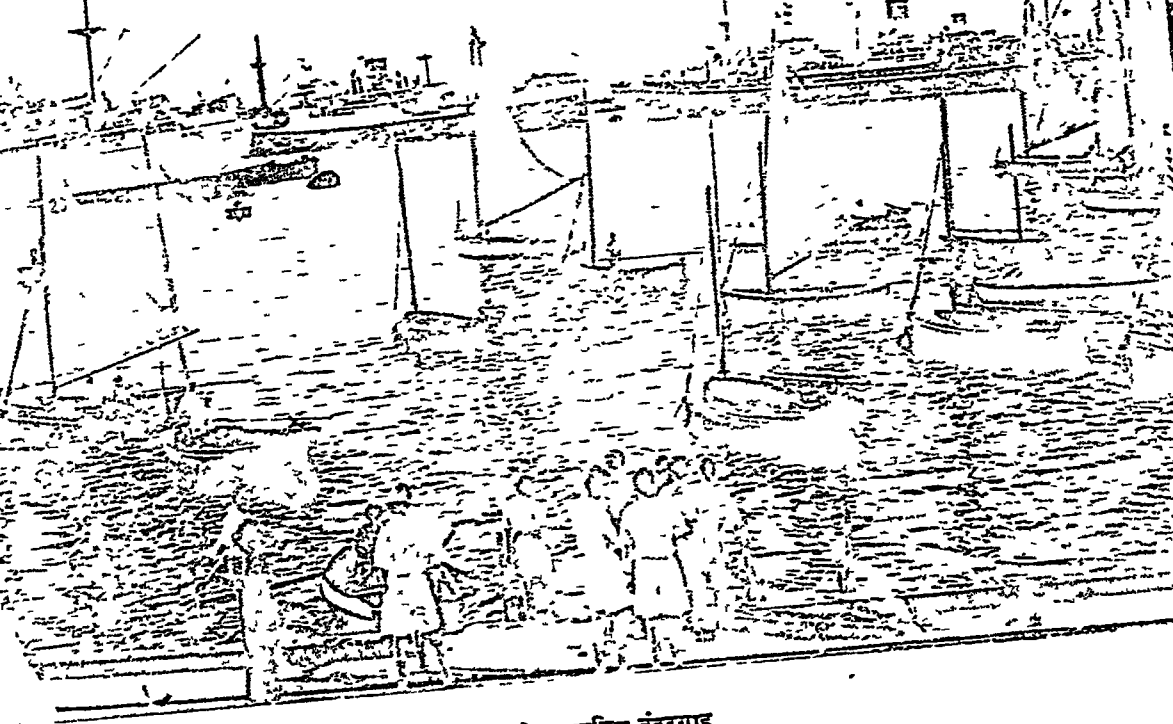
कोलम्बो का कृत्रिम वंदरगाह

अच्छी नही है। वहाँ प्लाई-वुड के भी थोडे से कारखाने है। समुन्दर के तट पर आवाद लोग मछली पकड़ने और वेचने का काम करते है।

कोलम्वो श्रीलका की राजधानी है। वह देग के पच्छिमी तट पर वसा है और वहुत वड़ा वदरगाह है। वह एक कृत्रिम वंदरगाह है और हाल मे ही वना है। कहते है वह पूरवी देशो मे सवसे सुन्दर वदरगाह है। नगर भी कुछ कम सुन्दर नही है। वहाँ संसद भवन, सचिवालय, अजायवघर और विक्टोरिया पार्क देखने लायक स्थान है।

२५०० वरस पुराना पीपल का पेड

कोलम्बो से कोई ८ मील दूर सैर सपाटे के लिए एक वड़ा ही सुहावना स्थान है, जिसे 'लिवीनिया' कहते है। कैलानिया का मशहूर मंदिर भी राजधानी से कुछ ही दूर दक्खिन मे है। देश के दक्खिनी तट पर गाली का वंदरगाह है, जो पहले श्रीलका का सवसे वड़ा वंदरगाह था।

प्राचीन वस्तियों के वहुत से खँडहर वहाँ पाए जाते है। जिन्हें देखने से पता चलता है कि वे किसी समय शानदार नगर रहे होंगे। उनमें से अनुराधपुर, पोलोनारुवा, काँडी और सिगरिया अधिक मशहूर है। अनुराधपुर उत्तर में है। श्रीलंका के राजाओं की पहली राजधानी वही थी। वहाँ लगभग ढाई हज़ार वरस पुराना 'पीपल' का वह पेड़ है, जिसे सम्राट् अशोक की वेटी राजकुमारी संघमित्रा ने हिन्दुस्तान से ले जाकर लगाया था। कहा जाता है कि वह संसार में सवसे पुराना पेड़ है।

सिगरिया में पहाड़ काटकर वनाया गया मंदिर

पोलोनारुवा मे सिंहलियों की दूसरी वड़ी राजधानी थी। वहाँ कई वड़े वड़े तालाव और ऊँची मूर्तियाँ है। सिगरिया मे पहाड़ काटकर उसके अंदर वनाया हुआ एक प्राचीन मंदिर है। उस मंदिर की मूर्तियाँ श्रीलंका की पुरानी कला का सवसे सुन्दर नमूना है।

काँडी सिंहलियों की आखिरी
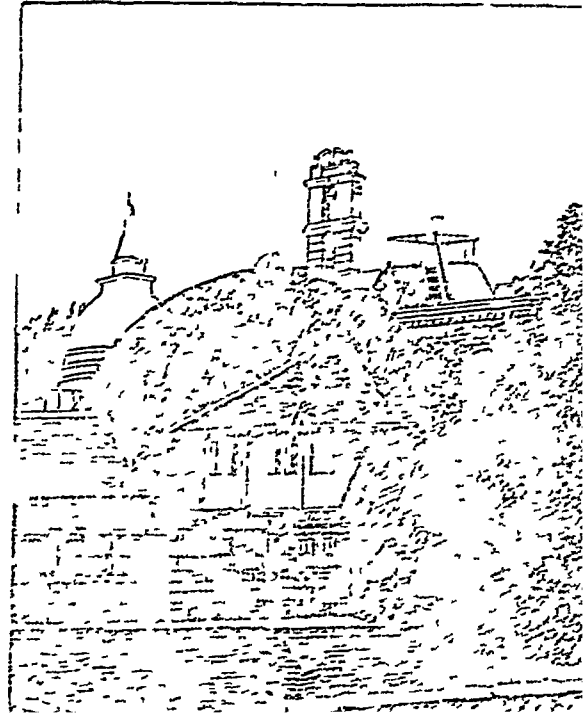
राजधानी थी। वहाँ के प्राकृतिक दृश्य बहुत ही मनोहर है। काँडी मे ही वह प्रसिद्ध मंदिर है जिसमे महात्मा बुद्ध का एक दाँत रखा हुआ है। वहाँ 'पेराहेरा' नामक एक त्योहार मनाया जाता है, जिसमे उस दाँत को एक सजे हुए हाथी पर रखकर जलूस के रूप मे घुमाया जाता है। 'पेराहेरा' श्रीलंका का बहुत बड़ा त्योहार है।

ईसा से लगभग ३०० वरस पहले भारत के प्रसिद्ध सम्राट् अशोक ने अपने पुत्र और पुत्री को बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए श्रीलका भेजा था। बौद्ध धर्म वहाँ बहुत तेजी से फैल गया। आज भी लगभग ६० फीसदी लोग बौद्ध धर्म के माननेवाले हैं। वहाँ की कला पर बौद्ध धर्म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। वह प्रभाव मदिरो, स्तूपों और मूर्तियों मे साफ दिखाई देता है।

काँडी का प्रसिद्ध मदिर जिसमें भगवान बुद्ध का दाँत रखा है।

आदम की चोटी

'आदम की चोटी' श्रीलंका का सबसे प्रसिद्ध स्थान है। वह एक ऊँची पहाड़ी

चोटी है, जिसे लोग आम तौर से 'सुमन कूट' या 'समनल कंद' कहते हैं। बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान, यहूदी और ईसाई सभी उसे अपना पवित्र तीर्थ मानते हैं और दूर दूर से उसके दर्शन करने आते हैं। 'आदम की चोटी' ही दुनिया मे एक ऐसी जगह है जिसे पाँच पाँच धर्मों के लोग अपना तीर्थ मानते हैं। यहूदी, ईसाई और मुसलमान यह मानते हैं कि 'आदम' स्वर्ग से पृथ्वी पर वहीं उतरे थे। हिन्दू उसे शिवजी के और बौद्ध उसे भगवान बुद्ध के उतरने की जगह मानते हैं।

सिंहली और तामिल श्रीलंका की दो मुख्य भाषाएँ हैं। सिंहली बोलनेवाले गिनती मे अधिक हैं। तीसरी बड़ी भाषा अंग्रेज़ी है। उसका प्रचार शहरों मे ही अधिक है। शहरों मे कहीं कहीं मलयालम भी बोली जाती है।

श्रीलंका मे शिक्षा का पहले भी काफी प्रचार था, पर आज़ाद होने के बाद से शिक्षा में जबरदस्त उन्नति हुई है। स्कूलों मे पढाई की कोई फ़ीस नहीं ली जाती। केवल खेलों के लिए नाम मात्र की फ़ीस ली जाती है। देश मे सैकड़ों स्कूल और कालिज हैं। डाक्टरी, उद्योग और खेतीबारी आदि की विशेष शिक्षा के लिए भी अलग अलग विद्यालय हैं। इनके अलावा कोलम्बो मे एक बड़ा विश्वविद्यालय भी है।

व्यापार और कला कौशल की उन्नति के साथ साथ यातायात के साधनों की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। सारे देश मे सड़कों का जाल सा बिछा हुआ है। रेलें देश के पूरबी भाग

की अपेक्षा पच्छिमी भाग मे अधिक है। कोलम्वो रेलो का वड़ा केंद्र है। समुन्दर के किनारे किनारे मैदानों मे वहुत दूर तक रेल की लाइने विछी हैं। श्रीलंका मे समुन्दर तट की रेल यात्रा वहुत मनोरजक होती है। हवाई जहाज़ो से विदेश यात्रा का भी प्रवंध है और देश मे कई वड़े और अच्छे हवाई अड्डे हैं। वहाँ के हवाई अड्डो का सारी दुनिया के लिए वड़ा महत्व है, क्योकि अतलातक पार के देशो से दक्षिण-पूर्वी एशिया या सुदूर पूर्व जानेवाले हवाई जहाजो को पेट्रोल भरने के लिए कोलम्वो मे रुकना पड़ता है। स्वतत्र होने के वाद से ससार के लगभग सभी देशो के साथ श्रीलंका के राजनीतिक और व्यापारिक सम्वन्ध कायम हो गए हैं।

श्रीलका के लोग खेल कूद, सगीत, नाच और नाटक के वहुत शौकीन है। वहाँ का 'कैंडियन नाच' सारे ससार में प्रसिद्ध है।

श्रीलका का प्रसिद्ध 'कैंडियन नाच'
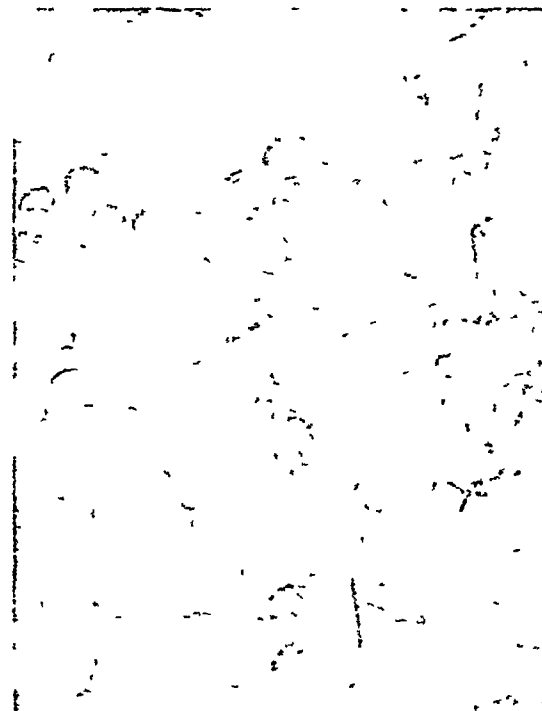
(२)

अफ़ग़ानिस्तान

★

अफ़ग़ानिस्तान बहादुर अफ़गानो का देश है। वह पाकिस्तान के उत्तर पच्छिम मे है। उसका क्षेत्रफल लगभग पौने तीन लाख वर्गमील और आबादी डेढ़ करोड़ से कुछ कम है।

उस देश का अधिकतर भाग पहाड़ी है। उसकी उत्तर-पूरबी सीमा पर 'पामीर का पठार' है, जो संसार का सबसे ऊँचा पठार है और अपनी ऊँचाई के कारण 'दुनिया की छत' कहलाता है। अफ़ग़ानिस्तान के ज़्यादातर हिस्से मे 'हिन्दूकुश' नामक पहाड़ के सिलसिले फैले हुए हैं। ये सिलसिले उत्तर-पूरबी भाग मे शुरू होकर दक्खिन पच्छिम की ओर चले गए है। पूरब और दक्खिन पूरब मे घाटियाँ और छोटे छोटे मैदानी इलाक़े है। दक्खिन पच्छिम मे एक बहुत गरम और सूखा रेगिस्तान है, जिसे वहाँ के लोग 'दश्ते मर्ग' या 'मौत का रेगिस्तान' कहते है। रेगिस्तान के आसपास जो छोटे छोटे मैदानी इलाके है उनमे पानी पहुँचाने का तरीका बहुत ही अजीब है। वहाँ तेज़ धूप

और गरम हवा की वजह से पानी बहुत जल्द सूख जाता है। इसलिए साहसी किसान अपनी बस्ती और खेतों तक पानी ले जाने के लिए गुप्त नहरे खोदते है। ये नहरे ज़मीन के नीचे काफी गहराई मे सुरगो की तरह होती है और इनके द्वारा बीस बीस मील तक पानी ले जाया जाता है।

अफगानिस्तान की ज्यादातर भूमि उपजाऊ नही है। जिन मैदानी इलाको मे खेती होती है वहाँ भी वर्षा काफी और समय पर नही होती। केवल नदियो के पानी पर ही लोगो का जीवन और खेतीबारी निर्भर है। उत्तर मे आमू नदी अफग़ानिस्तान को रूस की सीमा से अलग करती है। काबुल, हेलमद, फरात और हरीरोद वहाँ की दूसरी बडी नदियाँ है। वहाँ हामूँ और गोजरा नाम की दो मशहूर झीले भी है जिनका पानी खारा है।

अफगानिस्तान का जलवायु आम तौर से सूखा और सरद है। उत्तरी और पच्छिमी भाग में जाडे के दिनो मे पानी बरसता है और बरफ गिरती है। मानसून के दिनो मे पूरबी इलाक़े मे भी बारिश होती है। सरदियो मे वहाँ बेहद ठंड पड़ती है और गरमियों में उत्तरी, दक्खिनी और पूरबी भागो मे कडी गरमी।

इतिहास इस बात का गवाह है कि बहुत पुराने जमाने से अफगानिस्तान का हमारे देश से गहरा सम्बन्ध रहा है। अशोक, कनिष्क, अकबर और औरंगज़ेब जैसे भारत के कई सम्राटो ने अफगानिस्तान पर राज्य किया। इसी तरह गोरी, खिलजी और तुगलक जैसे कई अफगानी घरानो का भारत मे भी शासन रहा।

अफ़गानिस्तान मे राष्ट्रीय शासन को कायम हुए बहुत दिन नही हुए। यो तो अफगानिस्तान मे ताहिरी, यफताली और गज़नवी राजाओं

वादशाह राज्य का सवसे वड़ा आधिकारी है। उसकी ही मजूरी से प्रवानमत्री और दूसरे मंत्रियों की नियुक्ति होती है। विना शाही मुहर लगे कोई भी कानून लागू नहीं हो सकता। जरूरत होने पर वादशाह मत्रिमडल को भंग भी कर सकता है। उसकी आज्ञा के विना न लड़ाई छेडी जा सकती है और न कोई सधि की जा सकती है।

जव कोई वडा राष्ट्रीय महत्व का सवाल पैदा हो जाता है तव पुरानी परम्परा के अनुसार आम लोग भी मिलकर उसपर विचार करते और फैसला देते हैं। आम लोगो की ऐसी सभा को 'लोयाजिर्गा' कहते है।

पश्तो और फारसी दोनो ही अफगानिस्तान की राजभापाएँ है। जिन क्षेत्रो मे पश्तो अविक वोली जाती है, वहाँ शिक्षा पश्तो में दी जाती है और फारसी दूसरी भापा के रूप मे पढ़ाई जाती है। इसी प्रकार जिन क्षेत्रो मे फारसी वोलनेवाले अधिक है वहाँ फारसी में पढ़ाई होती है और पश्तो दूसरी भापा के रूप में पढ़ाई जाती है। अफगानिस्तान मे प्राइमरी तक की शिक्षा सवके लिए अनिवार्य है। अनिवार्य शिक्षा का कानून दूर के कुछ ऐसे इलाको मे लागू नही जहाँ किसी लाचारी के कारण सावन और सुविवाएँ नही जुटाई जा सकती। फिर भी उन दूर के इलाको मे कई जगह सरकार की ओर से मस्जिदों में 'देहाती स्कूल' खोले गए है। ये स्कूल 'मुल्लाओ के मदरसे' कहलाते है। देश मे फौजी शिक्षा अनिवार्य है। हर नागरिक को कम से कम दो वरस की फौजी शिक्षा लेनी पडती है। अफगानिस्तान की
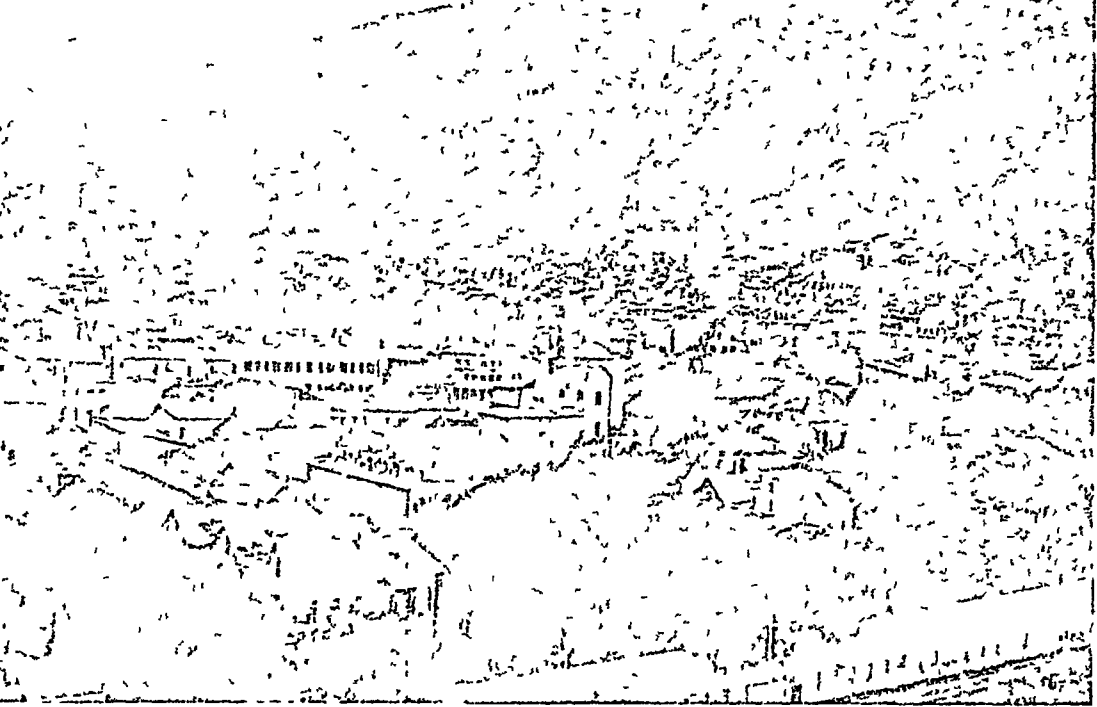
अफग़ानिस्तान की राजधानी काबुल का एक दृश्य

राजधानी काबुल मे एक विश्वविद्यालय और कई बड़े कालेज है, जिनमें और विषयों के अलावा संस्कृत भी पढ़ाई जाती है, जिसे वहाँ के पढ़े लिखे लोग अपनी पुरानी भाषा मानते है। देश के अन्य शहरो मे भी ऊँची शिक्षा का प्रबंध है।

खनिज पैदावारों मे सोना, चाँदी, ताँवा, सीसा, कोयला, नमक, लाल, फ़ीरोजा, क्रोमियम, लाजवर्द और एसबस्टस आदि धातुएँ अफ़ग़ानिस्तान मे बहुत निकलती है। खेती बहुत थोड़ी जमीन में होती है। आम तौर से साल मे दो फसले होती है, पर ऊँचाई पर बसे इलाको में सरदी के कारण केवल एक ही फसल पक पाती है। अफगानिस्तान मे

गेहूँ, जौ, चावल, दाल और मक्का की पैदावार अधिक होती है। अंगूर, शफ़ताल्, नाशपाती, अखरोट, आलूबुख़ारा, बेर, खरबूजा, सेव, अनार और अंजीर आदि खूब पैदा होते हैं। अकेले अंगूर ही ७० तरह के होते हैं। इनके अलावा सभी तरह की तरकारियाँ भी पैदा होती हैं।

अफगानिस्तान में सिंचाई के लिए अब नए नए साधन जुटाए जा रहे हैं। हलमंद नदी से एक बड़ी नहर निकाली गई है। उसका नाम 'बोगरा नहर' है, जो ५५ मील लम्बी है। हलमंद और अरगंधान पर बाँध भी बनाए जा रहे हैं। उन बाँधो के तैयार हो जाने पर लगभग साढ़े तीन लाख एकड भूमि पर खेती होने लगेगी।

ससार के अन्य देशों की भाँति अफगानिस्तान मे भी अब उद्योग और दस्तकारियो की उन्नति हो रही है। पुलखुमरी और गुलबहार मे सूती कपड़े की मिले खुल चुकी हैं। जबलुस्सिराज मे भी एक सूती कपडे की मिल है। वहाँ सिमेट का भी एक कारखाना है। काबुल अफगानिस्तान की दस्तकारियों और व्यापार का केंद्र है। वहाँ दियासलाई, जूते, ऊन और लकडी के सामान बनाने के कई कारखाने हैं। शक्कर का एक कारखाना बगलान मे खुल चुका है और दूसरा जलालाबाद में खोला जा रहा है। कधार में एक ऊनी मिल और दूसरे कारखाने चल रहे हैं। पनबिजली का एक बड़ा कारखाना 'सरोबी' मे खोला जा चुका है।

यातायात के साधनों की अफगानिस्तान मे बहुत कमी है। पहाड़ी देश होने के कारण वहाँ की ज़मीन इतनी ऊँची नीची है कि उस पर रेल की पटरियाँ आसानी से नही बिछाई जा सकती। इसलिए पूरे देश मे कही भी रेलो की व्यवस्था नही दिखाई

खैबर का प्रसिद्ध दर्रा

देती। पाकिस्तान की रेलें केवल खैबर दर्रे तक जाती हैं। खैबर दर्रा हिन्दूकुश के उन दर्रो मे सबसे बड़ा और खास है, जिनसे होकर अफ़गानिस्तान जाते हैं। उसे अफ़गानिस्तान की पूरबी सीमा का दरवाजा भी कहते हैं। साहसी अफ़गानो ने दर्रों और घाटियों के बीच सड़कें बना ली हैं, जिन पर मोटरें, बसें और ठेलागाड़ियाँ बराबर चलती रहती हैं। काबुल बसों और लारियों का सबसे बड़ा अड्डा है। वहाँ से बसें और लारियाँ खास खास जगहो को जाती हैं। देश के ज़्यादातर भाग में अच्छी सड़कें नहीं हैं। इसलिए सवारी और माल ढोने के लिए ऊँटों, खच्चरो और गधों का इस्तेमाल अधिक होता है। खानाबदोश क़बीले भी इन्ही जानवरों पर अपना सामान लादे जगह जगह हरियाली की खोज मे घूमा करते हैं। ऊँटों और दूसरे जानवरों के बड़े बड़े काफ़िलों का रेगिस्तानों, पहाड़ों और दर्रों के ऊँचे नीचे तथा घुमावदार रास्तों पर चलना देखने योग्य चीज़ होती है।

अफगानिस्तान की सीमाएँ कई बड़े देशो से मिलती हैं। उसके उत्तर मे रूस, उत्तर पूरब में चीन और भारत, दक्खिन पूरब में पाकिस्तान और पच्छिम मे ईरान है। इस भौगोलिक स्थिति के कारण संसार की राजनीति में अफ़ग़ानिस्तान का एक खास स्थान है। इसीलिए वहाँ रेलों से पहले हवाई सफ़र चालू हो गया है और काबुल में एक बड़ा हवाई अड्डा बन गया है।

कंधार, हेरात और मज़ारे शरीफ़ नामक शहरों में हवाई जहाज़ों के उतरने और रुकने के मैदान बन गए हैं। आजकल कंधार के हवाई मैदान को एक अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे का रूप देने का काम जारी है। दूसरे देशों की यात्रा कम्पनियों के हवाई जहाज़ तो वहाँ चलते ही हैं, अब अफगानी राष्ट्रीय हवाई सर्विस भी चालू हो गई है। उसका नाम 'आरियाना एअर लाइन' है। अफगानिस्तान के लोग अपने को आर्य जाति का कहते हैं इसीलिए उन्होंने अपनी हवाई सर्विस का नाम 'आरियाना' रक्खा है। गजनी, बगलान, और मैमाना नाम के दूसरे शहरों में भी हवाई अड्डे बनाए जा रहे हैं।

अफगानिस्तान दूसरे देशों से तेल, मशीनें, बिजली के सामान, कपड़ा, पेट्रोल, दवाइयाँ आदि मँगाता है और बदले में ऊन, रुई कीमती खाल, समूर, फल, जवाहरात, मेवा और हींग आदि बाहर भेजता है। भारत के साथ उसका व्यापार बड़े पैमाने पर होता है।

बामिया की घाटी अफगानिस्तान के लगभग बीच में एक ऐसा प्राचीन स्थान है जिसे हम भारत और अफगानिस्तान की पुरानी मित्रता की जीवित यादगार कह सकते हैं। बरफ से ढकी हुई पहाड़ की ऊँची चोटी से गिरनेवाली एक नदी ने इस घाटी को बड़ा शीतल और सुहावना बना दिया है। किसी ज़माने में यह स्थान बौद्ध सभ्यता का केंद्र था। यहाँ हज़ारों गुफाएँ हैं जिनकी दीवारों पर बौद्ध काल की मूर्तियाँ, चित्र और बेलबूटे बने हैं

बामिया की घाटी में पत्थर की बनी बुद्ध की एक मूर्ति
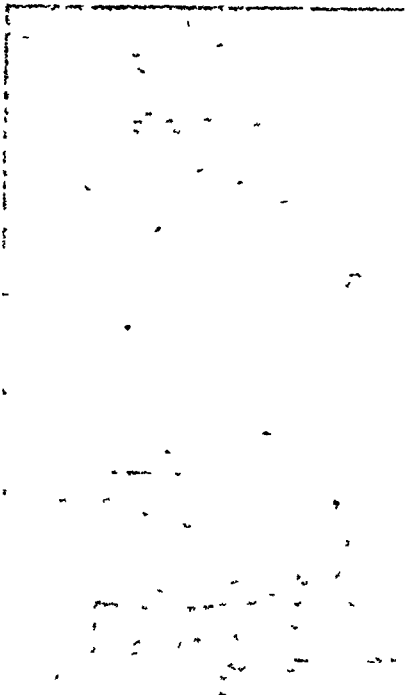
जो वौद्धकला के सुन्दर नमूने है। वहाँ गौतम बुद्ध की कई वड़ी मूर्तियाँ भी हैं, जिनमें एक लगभग चार सौ फुट ऊँची है।

'कलाविस्त और चखानसर' के खँडहर 'दश्ते मर्ग' या मौत के रेगिस्तान के दोनों किनारो पर लगभग आमने सामने हैं। कलाविस्त कधार के पच्छिम मे है। हज़ारो वरस पहले वहाँ एक शानदार शहर वसा हुआ था। उसके वड़े वड़े महलों और किलों के खूवसूरत खँडहर अपने प्राचीन वैभव की याद दिलाते है। शहर के चारो तरफ खिचे हुए परकोटे का जो छोटा सा भाग आज भी मौजूद है, वह नौ मील लम्वा, वीस फुट ऊँचा और लगभग छ फुट चौड़ा है, हिसाव लगाने पर मालूम होता है कि दीवार के अकेले इस भाग मे लगभग छे करोड़ पचास लाख ईंटे लगी हैं। इस तरह पूरे शहर, उसके महल और परकोटे वनने मे सैकड़ो वरस लगे होगे।

'चखानसर' के खँडहर 'दश्ते मर्ग' के पच्छिमी छोर पर है। वहाँ लगभग सौ मील के इलाके में अनेक किलो और महलो के खँडहर मौजूद है। किसी ज़माने मे वहाँ लाखों की आवादी और कई वड़े वड़े शहर थे। सिकन्दर ने जव भारत पर हमला किया तो उन शहरों से होकर गुजरा था। तव वे शहर खूव तरक्की पर थे। कहते है कि वे वारहवी सदी तक फलते फूलते रहे, उसके वाद उजड़ गए। कुछ इतिहासकार कहते है कि अव से कई सदी पहले वहाँ का पानी खारा और ज़मीन रेगिस्तानी होने लगी। इस कारण वहाँ की वस्तियाँ धीरे धीरे

चखानसर के खँडहरो का एक दृश्य
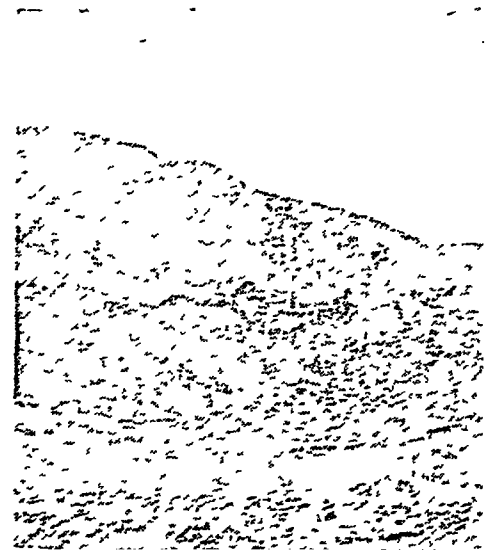
उजड़ने लगी और अंत मे रेगिस्तान की बाढ ने उन्हे पूरी तरह नष्ट कर दिया। कुछ दूसरे इतिहासकार यह कहते है कि वे नगर चंगेज़ खाँ के हमले से उजड़ गए। कारण कुछ भी हो, इन खँडहरो से पता चलता है कि जिस समय वे नगर आबाद थे उस समय अफगानिस्तान की सभ्यता बहुत ऊँची थी।

अफगानिस्तान के रहनेवाले बहादुर और साहसी होते है। उनका कद लम्बा, बदन मजबूत और रंग गोरा होता है। आम तौर से सभी अफगान दाढी रखते है और हाथ में बंदूक लेकर चलते है। उनका इतिहास इस बात का गवाह है कि वे बडे देशभक्त होते है। और देश की रक्षा के लिए सदा अपनी जान पर खेलने को तैयार रहते है। स्त्रियाँ परदे मे रहती है। वे न तो किसी सामाजिक समारोह मे भाग लेती है और न सरकारी काम मे हाथ बँटाती है। घर से बाहर निकलने की जरूरत होने पर वे सिर से पैर तक लम्बा बुर्का ओढकर चलती है। वे आम तौर से शहरो के सिनेमाघरो, होटलो और बाजारो मे भी नहीं दिखाई देती। काबुल आदि कुछ बडे शहरो मे स्त्रियो के लिए अलग से फिल्म दिखाए जाते है।

ठेठ अफगानी वेशभूषा में एक न

अफगानी लोग ढीले ढाले कपडे पहनते है। शलवार और कुरता वहाँ के मरदो और औरतो का आम पहनावा है। मरद सिर पर साफा, बदन पर कढी हुई वास्कट और पैरो मे कामदार जूते पहनते है। वे अधिकतर कंधे
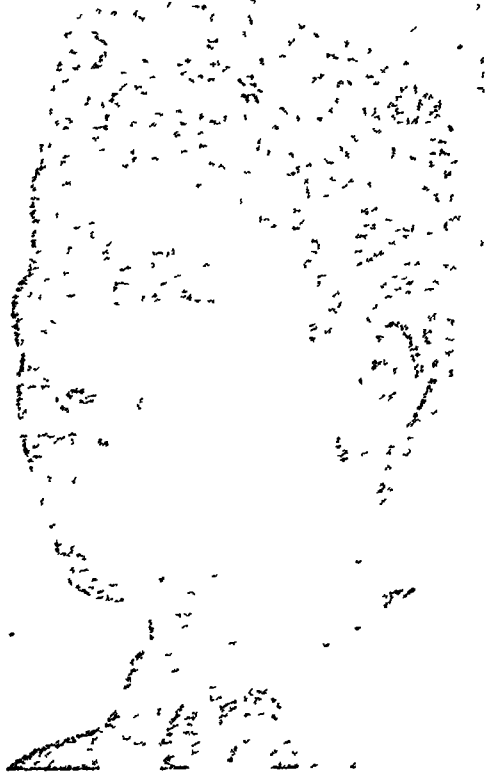
पर रेशमी या सूती दुपट्टा डाले रहते हैं। जाड़े के दिनो मे वहाँ पोस्तीन और दुम्बे की खाल से वनी पोशाक पहनी जाती है। जो लोग पगड़ी या साफा नही बाँधते वे 'कराकुल टोपी' लगाते है। यह टोपी कराकुल नामक पानी की चिड़ियो के समूर से वनाई जाती है। शहरो मे अब युरोप के पहनावे कोट, पतलून, टाई और ओवरकोट आदि का भी रिवाज हो गया है।

कराकुल टोपी पहने एक अफ़ग़ान युवक

ठंड से वचने के लिए लोग रात को एक विशेष प्रकार की ढक्कनदार अंगीठी का इस्तेमाल करते हैं। लोग कमरे के वीच उस अंगीठी को रखकर उसके इर्द गिर्द सो जाते है। सोने मे उनके पैर उस अगीठी की ओर रहते है। उस अगीठी को वे लोग 'कुरसी' कहते है। 'कुरसी' का इस्तेमाल आम तौर से देहाती और मामूली हैसियत के लोग ही करते है।

अफ़ग़ानिस्तान की आवादी का लगभग एक तिहाई भाग खानावदोश लोगों का है। इनके अलग अलग क़वीले एक जगह से दूसरी जगह पानी और हरियाली की खोज मे घूमा करते हैं। वे आम तौर से ऊँट, गधे, दुम्वे, और भेड़ पालते है। वे भेड़ की खाल और ऊन के कपड़े वनाते है। उनका मुख्य भोजन फल, माँस और दुम्वो की पूँछ से निकलनेवाली चर्वी है। एक खानावदोश क़वीले का नाम

'कोची' है। फसल काटने का काम यही लोग करते है, किसान स्वयं नही काटता। मज़दूरी के तौर पर उन्हे फसल का कुछ हिस्सा दे दिया जाता है।

ऊँटों पर घरबार लादे 'कोची' कैम्प लगाने जा रहे हैं

बड़े शहरो की नई इमारतों को छोडकर अफगानिस्तान मे आम तौर से मिट्टी, गारे और पत्थर के मकान है। गाँवों और मोहल्लो को चारो ओर से एक ऊँची चारदीवारी से घेरने का पुराना ढग अब भी प्रचलित है, जिससे अफगानी गॉव छोटे छोटे किलो जैसे जान पड़ते है। काबुल अफगानिस्तान की राजधानी होने के साथ साथ व्यापार का सबसे बडा अड्डा भी है। वहाँ बहुत से हिन्दुस्तानी भी आबाद है, जिनमे सिक्ख व्यापारियो की सख्या अधिक है।

अफगानी फूलो के बहुत शौकीन होते है। थोडी ज़मीन रखनेवाला गरीब भी फूलो के दो चार पौधे ज़रूर लगाता है।

अफगानियो मे चाय का चलन भी खूब है। गरीब, अमीर, शहरी और देहाती सभी चाय पीते है। चाय के होटलो और दूकानो मे हर समय भीड़ लगी रहती है। चाय की पत्ती वहाँ हिन्दुस्तान से जाती है।

अफगान लोग खेलकूद के भी बहुत शौकीन है। शहरो मे अब वाली़बाल, हाकी, बास्केटबाल और बेसबाल आदि विदेशी खेल भी प्रचलित हो गए है। किन्तु पहले शहरो मे भी कुश्ती, दौड़, निशानेबाज़ी और घुडसवारी आदि देशी खेल ही खेले जाते थे। देहातो मे अब भी वे ही खेल प्रचलित है।

अफ़ग़ानिस्तान का रोंगटे ख

उनका 'वुज़कशी' नामक घुड़सवारी का खेल तो सारे ससार में प्रसिद्ध है। यह उत्तरी अफ़ग़ानिस्तान का एक रोंगटे खड़े कर देनेवाला खेल है। उसमे सौ से लेकर पाँच हज़ार तक घुड़सवार भाग लेते हैं। वुजकशी खेल का कायदा यह है कि एक गढ़ा खोदकर उसमे बकरे का धड़ डाल

रोमांचित कर देनेवाला खेल 'बुजकशी'

दिया जाता है। गढे से चद गज़ के फासले पर खिलाड़ियो के दोनो दल आमने सामने खड़े हो जाते है। जो खिलाडी घोड़े पर बैठे बैठे उस बकरे का धड़ गढे से उठाकर दूसरे घुड़सवारो से बचाता हुआ मैदान का चक्कर लगाने क बाद, फिर उसी गढे मे लाकर डाल दे वही विजेता

माना जाता है। सीटी वजते ही सवार गढ़े तक पहुँचने की कोशिश करते है। उनके सधे हुए घोड़े गढे के पास पहुँच कर अपने अगले घुटने मोडकर और मुंह के वल झुककर अपने सवार को वकरे की लाश उठाने मे मदद करते है। धड़ उठाते ही दूसरे सवार उसको छीनने के लिए चारो ओर से रेला करते है। इस छीना झपटी मे दोनो दलो के खिलाड़ी अपने अपने दल के आदमी की मदद करते है। कभी कभी यह खेल चार चार दिन तक चलता रहता है तव कही जाकर हार जीत का फैसला हो पाता है।

अफगानी लोगो का दूसरा प्रिय खेल 'गुसाई' है। 'गुसाई' मे आम तौर से वीस खिलाड़ी भाग लेते है, दस एक तरफ और दस दूसरी तरफ। सभी खिलाड़ी एक पैर से खड़े होकर अपना दूसरा पैर हाथ से पकड़ लेते है। दोनों तरफ के एक एक खिलाड़ी, जिन्हे 'गुसाई' कहते है, एक पैर से उचकते हुए दूसरी तरफ वढ़ते है। अव खेल शुरू हो जाता है। दोनों दलों के खिलाड़ी अपने अपने हाथों से अपना एक एक पैर पकड़े एक दूसरे के गोल तक पहुँचने की कोशिश करते है और विरोधी दल के खिलाड़ियो को धक्के दे देकर रोकते है। इस धक्कम धक्का मे जो खिलाड़ी गिर जाता है या जिसके दोनों पैर ज़मीन से लग जाते है वह 'मर' जाता है। दूसरी तरफ के 'गुसाई' और उसके साथियों से अपने गोल की रक्षा करते हुए दूसरी ओर के गोल तक पहुँच जाने वाला दल जीत जाता है।

साहित्य और संस्कृति के लिहाज से अफ़ग़ानिस्तान वहुत सम्पन्न है। वहाँ के पढ़े लिखे लोग फ़ारसी साहित्य मे वहुत दिलचस्पी रखते

है। वे सादी, हाफिज़ और उमर ख़ैय्याम जैसे फारसी कवियों की रचनाएँ बड़े शौक से पढ़ते हैं। दिल्ली के रहनेवाले उर्दू कवि 'बेदिल' वहाँ की जनता के लोकप्रिय कवि हैं। अफ़गानी लोक साहित्य और लोक कला भी बहुत उन्नत है। वहाँ के लोक गीतों और नृत्यों में आमतौर से युद्ध, बहादुरी और प्रेम की कथाएँ होती हैं। रबाबा ढोल तबला, सितार, बाँसुरी, सारिन्दा और सारंगी अफगानियों के मुख्य बाजे हैं। उनका सारिन्दा नाम का बाजा हमारे यहाँ के दिलरुबा से मिलता जुलता है। सरदी के कठोर और लम्बे मौसम के बाद जब नौरोज़ या बसंत आता है तब अफगानी लोग बहुत धूमधाम से उसका स्वागत करते हैं। उस दिन वे लोग मैदानों की नई घास के फर्श पर मस्त होकर नाचते हैं और गरमी के आगमन और सरदी की विदाई का जशन मनाते हैं। मजारे शरीफ में इस जशन को मनाने के लिए एक बड़ा मेला होता है, जिसमें भाग लेने के लिए देश के कोने कोने से लोग आते हैं।

काबुल का दिलकुशा महल
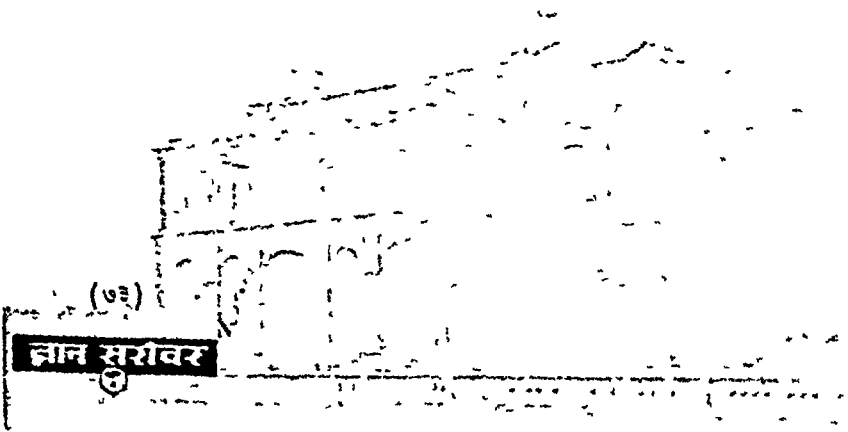
क्रिस्टोफ़र कोलम्बस

संसार कितना वड़ा है, उसमे कौन कौन से महाद्वीप है और कितने देश, इन वातों को आज हम कितावो मे पढ़कर जान सकते है। पर अभी कुछ दिन पहले तक संसार के कई भागो के वारे मे हम कितावो से भी कुछ नहीं मालूम कर सकते थे। आज संसार मे रूस और अमरीका सवसे वलवान और धनवान देश है। लेकिन अमरीका के वारे मे कोई पौने पाँच सौ वरस पहले तक हम कुछ नही जानते थे। हमे यह तक पता न था कि अमरीका भी कोई देश है। परंतु मनुष्य जितना जानता है उतने से ही संतुष्ट नहीं रहता। वह वरावर सोचता रहता है और अधिक से अधिक जानने का यत्न करता रहता है। इस यत्न में वह कभी कभी अपनी जान भी जोखिम मे डाल देता है।

ऐसे ही जान पर खेलकर ज्ञान प्राप्त करनेवालों में एक क्रिस्टोफर कोलम्बस भी था। एक दिन जीवन की बाजी लगाकर वह दुनिया के अनजाने देशो की खोज मे निकल पड़ा। समुन्दरो की छाती पर, तूफानी लहरो के बीच, अपने छोटे से जहाजी बेड़े को खेते हुए उसने अमरीका का पता लगाया, जिसको 'नई दुनिया' भी कहते हैं।

कोलम्बस का जन्म सन् १३५१ में इटली देश के एक जुलाहे के घर हुआ था। इटली के उत्तर मे समुन्दर के पच्छिमी तट पर 'जेनेवा' नाम का एक प्रसिद्ध शहर है। कोलम्बस के पिता वहीं के निवासी थे। वे ऊन का व्यापार और उसकी कताई बुनाई का काम करते थे। बाइस बरस की उमर तक कोलम्बस अपने पिता के साथ रहकर उनके काम मे हाथ बटाता रहा। वह न कभी स्कूल मे भरती हो सका और न उसे पढने लिखने का ही कोई अवसर मिला। पिता के साथ अक्सर उसे डोंगियो मे समुन्दर की यात्रा करना पड़ती थी। इसी सिलसिले मे वह एक बार पिता के साथ डोंगियो मे उत्तरी अफरीका तक हो आया। धीरे धीरे उसमे दूर दूर की समुन्दरी यात्रा करने की इच्छा बढती गई। वह साहसी और शात स्वभाव का व्यक्ति था। उसका कद ऊँचा, शरीर गठा हुआ और रग खूब गोरा था।

साहसी कोलम्बस
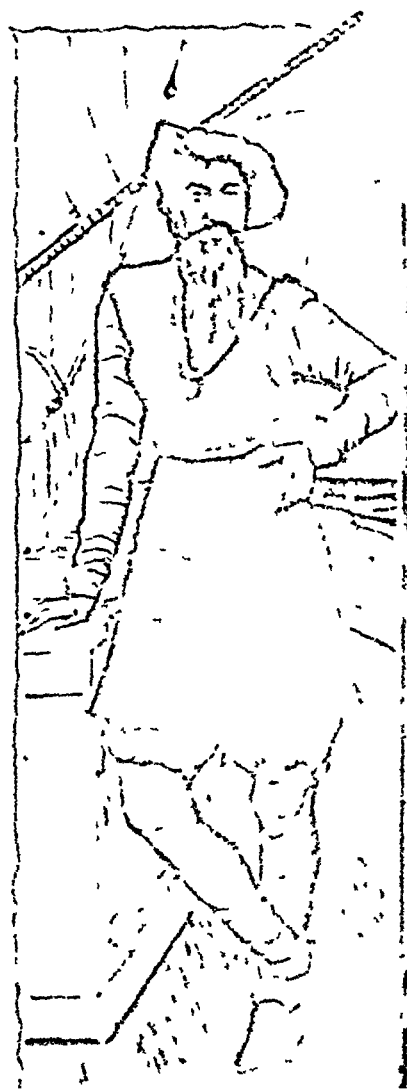
जव कोलम्वस २५ वरस का हुआ तो उसे पुर्तगाल की ओर जानेवाले एक जहाज़ मे नौकरी मिल गई। उन दिनों भूमध्य सागर मे यात्रा करना वड़ा खतरनाक समझा जाता था, क्योंकि आसपास के अनेक छोटे वड़े देश आपस मे लड़ रहे थे और वे एक दूसरे के जहाजों को डुवा देते थे। इसलिए कोलम्वस का जहाज ज्यों ही पुर्तगाल के दक्खिनी तट पर पहुँचा त्यों ही उस पर हमला हुआ। उसका जहाज डुवा दिया गया। किंतु कोलम्वस साहसी और चुस्त था। वह तैरता हुआ किनारे पहुँच गया और वहाँ से पुर्तगाल की राजधानी लिस्वन की ओर चल पड़ा।

'लिस्वन' पहुँचने के वाद कोलम्वस के जीवन मे एक नया मोड़ आया। उन दिनो पुर्तगाल की सरकार ऐसे नौजवानों को मदद दे रही थी जो नए देशों की खोज मे समुन्दर की यात्रा के संकट झेलने को तैयार थे। कोलम्वस ने इस अवसर से लाभ उठाने का निश्चय किया। पर जव उसे मालूम हुआ कि इस काम के लिए भी पढ़े लिखे और भूगोल जाननेवाले नौजवानों को ही सहायता दी जाती है तो उसे वड़ा दुख हुआ। फिर भी वह हिम्मत न हारा। २८ वरस की उमर हो जाने पर भी उसने नए सिरे से पढ़ना लिखना शुरू किया। उसने थोड़े ही दिनों मे भूगोल आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के अलावा जहाज़रानी की कला और स्पेनी और पुर्तगाली भाषाएँ भी अच्छी तरह सीख ली।

उन्ही दिनों कोलम्वस का विवाह हुआ। उसकी स्त्री एक वड़े जहाज़ के कप्तान की वेटी थी। उस कप्तान का वड़े वड़े लोगो से मेल जोल था। कोलम्वस ने भी कप्तान द्वारा वड़े वड़े लोगों के

साथ अपनी जान पहचान बढ़ाई। उसे जल्दी ही पुर्तगाल के बादशाह के निजी जहाज़ मे एक अच्छी नौकरी मिल गई। उस जहाज़ को लेकर वह एक बार अफरीका के 'गोल्ड कोस्ट' तक गया। अफरीका की इस यात्रा से उसकी जानकारी और हिम्मत काफ़ी बढ़ गई।

उन दिनो युरोप के लोग एशियाई देशो से व्यापार करने और वहाँ अपनी बस्तियाँ बसाने के लिए बहुत उत्सुक थे। उस समय तक युरोप से एशिया जाने के लिए पूरब की ओर से खुश्की का ही रास्ता था। वह रास्ता कठिनाइयो से भरा था। इसलिए युरोप के सभी देश किसी नए और आसान रास्ते की खोज मे थे।

उस समय तक यह बात मालूम हो चुकी थी कि पृथ्वी गोल है। किंतु उस जानकारी का लाभ सबसे पहले कोलम्बस ने ही उठाया। दूसरे यात्रियो के लेख पढ़कर वह जान चुका था कि चीन और जापान एशिया के पूरबी भाग मे है। इसलिए उसने सोचा कि यदि पृथ्वी गोल है तो एशिया की पूरबी सीमा युरोप की पच्छिमी सीमा से मिली होनी चाहिए, और यदि ऐसा है तो चीन जापान पहुँचने के लिए पच्छिम की ओर से ही यात्रा शुरू करनी चाहिए।

कोलम्बस के मन मे यह विचार पक्का हो गया। पर इस तरह की लम्बी यात्रा के लिए धन, आदमी और जहाज़ ज़रुरी थे। इसलिए उसने सन् १४८४ ई० मे पुर्तगाल के राजा के सामने यह प्रस्ताव रखा कि यदि उसे जहाज, आदमी और धन की सहायता दी जाए तो वह एशिया पहुँचने का एक नया और सहज रास्ता ढूँढ निकालेगा। किंतु पुर्तगाल की सरकार ने उसका प्रस्ताव स्वीकार नही किया।
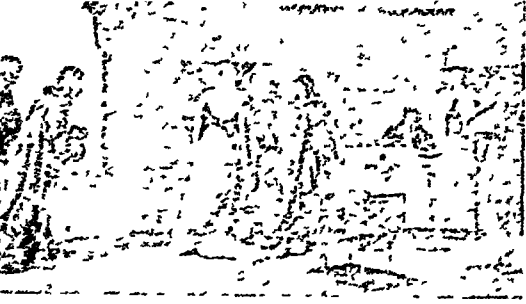
महारानी इसावेला कोलम्वस को गहने उतार कर दे रही हैं।

उन्हीं दिनों उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई। पत्नी उसका सवसे वड़ा सहारा थी। पर उस सहारे के टूट जाने पर भी कोलम्वस अपने निश्चय से नहीं डिगा। वह स्पेन गया। उस समय स्पेन में सम्राट फर्डिनेंड और महारानी ईसावेला का राज था। कोलम्वस ने उनके सामने भी वही प्रस्ताव रखा। उनको वात जँच गई और उन्होंने कोलम्वस को हर तरह की सहायता देना स्वीकार कर लिया।

३ अगस्त १४९२ को कोलम्वस की रहनुमाई में तीन जहाजों का एक छोटा सा वेड़ा दक्खिनी स्पेन के वंदरगाह 'पोलोस' से एशिया का नया रास्ता मालूम करने के लिए पच्छिम की ओर रवाना हुआ। एशिया, खास तौर से भारत, पहुँचना उसका लक्ष्य था। कोलम्वस और उसके साथियों ने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि भारत का नया रास्ता मालूम करने की कोशिश में उनके सिर एक नई दुनिया खोज निकालने का सेहरा वँधेगा।

कोलम्वस का वेड़ा पहले केनारी द्वीप पहुँचा। वहाँ जहाज़ों की देखभाल और मरम्मत की गई। केनारी से ६ सितम्वर १४९२ को वह वेड़ा आगे रवाना हुआ। पुरवा हवा ने मदद की और वेड़ा तेजी के साथ पच्छिम की ओर वढ़ने लगा। दिन पर दिन वीतने लगे। धीरे धीरे एक महीना वीत गया, पर ज़मीन न दिखाई दी। कोलम्वस के साथी

कोलम्वस का जहाज़ 'सान्ता मेरिया
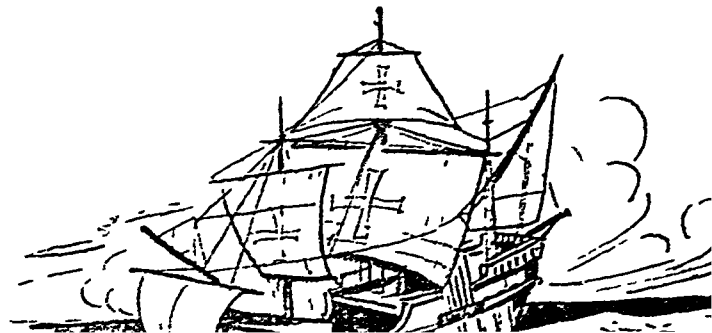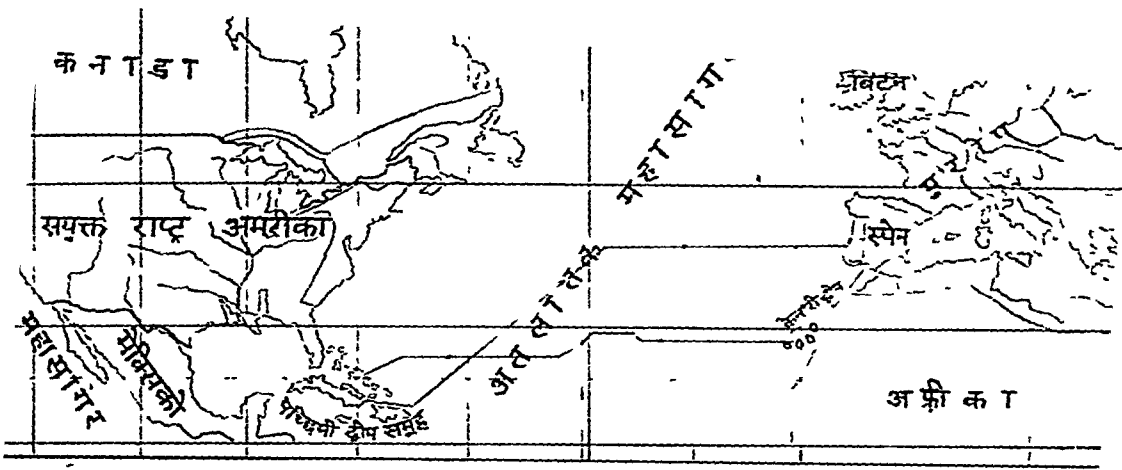
कोलम्वस की महान यात्रा का रास्ता

घवरा उठे। उनका धीरज टूटने लगा। उनमे इतना साहस नहीं रहा कि घर से हज़ारो मील दूर अथाह समुन्दर की भयानक लहरों के वीच, एक अनजानी दिगा मे जीवन के साथ खिलवाड करते हुए वढ़ते रहे। कोलम्वस ने उन्हे समझाया, उनको धीरज वँधाया, उन्हे धन दौलत का लालच दिया और अत मे डराया धमकाया भी। पर कोई नतीजा नही निकला। वे विद्रोह पर उतर आए।

विवग हो कोलम्वस ने केवल तीन दिन का समय माँगते हुए अपने साथियो से कहा, 'देखो, मेरे हिसाव से तीन दिन के अदर जमीन मिल जानी चाहिए। अगर हम घर की ओर लौट पडे तो भी किनारे पहुँचने मे एक महीना अवग्य लग जाएगा, और अगर मेरा हिसाव ठीक निकला तो हम तीन ही दिन वाद किसी देग मे पहुँच जाएँगे। असफल रहे तो समझना कि घर पहुँचने मे तीन दिन और लग गए। इसलिए तुम लोग केवल तीन दिन तक और सव्र करो। फिर जो जी चाहे करना।'

साथियो ने उसकी वात मान ली। उनका छोटा सा वेड़ा आगे वढता गया। सयोग की वात कि ठीक तीन दिन वाद, १२ अक्तूवर १४९२ ई० को, कोलम्वस का एक साथी खुशी से चीख़ पड़ा, "ज़मीन ! जमीन ! वह देखो ! जमीन साफ दिखाई दे रही है।"

जमीन मिल गई। जहाज़ो ने लगर डाल दिए। कोलम्वस ने समझा कि वह भारत पहुँच गया। पर असल मे वह अमरीका के समुन्दर तट का एक टापू था।

कोलम्वस ने टापू को आवाद पाया। कुछ लोग जहाज़ के किनारे लगते ही उसके पास आ गए। वे लोग लगभग नगे थे और उनका रग वहुत काला नही था। पर उनके वाल घोड़े के वाल की तरह खड़े, काले और कड़े थे। कोलम्वस ने उन्हे शीशे की गोलियाँ और लाल टोपियाँ दीं। वे लोग वड़े खुश हुए और कोलम्वस के मित्र वन गए। वे वदले मे कोलम्वस के लिए तोते, जंगली वतख़, तागे के लच्छे और दूसरी चीजे ले आए। वे उस टापू को 'गुनाहनी' कहते थे।

कोलम्वस ने लिखा है, "पहले टापू मे पहुँचकर मैंने वहाँ के कुछ निवासियों को पकड़ लिया ताकि वे हमारी कुछ वातें समझ लें और हमे ज़रूरी जानकारी करा दे। हुआ भी ऐसा ही। कुछ वोली और कुछ इशारों के ज़रिए जल्दी ही वे हमारे और हम उनके भावों को समझने लगे। उन्होंने हमारी वड़ी मदद की। जहाँ जहाँ हम लोग जाते, वे पहले ही घर घर में यह घोषणा कर आते थे कि "आओ और आकर स्वर्ग के लोगो को देखो। वे सभी हमारे लिए खाने पीने की चीजे लाते और प्रेम से हमे देते।"

पश्चिमी द्वीप समूह के आदिवासी

उस टापू के निवासियो ने कोलम्बस को दूसरे टापुओ के पते और उन तक पहुँचने के अच्छे रास्ते वताए। कोलम्बस की तरह वे लोग भी अच्छे नाविक थे। फिर कोलम्बस उस टापू से दूसरे कई टापुओ मे गया।

कोलम्बस अमरीका से वहुत सा सोना, अपने साथ लेकर स्पेन लौटा। सम्राट फर्डिनेंड और महारानी ईसावेला ने उसका धूमधाम से स्वागत किया। कोलम्बस जव दरवार मे आया तो उन्होंने उसको शाही सम्मान दिया।

स्पेन के शाही दरबार में कोलम्बस का स्वागत

(१)

महात्मा बुद्ध

महात्मा बुद्ध का जन्म ईसा से ५६८ वरस पहले हुआ था। उनके पिता का नाम शुद्धोदन था और माता का नाम माया। शुद्धोदन राजा थे और उनका राज्य नैपाल की तराई में था। कपिलवस्तु उनकी राजधानी थी।

बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था। वे अपने माँ बाप के इकलौते लड़के थे। इसलिए उनका लालन पालन बहुत लाड़ प्यार से हुआ। किन्तु सिद्धार्थ को बचपन से ही सुख और विलास मे कोई रुचि न थी। वे बराबर एकांत में बैठकर कुछ सोचा करते थे। महाराज शुद्धोदन राजकुमार का यह हाल देखकर चिंतित रहते थे। वे राजकुमार की उदासीनता दूर करने के लिए अधिक से अधिक आमोद प्रमोद के साधन जुटाते रहते थे। इसीलिए उनका विवाह भी छोटी उमर मे ही कर दिया गया। सिद्धार्थ की पत्नी का नाम यशोधरा था। विवाह के बाद उनके एक पुत्र भी हुआ जिसका नाम राहुल रखा गया।

राजकुमार सिद्धार्थ एक रोगी भिखारी को देख रहे हैं।

किंतु वीवी वच्चों मे भी राजकुमार का मन वहुत दिनो तक न रम सका। उनका मन वैभव और विलास से और भी ऊव गया। वे सोचने लगे, यदि संसार में गरीवी, वीमारी और मौत के नियम अटल है, तो ऐसे ससार से मोह वेकार है और उन्हे मिटाने के लिए संसार के सुख का मोह छोड़कर कोई रास्ता ढूंढ़ना होगा।
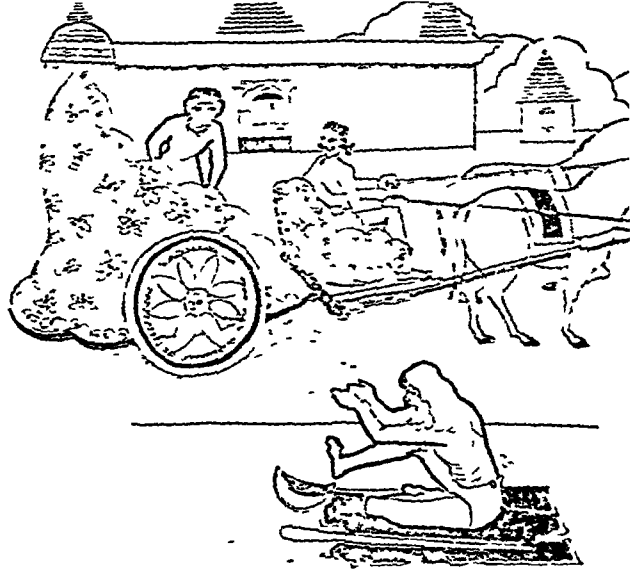
किंतु वे एक दम कुछ तै नही कर पाते थे। एक ओर संसार की दुखद घटनाएँ उन्हे सुख और विलास से दूर खीचती थी, तो दूसरी ओर महाराजा शुद्धोदन इस वात का भर सक प्रवध करते रहते थे कि सिद्धार्थ को मनुष्य जीवन के किसी भी दुख की झलक न मिलने पाए। पर महलो की दीवारे सिद्धार्थ को कव तक रोके रह सकती थीं एक दिन राजकुमार ने एक वूढ़े मनुष्य के जर्जर गरीर को देखा, उसके अग विल्कुल वेकार हो चुके थे। इसी प्रकार एक दिन उन्होने दर्द से कराहते हुए एक रोगी को देखा। फिर कुछ दिन वाद उन्होने एक मुर्दा देखा। उन दृग्यो को देखकर राजकुमार के हृदय को और भी धक्का लगा। जीवन और जगत की सारी चमक दमक उन्हे झूठी और फीकी लगने लगी। यह वुढापा क्यो, रोग क्यो, मौत क्यो ? ये प्रश्न उनके

'एक रात' 'वे महल से बाहर निकल पड़े।'

मन को मथने लगे। वैराग्य की भावना बढ़ती गई। अंत मे एक रात घर और परिवार के मोह को ठुकरा कर वे महल से बाहर निकल पड़े। उस समय न उन्हें यशोधरा का प्रेम रोक सका, न राहुल की ममता और न राजमहल के राग रंग।

सत्य और शांति की खोज मे सिद्धार्थ कई बरस तक जंगलों और पहाड़ों मे घूमते रहे। उन्होंने घोर तपस्या की, शरीर को बहुत कष्ट दिए, किंतु शांति न मिली। अंत में कहा जाता है कि बिहार के गया नामक नगर के पास उन्हें एक पेड़ के नीचे जीवन की सचाई का 'बोध' हुआ। तभी से वे 'बुद्ध' कहलाने लगे। 'बुद्ध' का अर्थ है सत्य का ज्ञान रखनेवाला।

महात्मा बुद्ध के ज़माने मे लोग धर्म के सच्चे रूप को भूलकर लकीर के फकीर बन गए थे। पाखंड, ढकोसलेबाज़ी और छल कपट का दौर दौरा था। सच्ची शांति के लिए लोगों की आत्मा तड़प रही थी। महात्मा बुद्ध ने उन्हें मानवता का संदेश दिया और जनता ने उन्हे सिर आँखों पर बैठाया।

बोधिवृक्ष के नीचे सिद्धार्थ को बोध हुआ।

' महात्मा वृद्ध ने जात पाँत और छुआछूत को गलत वताया। उन्होने जीवन के सुवार और सदाचार पर ज़ोर दिया। उन्होंने खुले आम एलान कर दिया कि कोई भी धर्म-ग्रंथ भूल से खाली नहीं हो सकता, और न कोई पोथी ऐसी है जिसमे अतिम सत्य लिख दिया गया हो। उन्होने वताया कि काम, क्रोव, मद और लोभ ही सव दुखो की जड़ है। दुखो से छुटकारा पाने के लिए उन्होने आचरण के आठ सिद्धात वताए। वे सिद्धात ये है —

(१) सम्यक् सकल्प, यानी ठीक ठीक निश्चय करना (२) सम्यक् वचन, यानी सच वोलना, (३) सम्यक् आचरण, यानी सचाई का व्यवहार करना; (४) सम्यक् प्रयत्न, यानी ईमानदारी की रोज़ी कमाना (५) सम्यक् कर्म, यानी अच्छे काम करना, (६) सम्यक् विचार, यानी विचार पवित्र रखना; (७) सम्यक् ध्यान, यानी सचाई मे ध्यान लगाना, और (८) सम्यक् दृष्टि, यानी चीजो को ठीक ठीक देखना।

महात्मा वुद्ध के ये सिद्धात 'अष्ट मार्ग' कहलाते है। उनके उपदेशों का निचोड यह है कि सचाई और सदाचार के रास्ते पर चलकर ही मनुष्य दुखो से मुक्त हो सकता है और प्राणिमात्र की सेवा ही सवसे वड़ा धर्म है।

जीवन की सचाई का वोध हो जाने पर उन्होने अपने 'वोध से, अपने ज्ञान से, मनुष्य मात्र का भला करने के लिए जगह जगह घूमकर अपने विचारो का प्रचार करना शुरू किया। उनका पहला उपदेश वनारस के पास 'इसीपतन' या 'ऋषिपत्तन'

पहली वार सारनाथ में उपदेश देते हुए वुद्ध

तरह तरह के प्रलोभनों से बुद्ध को डिगाने की कोशिश का
अजन्ता की गुफाओं में बना एक प्रसिद्ध चित्र

में हुआ। आजकल उस स्थान को 'सारनाथ' कहते हैं। उसके बाद उन्होंने कोशल, विदर्भ और राजगृह के राज्यों में भ्रमण किया। धीरे धीरे उनके उपदेशों का असर होने लगा। लोग जल्द ही हजारों लाखों की संख्या में उनके शिष्य बन गए और पाखंड का क़िला तेज़ी से ढहने लगा। पर धर्म के नाम पर पाखंड फैलाकर आम लोगों के दिमाग पर हुकूमत करनेवाले अपना क़िला नष्ट होते हुए कैसे देख सकते थे। उन्होंने महात्मा बुद्ध को तरह तरह के प्रलोभनों में फँसाकर उन्हें सत्य की राह से डिगाने की कोशिश की। परंतु महात्मा बुद्ध का व्रत भंग न हो सका।

उस समय बड़े बड़े धर्मस्थानों और मंदिरों में पशु बलि की होड़ चल रही थी दुराचार का बाजार गरम था। पुराना वैदिक धर्म अपने ऊँचे आदर्शों स गिर चुका था। पुरोहितशाही ने तरह तरह के पूजा पाठ और पाखंड फैला रखे थे। जात पाँत का बंधन करोड़ो लोगों के लिए गुलामी की जज़ीर बन गया था। मंत्र तंत्र और जादू टोना आदि अंधविश्वास फैले हुए थे, और पुरोहित लोग दिखावटी कामों के सहारे जनता के

दिमागों पर शासन कर रहे थे। वे मनुष्य को कल्याण का रास्ता बनाने के बदले अपने लिए धन और शक्ति हासिल करने में ही लगे रहते थे। इन सारी बातो से आम लोग ऊब गए थे। इसलिए महात्मा बुद्ध ने जब इन बातो के खिलाफ आवाज़ उठाई तो जनता ने उसका उत्साह से स्वागत किया।

महात्मा बुद्ध के उपदेशो के लोकप्रिय होने का एक कारण और भी था। वह यह कि उन्होने जनता की भाषा मे उपदेश देना शुरू किया। यह एक क्रांतिकारी कदम था, जिसका आम लोगो पर गहरा असर पड़ा। उससे पहले धार्मिक उपदेश केवल संस्कृत मे दिए जाते थे, जिसे ऊँचे घरानों के लोग ही समझ सकते थे, क्योंकि छोटी जाति के लोगो के लिए संस्कृत पढ़ना मना था। उनका वेद शास्त्र पढ़ना तो अपराध माना जाता था।

महात्मा बुद्ध ने अपने विचारों के प्रचार के लिए अपने ६० शिष्यो को देश के कोने कोने मे भेजा। राजा, प्रजा, अमीर, गरीब सभी ने उनका स्वागत किया। कौशाम्बी के राजा उदयन और मगध के राजा बिम्बसार ने भी उनके उपदेश सुने और उनका बहुत सम्मान किया। कौशाम्बी आज के इलाहाबाद के नज़दीक था और मगध पटना के। कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध अपने जन्मस्थान कपिलवस्तु भी गए और वहाँ जाकर उन्होंने अपने पिता, पत्नी और पुत्र को भी बौद्ध धर्म की दीक्षा दी।

महात्मा बुद्ध ने अलग अलग आत्मा को न मानकर एक विश्वात्मा को ही माना। इसलिए उन्होने जप तप को व्यर्थ बताया, और कहा कि व्रत उपवास आदि मे शरीर को नष्ट न करके उसे मनुष्य जाति की सेवा और कल्याण के लिए स्वस्थ रखना ज़रूरी है। महात्मा बुद्ध की महानता इस बात मे थी कि उन्होने पूजा पाठ को धर्म का ढकोसला बताया और लोक कल्याण को

सच्चा धर्म। उन्होंने धर्म को व्यक्तिगत मुक्ति का साधन न मानकर समाज के कल्याण का साधन माना और धर्म के बाहरी दिखावे का विरोध करते हुए कहा कि अच्छा आचरण ही सच्चा धर्म है।

महात्मा बुद्ध ने ४५ वरस तक अपने विचारों का प्रचार किया और उनके जीवन में ही लगभग सारे उत्तर भारत में बौद्ध धर्म फैल गया। अपने जीवन का अंतिम समय महात्मा बुद्ध ने कुशी नगर में बिताया। कुशी नगर को अब 'कसया' कहते हैं, जो गोरखपुर जिले में एक क़स्बा है। वहीं 'पावा' नाम के एक गाँव में उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

कलकत्ते के अजायबघर में रखी बुद्ध के निर्वाण की एक मूर्ति

उनकी मृत्यु के बाद दो तीन सौ वरस के भीतर ही बौद्ध धर्म श्रीलंका, बरमा, चीन, जापान, और मध्य एशिया के बहुत से देशों में फैल गया। आज भी दुनिया में बौद्धों की संख्या ईसाइयों को छोड़कर सब धर्मवालों से अधिक है।

महात्मा ईसा

आज दुनिया मे ईसाई धर्म के माननेवालो की संख्या सबसे अधिक है। उस धर्म की नींव रखनेवाले महात्मा ईसा थे। उनके ही नाम पर ईसवी सन् का चलन हुआ, जो आज लगभग सारी दुनिया मे प्रचलित है। ईसवी सन् का प्रारम्भ महात्मा ईसा के जन्म दिन से माना जाता है। पर मज़े की बात यह है कि महात्मा ईसा के जन्म दिन के बारे मे कोई एक राय नहीं है। उनके जन्म का दिन ही नहीं, महीना और साल भी ठीक ठीक नहीं मालूम है। आम तौर से लोग यह मानते है कि उनका जन्म बडे दिन, यानी २५ दिसम्बर को हुआ था। किंतु ईसाई धर्म के पडितो का यह कहना है कि एक रोमन

सन्यासी की गलत गिनती के आधार पर ऐसा मान लिया गया है। अभी हाल मे कुछ खोज करनेवालो ने वताया है कि महात्मा ईसा का जन्म ईसवी सन् से छे साल पहले अगस्त के महीने मे हुआ था। कुछ और ईसाई विद्वान अप्रैल या मई को उनके जन्म का महीना वताते है।

ईसाई सत मैथ्यू आदि ने महात्मा ईसा के जीवन के जो हालात लिखे है, उनमें महात्मा ईसा के जन्म के वारे मे एक ऐसी वात वताई गई है, जो कृष्ण जी के जन्म की कथा से मिलती जुलती है। उनके अनुसार यहूदियों की वाइविल मे यह भविष्यवाणी लिखी थी कि अमुक समय पर 'मसीह' यानी 'ईश्वर का संदेश लानेवाला' पैदा होगा, और वह आम लोगो के लिए 'स्वर्ग के राज्य' का दरवाजा खोल देगा। इस भविष्यवाणी मे मसीह के पैदा होने की तारीख भी वताई गई थी। इस पर यहूदी राजा हिरोद वहुत परेशान हुआ। वह वहुत ही अत्याचारी था। उसने हुक्म दिया कि 'मसीह' के पैदा होने की तारीख के आस पास के दो वरस मे पैदा होनेवाले सभी वच्चे मार डाले जायँ। पर उस हुक्म के वावजूद महात्मा ईसा किसी प्रकार वच गए।

उन दिनों आज के इजराइल और उसके आस पास के इलाको को यहूदिया कहते थे। वह यहूदियों का देश था। यहूदी अपने देश को 'पवित्र भूमि' मानते थे। महात्मा ईसा के जन्म के समय यहूदिया पर रोमवालों का अधिकार था। उन्होंने यहूदियो को दवाना शुरू किया। यहूदी लोग वड़े कट्टर थे और उन्हे अपने धर्म का वड़ा
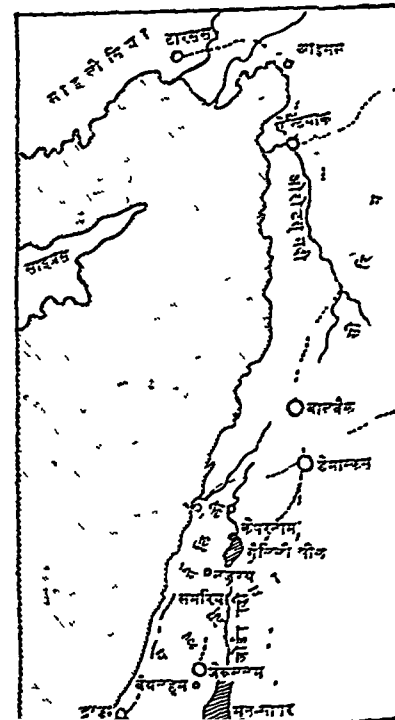
अभिमान था। ज्यों ज्यो रोमन उनको दबाते गए त्यों त्यो रोमनो के खिलाफ उनकी घृणा बढ़ती गई। नतीजा यह हुआ कि रोम के नए राजाओं को अपनी नीति बदलना पड़ी। उन्होंने कुछ अधिकार देकर यहूदियो मे फूट डाल दी। अब यहूदी धर्म मे दो दल हो गए। एक फ़रीसी और दूसरा सदूकी। फरीसी लोग धर्म के बाहरी आडम्बर और रीति रिवाज पर अधिक ज़ोर देते थे। वे रोम के नए राजाओ को विधर्मी समझते थे और उनके रीति रिवाजों और विचारो से घृणा करते थे। उस घृणा ने उन्हे घमडी बना दिया था। वे हमेशा इस चिंता मे उलझे रहते थे कि नास्तिक रोमन राजाओ की छूत से लोगो को किस प्रकार बचाया जाए। इसके लिए उन्होंने अजीब अजीब क़ानून बनाए। साथ ही उन्होने धर्म के नाम पर कुलीन और आम लोगो के बीच ऊँच नीच का भेद बढ़ा दिया और गरीबों पर तरह तरह के धार्मिक टैक्स भी लगाए। इस तरह आम जनता दो चक्की के पाटो मे पिसने लगी। एक तरफ विदेशियो की गुलामी से पैदा हुई तबाही और दूसरी तरफ अपने ही धर्म के गुरुओ द्वारा ऊँच नीच के भेद भाव और टैक्सो की मार।

ठीक उसी समय महात्मा ईसा का जन्म 'बेथलहम' नामक एक छोटे से गाँव मे हुआ। महात्मा ईसा के बचपन का नाम 'यीशू' था। वे भी यहूदी जाति के थे। उनकी माता का नाम मरियम था। वे बहुत ही ग़रीब घर मे पैदा हुए थे और बचपन मे ही

ड्रेस्डन (जर्मनी) के 'रायल गैलरी ऑफ' में रखा मरियम और शिशु ईसा का प्रसिद्ध चित्र जिसे रैफल नाम के चित्रकार ने बनाया था।

बेथलहम से नजरथ चले गए। यीशू के जीवन के ३० बरस का हाल बहुत कम मिलता है। केवल इतना ही मालूम है कि १२ बरस के होते ही वे यहूदी विद्वानों के साथ गंभीर से गंभीर विषयों पर वाद विवाद करने लगे थे।

जर्मन चित्रकार हेनरिक ?फनन का बनाया बालक यीशु का एक चित्र

नजरथ मे ज्यादातर गरीब मछुओं की आबादी थी। यीशू उन्ही के बीच पले और बढे। उनके हृदय पर आम जनता की गरीबी और बेबसी का बहुत प्रभाव पडा। ग़रीब लोगों पर अमीरो और ऊँची जातिवालो के अत्याचार देखकर उनके मन मे आम जनता के लिए दया और अमीरो और पाखंडियो के लिए विद्रोह के भाव पैदा हुए। उन्होंने धर्म के प्रचलित रूप के खोखलेपन का अनुभव किया और वे सच्चे मानवधर्म की खोज मे लग गए। ३० बरस तक लगातार विचार करने के बाद यीशू ने सत्य को पा लिया। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि समाज की बुराइयाँ और आम लोगों के दुख तभी दूर हो सकते है जब सब लोग आपस मे सचाई और प्रेम का व्यवहार करें। उन्होने जनता को अपना संदेश सुनाना शुरु कर दिया। उन्होंने समझाया कि मनुष्य अपने पवित्र आचरण से धरती पर ही स्वर्ग बना सकता है। मृत्यु का भय त्यागकर दूसरों के भले के लिए तैयार रहने से मनुष्य साधु जीवन की रक्षा कर सकता है। महात्मा ईसा ने पूरे विश्वास के साथ एलान किया कि "स्वर्ग का राज्य निकट है। उसे पाने के लिए मनुष्यता और सचाई की राह पर चलना चाहिए।"

उनकी बात ग़रीबो के मन मे घर कर गई। गरीब लोग बहुत दिनों से सताए जा रहे थे। ऊँचे और कुलीन कहलानेवाले

लोग उन्हे नीच और अछूत समझकर दुतकारा करते थे। महात्मा ईसा ने उन्हे गले लगाया। वे अपना ज्यादातर समय गरीबो की सेवा मे विताने लगे। इसलिए उनके उपदेशो को सुनने के लिए लोगो की भीड़ उमड पडती थी। शीघ्र ही वे सच्चे अर्थ मे जनता के नेता बन गए।

इसी बीच महात्मा ईसा के जीवन मे एक खास घटना हुई। एक दिन यहुन्ना से उनकी भेंट हुई। यहुन्ना एक यहूदी साधु थे जो जोर्डन नदी के किनारे रहते थे। वे रोमन साम्राज्य के अन्त और 'ईश्वर के राज्य' की स्थापना के सपने देखा करते थे। लोग दूर दूर से उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने आया करते थे। वे उन्हे अपना शिष्य बनाते थे, और जोर्डन नदी के जल मे बपतिस्मा (दीक्षा) दिया करते थे। महात्मा ईसा की भाँति यहुन्ना भी अमीरो, पुजारियो और कुलीन यहूदियो के झूठे घमड और अत्याचारो के खिलाफ थे।

महात्मा ईसा अपने भक्तो के साथ यहुन्ना से मिलने गए। दोनो लगभग एक ही उम्र के थे। दोनो के विचार भी एक जैसे थे। दोनो ने एक दूसरे का आदर किया। महात्मा ईसा कुछ समय तक वही रहे। उनमे भाषण या उपदेश देने की योग्यता वही पैदा हुई। बपतिस्मा का रिवाज काफी फैल चुका था। इसलिए महात्मा ईसा ने भी उसे अपना लिया। यहुन्ना से उस समय के अधिकारी बहुत नाराज थे, क्योंकि यहुन्ना उनकी कडी आलोचना किया करते थे। एक बार अधिकारियो ने उन्हे मकचेरो नाम के

यहुन्ना, जिन्हें 'जान दि बैपटिस्ट' कह

क़िले मे क़ैद कर दिया। यहुन्ना के क़ैद होने के वाद महात्मा ईसा जोर्डन नदी और मृत सागर के पास के इलाक़ो मे उपदेश देते रहे। उन्होने उसी ज़माने में एक वार यहूदिया के रेगिस्तान मे ४० दिन तक कठोर तपस्या की। वहाँ के लोगों का विश्वास था कि रेगिस्तान मे भूत प्रेत रहते है। इसलिए महात्मा ईसा के सही सलामत लौट आने पर वड़ी सनसनी फैली। उनके लौटने पर लोगों की श्रद्धा उन पर दूनी हो गई।

महात्मा ईसा वहाँ से गैलिली नामक इलाक़े मे लौट आए। अव उनका व्यक्तित्व खूव निखर चुका था। उनके विचार पक्के हो चुके थे। वे पूरे विश्वास के साथ उपदेश देते थे। यहूदियों के धर्म मे स्वर्ग के राज्य की कल्पना पहले से ही मौजूद थी। महात्मा ईसा ने उस कल्पना को खाली कल्पना भर नही रहने दिया। उन्होंने धरती पर ही उस कल्पना को सच कर दिखाने का रास्ता वताया। उन्होने कहा कि 'स्वर्ग का राज्य' मनुष्य की पहुँच के भीतर है और वह धरती पर ही क़ायम होगा। उन्होंने एलान किया कि "अभी संसार मे शैतान और पाप का राज्य है। इसीलिए साधुओं और सज्जनों को मौत के घाट उतारा जा रहा है। पादरी या पुरोहित जो कहते है, उस पर वे स्वयं अमल नही करते। इसीलिए समाज भगवान और उनके भक्तों का शत्रु हो गया है। किंतु अव पाप का घड़ा भर चुका है। वह फूट कर ही रहेगा। तभी धरती पर 'स्वर्ग का राज्य' क़ायम होगा।"

महात्मा ईसा के उपदेश वहुत प्रभावशाली और हृदय को छूनेवाले होते थे। छोटी छोटी वातों और कथा कहानियों के ज़रिए वे वड़ी से वड़ी और गम्भीर वात आसानी से समझा दिया करते थे।

महात्मा ईसा के समय में यहूदिया के ऊपर रोमन सम्राट सीजर शासन करता था। लोग सीज़र के नाम से काँपते थे। उनके सामने धर्म और भगवान की भी कोई हस्ती न थी। महात्मा ईसा ने लोगों को समझाना चाहा कि सीज़र प्रजा की सांसारिक धन-संपत्ति का दावेदार हो सकता है, पर वह जनता की भक्ति, प्रेम और विश्वास नहीं पा सकता। महात्मा ईसा ने इस बात को एक छोटे से वाक्य में बड़ी ख़ूबी से कहा है। उन्होंने कहा, "सीज़र का पावना सीज़र को दो और ईश्वर का पावना ईश्वर को।" महात्मा ईसा का विश्वास था कि अत्याचार के दौर में भी आज़ादी के साथ धार्मिक जीवन बिताया जा सकता है।

उन्होंने अपने शिष्यों को त्याग की शिक्षा दी और कहा, "मेरे साथ चलने या कहीं अकेले जाने में भी अपने साथ कुछ न रखो। न पैसा, न खाना, न कपड़ा, न कोई और सामान।" उन्होंने अपने शिष्यों को अत्याचारी शासन से असहयोग का मंत्र भी दिया। उन्होंने कहा, "जब तुम्हें कैद किया जाए या तुम्हारे ऊपर मुकदमा चले तो कोई पैरवी न करो, यदि तुम्हारे शरीर को कष्ट भी मिले तो भय न करो, क्योंकि तुम्हारी आत्मा अमर है।" उन्होंने सत्य के लिए आग्रह पर जोर दिया और कहा, "सत्य के लिए माता, पिता, स्त्री, बच्चे, भाई, बहिन सबको छोड़ दो। जो सत्य के लिए सर्वस्व नहीं त्याग सकता वह मेरा शिष्य नहीं हो सकता।'

शुरू में महात्मा ईसा के उपदेशों का कोई ख़ास विरोध नहीं हुआ। किंतु एक बार किसी ने यह ख़बर फैला दी कि यहूदा ही

महात्मा ईसा के रूप में पैदा हुए हैं। इस खबर से यहूना के फरीसी विरोधियों के कान खड़े हो गए और फरीसी लोग महात्मा ईसा के दुश्मन हो गए। अंतीपस उनका नेता था। उसी ने यहूना को कैद किया था। महात्मा ईसा को बार बार बताया गया कि अंतीपस और फरीसी उनके खून के प्यासे हैं और उन्हें मार डालने की फिक्र में हैं। किन्तु महात्मा ईसा ने तनिक भी परवाह न की। एक बार जब महात्मा ईसा गैलिली से यहूदिया जाने लगे तो उनके साथियों ने उन्हें रोका। पर महात्मा ईसा जानते ही न थे कि डर किस चीज का नाम है। वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। यहूदिया की वह यात्रा ही उनकी मौत का कारण बन गई।

यहूदिया पहुँचने पर महात्मा ईसा को भयानक विरोध का सामना करना पड़ा। वहाँ के लोगों पर अपनी बातों का प्रभाव होता न देख उन्हें बहुत दुख हुआ।

फरीसी लोगों ने अधिकारियों को ईसा के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। एक बार उन्होंने महात्मा ईसा पर पत्थर भी बरसाए। उनके प्राण लेने पर उतारू हो गए। अंत में उन्होंने एक सभा की, और उस सभा में यह निर्णय किया कि महात्मा ईसा और यहूदी धर्म के लोग एक साथ नहीं रह सकते, और यहूदी धर्म की रक्षा के लिए महात्मा ईसा का बलिदान आवश्यक है। उस सभा के बाद यहूदियों के पवित्र तीर्थ जेरूसलम के प्रधान पुरोहित 'काइआफा' ने महात्मा ईसा को क़ैद करने का हुक्म दे दिया। पर उस समय महात्मा ईसा पकड़े न जा सके, क्योंकि वे एफरेन नामक शहर की ओर चले गए थे।

कुछ समय बाद महात्मा ईसा एक उत्सव में भाग लेने के लिए जेरुसलम आए। वहाँ गैलिली के जो निवासी रहते थे, उन्होंने उनका शानदार स्वागत किया। उन लोगों ने एक बड़े जलूस के साथ महात्मा ईसा की सवारी निकाली और सड़कों पर कीमती कपड़े बिछाकर उनका सम्मान किया। अनेक लोगों ने उन्हें यहूदियों का राजा कहकर भी पुकारा। अमीर और कुलीन यहूदियों को ईसा का यह स्वागत अच्छा न लगा। उन्होंने महात्मा ईसा का अंत कर देने की ठान ली। बड़े पुरोहित 'काइआफा' के घर फिर सभा हुई और यह तै हुआ कि महात्मा ईसा को पकड़ लिया जाए।

जेरुसलम में ईसा का स्वागत

एक रात को महात्मा ईसा अपने शिष्यों के साथ खाना खाने बैठे। वे सदा की भांति शांत थे। पर वह अखंड शांति उनकी उदासी को न छिपा सकी। उन्होंने अपने साथियों की आँखों में देखते हुए कहा, 'आज जो मेरे साथ खाना खा रहे हैं, उन्हीं में से एक मेरे साथ विश्वासघात करेगा।'

सुनकर सभी सन्न रह गए। साथियों ने समझा कि महात्मा ईसा को गिरफ्तार होने का डर था। उन्होंने मिलकर एक भजन गाया और वे महात्मा ईसा के पीछे पीछे 'जैतून की पहाड़ी' की ओर चले

गए। चलते चलते वे एक बाग़ में पहुँचे। सभी थकान और चिंताओं से चूर थे। महात्मा ईसा ने कहा, "तुम लोग यहीं बैठ जाओ, मैं भगवान की प्रार्थना करूँगा।"

उन्होंने प्रार्थना करने के बाद देखा कि उनके साथी सो गए थे। महात्मा ईसा ने दूसरी बार प्रार्थना की और उनके साथी सोते रहे। तब उन्होंने कहा, "अच्छा सोओ और आराम करो।"

पर वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि उन्होंने दूर से चमकती हुई एक रोशनी देखी, और कुछ लोगों के फुसफुसाने की आवाज़ भी सुनी।

वे बोल उठे, "बस हो चुका। काल आ पहुँचा है। देखो! आदमी की औलाद को पापियों के चंगुल मे धोखे से फँसाया जा रहा है। उठो, अब चले। यह लो, मेरे साथ विश्वासघात करनेवाला वह रहा।" महात्मा ईसा के साथी चकित होकर झटपट उठ बैठे। उस बाग़ के धुँधलके में उन्हे एक साथी का चेहरा दिखाई दिया। वह साथी जुडा था।

आधी रात का समय था। बाग़ में अंधेरा छाया हुआ था। महात्मा ईसा उठकर खड़े हो गए और होनी की प्रतीक्षा करने लगे। सोची समझी योजना के अनुसार जुडा आगे बढ़ा, और उसने "स्वामी! स्वामी!" की गुहार मचाते हुए आगे बढ़कर महात्मा ईसा को चूम लिया। पलक मारते ही दुश्मनों ने महात्मा ईसा को घेर लिया। पीटर नाम के शिष्य ने तुरंत तलवार निकाल कर दुश्मनों पर हमला किया। दुश्मनों मे से एक का कान कट गया। पर महात्मा ईसा ने अपने शिष्य को रोक दिया और कहा कि "तलवार

जुडा महात्मा ईसा को चूम रहा है।

चलानेवाले का तलवार से ही नाश होता है।"

इस प्रकार एक शिष्य ने ही विश्वासघात करके महात्मा ईसा को पकड़वा दिया। दुश्मनों द्वारा घेर लिए जाने पर भी उन्होंने भागने की कोशिश नहीं की। उन्होंने उनका विरोध भी नहीं किया और शांति के साथ उनके साथ चले गए। महात्मा ईसा पर धर्मद्रोह का मुकदमा चलाया गया। तरह तरह की झूठी गवाहियाँ पेश की गई और निर्दोष होने पर भी उन्हें सूली पर चढ़ाने का फैसला सुना दिया गया। महात्मा ईसा के भक्तों और माननेवालों पर शोक का पहाड़ टूट पड़ा। लेकिन महात्मा ईसा के खून के प्यासे फरीसियों और रोमन सैनिकों को इतने से भी संतोष नहीं हुआ। उन्होंने उस समय भी महात्मा ईसा का मज़ाक उड़ाया और उन पर पत्थर बरसाए। जब वे उन्हें सूली पर चढ़ाने के लिए ले जाने लगे, तो उन्होंने महात्मा ईसा को काँटों का एक ताज पहनाया और उन्हें 'सलीब' (भारी शहतीर, जिसपर सूली दी जाती थी, क्रास) को अपने ही कंधों पर उठाकर ले चलने के लिए मजबूर किया। पर महात्मा ईसा बिलकुल शांत रहे। यहाँ तक कि सूली पर चढ़ते समय भी उनके मन में किसी के लिए क्रोध

ईसा 'सलीब' ले जाते हुए

या मैल न था। उस समय उनके मुँह से केवल इतना ही निकला, 'हे परम पिता! इन सबको क्षमा कर देना। इन्हे इस बात का ज्ञान नही कि ये क्या कर रहे है?" उस समय महात्मा ईसा की उमर केवल ३३ बरस की थी।

महात्मा ईसा के उपदेश 'इंजील' या 'न्यू टेस्टामेट' (नया अहदनामा) नामक पुस्तक मे सग्रह किए गए है। महात्मा ईसा ने अपने संदेश का प्रचार करने के लिए १२ सीधे सादे शिष्यो को चुना था। यह पुस्तक उन्ही मे से चार की लिखी हुई है। इसमे महात्मा ईसा मसीह के अमर उपदेशो के साथ उनके जीवन की घटनाएँ भी संक्षेप मे दी गई है।

प्राचीन मिस्र और पच्छिमी एशिया के धार्मिक विश्वास

सभी प्राचीन जातियों के अपने अपने धार्मिक विश्वास हैं। वे विश्वास अधिकतर काल्पनिक होते हैं। आदमी अपने जीवन को संसार की सभी दिखाई देनेवाली और न दिखाई देनेवाली शक्तियों का प्रतिरूप मानता है। इसलिए वह अपने विश्वासों को भी अपने जीवन के अनुसार ही बनाता है। यही कारण है कि संसार की लगभग सभी जातियों के देवताओं के रूप आदमियों जैसे ही माने गए हैं। उनके भी हाथ, पैर, नाक, मुंह और आंखें हैं। वे भी चलते फिरते और काम करते हैं। उनमें भी आदमियों की तरह दोस्ती, दुश्मनी, झगड़ा और लड़ाई होती है। मतलब यह है कि आदमी अपने ही रंग में अपने देवताओं को सिरजता और सँवारता है।

मनुष्य में जीने की लालसा इतनी प्रवल है कि वह मरने के वाद भी एक नए जीवन की इच्छा करता है। और उसी इच्छा का यह फल है कि सभी जातियों मे अपने अपने ढग से स्वर्ग और नरक की कल्पना मौजूद है। वही स्वर्ग और नरक की कल्पना उनके धार्मिक विश्वासो को थामे रहती है, उन्हे डिगने नहीं देती, क्योंकि उन्हे सदा इस वात का ध्यान रहता है कि यदि इस जीवन में वे अच्छे काम करेगे तो उन्हे स्वर्ग मे स्थान मिलेगा, नही तो नरक के कष्ट झेलने पड़ेगे। स्वर्ग मे सुख के अनगिनत सावन होंगे, और नरक मे केवल कष्ट और दुख ही प्राप्त होगा।

सभी प्राचीन जातियो के विश्वास ऐसे ही थे। पर प्राचीन मिस्रियो मे मौत के वाद भी ज़िंदा रहने की लालसा ने इतना अधिक जोर पकड़ा कि उन्होंने अपने जीवन और अपने हाड़ मांस के शरीर को मौत के वाद की जिंदगी की तैयारी का ज़रिया माना। मिस्रियो का विश्वास था कि मरे हुए मनुष्य की आत्मा पहले यमलोक के देवता ओसिरिस के पास ले जाई जाती है, जहाँ उसके पाप पुण्य का लेखा जोखा होता है। वहाँ 'थोथ' नाम की एक देवी रहती है जो तराजू के एक पलड़े मे 'मुत' नाम की देवी के पंख और दूसरे पलड़े में आत्मा का हृदय रखकर तौलती है और इस तरह मनुष्य के पाप पुण्य का हिसाव लगाती है। फिर वह ओसिरिस (यमराज) के सामने उस हिसाव को पेश करती है। अत मे जव उस आत्मा का निष्पाप होना सावित हो जाता है तव उसे देवता का आशीर्वाद मिलता है। इस तरह यमलोक से छुटकारा पाकर आत्मा फिर अपने पुराने शरीर को खोजती है और उसमे घुसकर, जव तक वह शरीर क़ायम रहता है, तव तक आनन्द के साथ सांसारिक सुखों का भोग करती है। वेदों मे भी 'थोथ' देवी की तरह

देवी थोथ

पाप पुण्य का लेखा जोखा

वरुण देवता की कल्पना मौजूद है, जो मरनेवालों की आत्मा के पाप पुण्य का हिसाब रखते हैं और उस हिसाब को देखकर ही यमराज किसी की आत्मा को सुख या दुख देते हैं।

मरने के बाद भी संसार के सुख भोगने की लालसा और विश्वास के कारण प्राचीन मिस्रियों ने यह कोशिश की कि आदमी का हाड़ मांस का शरीर उसके मरने के बाद भी सड़ने गलने न पावे, ताकि उसमें वापस आकर आदमी की आत्मा अनन्त काल तक सुख भोग सके। इसीलिए मिस्रियों ने हजारों साल पहले एक ऐसा लेप ईजाद किया जिसे लाश पर लगा देने से वह सड़ती गलती या खराब नहीं होती थी। लेप लगाने के बाद वे लाश को कपड़े में लपेटकर ताबूत में रख देते थे। ऐसी लाशों को 'ममी' कहते हैं। वे उन लाशों को बड़ी बड़ी समाधियों में दफनाकर और भी अजर अमर कर देते थे। उन्हीं बड़ी बड़ी समाधियों को पिरामिड कहते हैं, जो आज भी एक बड़ी संख्या में मिस्र में मौजूद हैं। इसी तरह हजारों साल पहले की सुरक्षित लाशों की 'ममियाँ' मिस्र के अजायबघरों में आज भी रखी हुई हैं। मिस्रियों ने केवल मनुष्यों की ही नहीं, बल्कि उन जानवरों की भी 'ममियाँ' बनाईं, जो उनके देवताओं के प्रिय थे और जिनका वे देवताओं की तरह मान करते थे। पिरामिडों में दफन करने से पहले ममियों के साथ तरह तरह के पकवान और सुख के दूसरे साधन भी ढेरों रख दिए जाते थे। ताकि लौटकर आने पर आत्मा को कभी किसी चीज की कमी न महसूस हो।

प्राचीन मिस्रियों का विश्वास था कि आत्मा चार प्रकार की होती है। वे पहली को 'का' या 'को' कहते थे जिसका अर्थ होता था 'शरीर
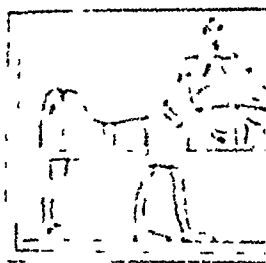
का दूसरा रूप'। दूसरे प्रकार की आत्मा को वे 'वा' कहते थे। 'वा' के सिर को तो वे आदमी के सिर जैसा पर शरीर को पक्षी जैसा मानते थे। तीसरे प्रकार की आत्मा 'इख' कहलाती थी। उनका यह भी विश्वास था कि 'वा' लौटकर ममी मे प्रवेश कर जाती है, पर 'इख' यमलोक से सीधे आसमान मे उड़ जाती है। चौथी प्रकार की आत्मा एक छाया जैसी मानी गई थी, जो बहुत ज़माने तक इधर उधर फिरा करती थी। अपने देश मे भी पापहीन आत्मा को हंस और प्रेतात्मा को छाया मानते है।

'वा'

मौत के बाद आदमी का क्या होता है इस सम्बन्ध की अनेक कहानियाँ मिस्र के पिरामिडो की दीवारों पर चित्रलिपि मे खुदी हुई मिली है। इन कहानियों का एक सग्रह भी तैयार हो गया है, जिसे संसार का सबसे प्राचीन साहित्य कहना चाहिए। उस संग्रह को 'मृतकों की किताब' कहते है, क्योंकि उसमे अनेक टोने टोटके, जन्तर मन्तर इसलिए लिखे हुए है कि उनकी मदद से मरनेवाले की आत्मा मौत के बाद का सफर आसानी से तै कर सके।

लगभग हर देश के बहुत पुराने धर्मो मे कुछ देवताओं के सिर या शरीर जानवरों की तरह माने गए हैं। मिस्रियो और असुरो के भी अनेक देवताओ के या तो सिर जानवरों के से थे या शरीर। आदमी के धड़ पर जानवर का या जानवर के धड़ पर आदमी का सिर बैठाने का शायद यह मतलब होता था कि वह उन्हीं की तरह बलवान है। मोहंजोदड़ो आदि की मोहरों पर आदमी के धड़ पर शेर आदि के सिर बने हुए मिले है।

प्राचीन मिस्री देवताओं मे ओसिरिस का

तिगलाथ पिलेज़र (तीसरा)

करते थे। वाद मे जव वावुल का दवदवा वढा तव वहाँ शेमी नामक एक नई जाति के सम्राट् हमूरवी ने पहला वावुली साम्राज्य खड़ा किया। हमूरवी से पहले किसी राज्य में क़ानून नही वने थे। उसी ने पहले पहल जनता के वास्ते कानून वनाए। वाद मे वहाँ सवसे अधिक ताक़तवर असुर हुए, जिनकी विजय और दवदवे के वर्णन से उस काल का साहित्य भरा पड़ा है। उनका राज्य एक ओर फारस और दूसरी ओर मिस्र तक फैला। सारगौन, नजीरपाल, वनिपाल और तिगलाथ पिलेज़र नाम के असुर राजा इतिहास मे प्रसिद्ध हुए। उन्होने पहली वार वैज्ञानिक ढंग से सेना का संगठन किया और लड़ाई मे घोड़ों तथा घोडे जुते हुए रथों का इस्तेमाल किया। वे लम्वी दाढ़ी और सिर पर लम्वे वाल रखते थे। वे खूँखार और ताक़तवर थे। जव वे कोई देश जीतते थे तो वहाँ के मर्दो को तलवार के घाट उतार देते थे या गुलाम वना लेते थे। औरतो और मवेशियों को हाँक ले जाते थे, और समूची जनता को उजाड़ कर दूसरी जगह वसाते थे। एरिदू, ऊरू, वाविलू (वावुल), वारसिप (वोरसिप्पा) अक्काद, असुर (अश्शुर), निनुआ (निनेवे), अरवैल (अरवेला), आदि प्राचीन सुमेरी और आसुरी सभ्यता के प्रसिद्ध शहर थे।

असुरों ने दो वाते वड़े मार्के की कीं। एक तो उन्होने इमारती कला की ईजाद की और उसमें उन्होने इतनी उन्नति कर ली कि उनके राजमज़दूर और कारीगर दूसरे देशों मे वुलाए जाने लगे। महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर के महल को

नज़ीरपाल (दूसरा) के महल (निम
में पंखधारी पुरोहित का उभरा हुआ

बनानेवाला शिल्पी 'मय' नाम का एक असुर ही था। समझा जाता है कि महाभारत का समय सारगौन या नजीरपाल के समय के आसपास था। दूसरे, उनके राजा बनिपाल ने गीली ईंटो पर कीलनुमा अक्षरो मे लिखे प्राचीन सुमेरी और बाबुली सभ्यता के साहित्य को अपने नगर निनेवे के पुस्तकालय मे इकट्ठाकर उसकी रक्षा की। हाल की खुदाई मे निनेवे नगर का पता चला है और वे ईंटे मिली है, जिनसे हमे सुमेरी, बाबुली और आसुरी सभ्यताओ की खासी जानकारी हुई है।

उन्ही ईंटो से हमने जाना कि पुराने जमाने मे वहाँ हर नगर के अपने अपने देवता थे और जब एक नगर दूसरे नगर पर विजयी होता था तो विजयी नगर के देवता भी हारे हुए नगर के देवताओ पर विजयी मान लिए जाते थे।

सुमेरी बाबुलियो का भी मिस्रियो की ही भाँति परलोक मे विश्वास था। इसी से उनकी भी कब्रो मे मरनेवालो के साथ आराम की सभी चीजे दफनाई जाती थी। ऊर के राजाओ के मरने पर उनके दास, दासी, जानवर आदि जहर पिलाकर अपने मालिक की लाश के साथ जिंदा ही दफना दिए जाते थे। उन कब्रो मे लाशो की ठठरियो के अलावा रथ, बाजे, कीमती जवाहरात और सोने चाँदी की चीजे भी मिली है।

असुर बनिपाल के नगर निनेवे की खुदाई मे जो ईंटे मिली है उनसे हमे न सिर्फ पुराने सुमेरी बाबुली साहित्य का ही पता चलता है, बल्कि सुमेरियो और बाबुलियो के धार्मिक विश्वास, उनके देवी देवताओ और उनके कारनामो का भी विवरण मिला है। सुमेर मे तीन देवता प्रधान माने जाते थे। अनु, एन्लिल और इया। अनु स्वर्ग का देवता था, एन्लिल पृथ्वी का और इया जल का। सिन (चाँद), शमश् (सूर्य) और ईश्तर देवी का एक दूसरा

असुरो का प्रधान देवता 'अश्शुर'

दल था। इश्तरदेवी के पति का नाम तम्मूज था, जिसके मर्सिया से पुराना बाबुली साहित्य भरा पड़ा है। पहले दल के देवता एन्लिल और दूसरे दल के देवता सिन के एक एक पुत्र भी था। उनके नाम थे— निनिब और नुस्कू। बहुत बाद को निनिब का भी रुतबा खूब बढ़ा। नुस्कू प्रकाश का देवता माना जाता था, जैसे गिरू आग का और रम्मन (या अदाद) बारिश, बिजली और बादल का। असुर जाति का प्रधान देवता 'अश्शुर' था, और जिस नगर मे उसका मंदिर था उसका भी नाम 'अश्शुर' ही था।

धीरे धीरे जब बाबुल का प्रभाव बढ़ा तब बाबुलियों का देवता मरदुक भी प्रबल हो गया। मरदुक ने अकाल और सूखे की देवी तियामत को, जो शकल में अजगर जैसी थी, वज्र से मार डाला। तियामत अपनी लपेट (कुंडली) मे देश का सारा जल छिपाए हुए थी, और उसे मार कर मरदुक ने देश के जल की रक्षा की थी।

उन पुराने देवी देवताओं मे आदमियों की ही तरह मोहब्बत, दोस्ती और दुश्मनी हुआ करती थी। उनके भी परिवार होते थे, और उन परिवारों मे वही सब होता था जो आदमियों के परिवारों में होता रहता है। सुमेरी और बाबुली साहित्य मे देवताओं के क्रोध की एक दिलचस्प कहानी मिलती है, जो आगे के पन्नों में दी जा रही है।

आज से हज़ारों साल पहले सुमेर देश में हुई जलप्रलय की यह कहानी, उन ईटों पर लिखी गई थी जो राजा बनिपाल असुर के निनेवे के ग्रंथागार मे

मिली है। यह कहानी गिल्गमेश नामक सुमेरी बाबुली महाकाव्य मे लिखी है। इसी कहानी को प्राय सभी प्राचीन जातियों ने थोड़ा सा अदल बदल कर अपनी अपनी धर्म पुस्तको मे लिख लिया। इजील के जलप्रलय की कहानी का नायक जिउसुद्दू की जगह नूह है और हिन्दू जलप्रलय की कहानी का नायक मनु।

दो गाथाएँ

(१)

ओसिरिस की कहानी

हाथों से स्वर्ग को
हुए वायु देवता 'शु'

चारो ओर धुध का एक समुन्दर फैला हुआ था। उस धुध के समुन्दर के सिवा और कुछ भी कही नही था। उस समुन्दर का नाम था 'नुन'। यह देखकर सूरज देवता अपनी ऊँचाइयो से उतरे और उस धुध के समुन्दर मे जा घुसे। अजब करिश्मा हुआ। उस धुध से दो जीव जनमे। एक नर एक मादा। दोनो भाई बहन। भाई का नाम पड़ा 'शु', बहन का नाम 'तेफ्नुत'। 'शु' वायु देवता हुआ, और उसने अपनी बहन तेफनुत से शादी कर ली। उस शादी से फिर दो प्रानी जनमे। एक नर, धरती का देवता 'गेब', और एक नारी, आकाश की देवी 'नुत'। गेब ने नुत को ब्याहा। इस ब्याह से चार जन जनमे—दो बेटे, दो बेटी। बेटे थे ओसिरिस और

सेत, और वेटियाँ थी आइसिस और नेफ़्थिस। ओसिरिस ने अपनी वहन आइसिस को व्याहा, और उनसे जनमा होरस, अपने दादा के दादा सूरज देवता का अग, उसका ही अवतार, खुद सूरज।

जैसा दुनिया मे अक्सर होता है भाइयों मे न वनी, और सेत ओसिरिस का जानी दुश्मन वन गया। ओसिरिस की जान लेकर अपनी राह के उस काँटे को उसने दूर कर देना चाहा। ओसिरिस भी ताक़त मे उससे कुछ कम न था। इससे जव आमने सामने कुछ करते न वना तव सेत ने छल से काम लेना तय किया। उसने ओसिरिस को धोखे से एक लकड़ी के तावूत मे वंद कर दिया। फिर तावूत मे कीले जड़कर उसे समुन्दर मे फेक दिया। पर तावूत डूवा नही। लहरें उसे दूर वहा ले गई। वह शाम के विव्लस नगर मे समुन्दर के किनारे जा लगा। तावूत के पास एक पेड़ तत्काल उग आया जिसने तावूत को पूरी तरह ढक लिया। वहाँ के राजा को अपने महल के लिए खंभों की ज़रूरत पड़ी, सो उसके आदमी वही पेड़ खंभो के लिए काट ले गए।

देवता सेत

ेफ्थिस

ओसिरिस की तो यह गति हुई, उधर उसकी स्त्री आइसिस उसके विना वेहाल थी। अपने पति की खोज मे वह दर दर की ख़ाक छान रही थी। उसी सिलसिले मे वह विव्लस पहुँची। आइसिस को वहाँ ओसिरिस की लाश मिल गई, जिसे लेकर वह मिस्र चली आई। वहाँ पहुँचकर आइसिस ने उसे जिलाया और फिर से अपना पति वनाया।

ओसिरिस को पुनर्जीवन

देवी आइसिस
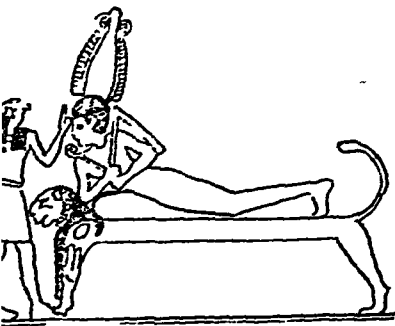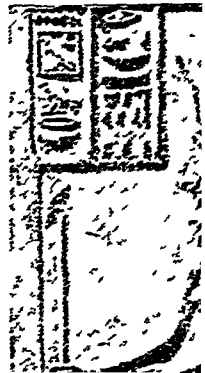
इसी बीच ओसिरिस और आइसिस के लड़के होरस का दम खम बढ़ चला। अब तक सेत के डर से उसे एक नदी के दलदल में छिपाकर रखा गया था। लेकिन जवान होने पर जब उसने अपने पिता की हत्या का समाचार सुना, तो सेत से उसका बदला चुकाने की ठानी। एक दिन होरस ने सेत को जा घेरा। दोनों में घमासान लड़ाई हुई। होरस की एक आँख जाती रही, और सेत का खातमा हो गया।

(२)

जल प्रलय की कहानी

पृथ्वी के देवता एन्लिल ने आदमियों के पाप से चिढ़कर देवताओं की एक सभा की और आदमियों को उनके किए की सजा देने के लिए तै किया कि दुनिया को बाढ़ से तबाह कर दिया जाय। पर एक दूसरे देवता इया ने आकर शुरुप्पक नगर के रहनेवाले जिउसुद्दू (न्डत्नपिश्तिमन्अत्रखसीस) नाम के एक आदमी को उसका भेद बताकर मानव जाति की रक्षा कर ली। जिउसुद्दू ने जलप्रलय की वह कथा अपने वंशज गिल्गमेश से इस प्रकार कही।

"मैं तुझसे एक भेद की वात कहूँगा, और तुझे देवताओं की साजिश तक वता दूँगा। शुरूप्पक नगर को जानता है, जो फ़रात के तट पर है ? वह नगर पुराना हो गया था, और उसमे वसनेवाले महान देवता के चित्त मे आया कि प्रलय करे। नेक देवता एकी उनके विरुद्ध था। उसने उनकी मंत्रणा एक नरकट की झोंपड़ी को सुनाकर कही ताकि, उसमे रहनेवाला आदमी ज़िउसुद्दू सुन ले और आनेवाली मुसीवत से अपने को वचाने की तैयारी कर सके। उसने कहा, 'नरकट की झोपड़ी! दीवार, ओ दीवार! सुन, हे नरकट की झोपडी! समझ, ओ दीवार! शुरूप्पक के मानव, उवर्दुदू के पुत्र, घर को गिरा डाल, एक नौका वना, माल असवाव छोड़ दे, जान की फिक्र कर। जायदाद से तोवा कर और अचानक मर नही, ज़िंदगी वचा ले! सारे जीवो के वीज इकट्ठा करके नौका मे रख ले।'

"जिउसुद्दू ने जैसा सुना उसी पर अमल किया। उसने एक वडी नौका वनाई और उसमे सव जीवो के वीज और भोजन आदि भर लिया। उसके वाद वह नगरवासियो से वोला, 'शक्तिमान देवता एन्लिल मुझसे दुश्मनी रखता है, जिससे मै, जिउसुद्दू, उनके वीच नही रहूँगा।'

"फिर उसने अपने परिवार को नाव मे चढ़ाकर नाव को अच्छी तरह वंद कर लिया। तभी एकाएक भयानक तूफ़ान आ गया, जिससे चारो तरफ इतना अँधेरा छा गया कि ख़ुद देवताओं को भी वादलों के वीच मशाल चमकाते देखा गया।

"उस अँधेरे मे किसी को अपना हाथ तक नहीं दिखाई पड़ता था। और पानी की वाढ से तो खुद देवता भी डर से काँपते हुए स्वर्ग मे जा पहुँचे। तूफान की भयंकरता से व्याकुल होकर देवी इनन्ना चीख उठी और रो रोकर

ओ से कहने लगी, 'मैंने क्यो देवसभा मे
ी ही प्रजा के लिए तूफान बरपा करने
राय दी ? क्या मैंने अपनी प्रजा को
लिए पैदा किया था कि उनमे मछलियो
डों की तरह समुन्दर भर जाय ?'

"छे दिन और सात रात तूफान और
की बाढ उमड़ती रही और जल की
ह पर बहती हुई नाव मे मैं अपने
थियो के लिए चिल्ला चिल्ला कर रोता
हा। केवल पहाडो की ऊँची चोटियाँ
ानी से ऊपर थी। उन्ही मे से एक चोटी
ी नौका जा लगी और सप्ताह भर तक
वही रही। सातवे दिन मैंने
एक कबूतर निकाला और उडा दिया।
कबूतर उड़ गया और चारो ओर
उड़ता रहा। पर उसे कहीं उतरने
की जगह नही मिली और वह हारकर लौट आया। तब मैंने एक अबाबील
निकाली और उसे भी उडा दिया। वह भी चारो ओर चक्कर काटकर
लौट आई, क्योंकि उसे भी कहीं उतरने की जगह नहीं मिली। फिर मैंने
एक कौआ निकाल कर उडाया। कौए ने उडकर देखा कि जल घट रहा है।
उसने दाना चुगा, जल मे घुसकर डुबकियाँ लगाई, पर लौटकर नहीं आया।

"मैंने हवन करने का सामान निकाला और चारो हवाओ के नाम पर

प्रसिद्ध चित्रकार [illegible] का बनाया
जल प्रलय का [illegible] चित्र

वलि चढाई, यज्ञ किया। पर्वत की ऊँची शिला पर मैंने सात वोतल मदिरा चढ़ाया, उसके नीचे वेत, दारू और धूप-अगरु विखेरे। देवताओं ने उसकी सुगंधि ली और यज्ञ के स्वामी के चारो ओर इकट्ठे हो गए। अंत मे देवी इनन्ना पहुँची और वह हार, जो अनु देवता ने उसके कहने से वनाया था, दिखाकर वोली, 'देवताओं, जैसे मै अपने गले की इन नील मणियों को नहीं भूलती, उसी तरह मै इन वुरे दिनो को नही भूल सकती। इन्हे मैं सदा याद रक्खूंगी। सव देवता यज्ञ मे पधारें परन्तु एन्लिल न आवे। इस यज्ञ का भाग वह न पावे, क्योकि उसने कहना नहीं माना, क्योकि उसने जल प्रलय कर डाला और गिन गिनकर मेरी एक एक प्रजा का नाश कर दिया।'

"देवता एन्लिल ने नाव देखी और वह क्रुद्ध हो उठा। उसने पूछा कि किस प्रकार कोई भी आदमी जल प्रलय से वचकर निकल गया ? नेक देवता एंकी ने जवाव दिया 'हे देवताओ के देवता! तूने कहना क्यो नहीं माना और वरवस प्रलय मचा दी ? प्रलय मचाने से अच्छा होता कि तू शेर और भेड़िये भेजकर प्रजा की संख्या कम कर देता। पाप पापी के ऊपर डाल। अव कृपा कर, ताकि जिउसुद्दू विल्कुल अकेला न रह जाए, मतिभ्रम न हो जाए।'

"क्रुद्ध देवता शांत हो गया। कुछ के किए पापो का दंड वहुतो को देनेवाले उस देवता को एंकी वुरा भला कहता रहा। अंत में एन्लिल ने आकर मुझे नौका से वाहर निकाला। फिर वह मेरी पत्नी को भी वाहर निकाल लाया और उससे मुझे प्रणाम कराया। उसने हमारा माथा छुआ और हमारे वीच खडे होकर हमे आशीर्वाद दिया। उसने कहा, 'पहले जिउसुद्दू मनुष्य था पर अव से जिउसुद्दू और उसकी पत्नी निश्चय ही हमारी तरह देवता होंगे और दूर नदियों के मुहानों मे वास करेंगे।'"

(१)

बंगला साहित्य

"वंदे मातरम्..." हमारा एक राष्ट्रीय गान है, जो सारे देश में गाया जाता है। उसे बंगला के महान् लेखक बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने लिखा है।

हमारा दूसरा राष्ट्रीय गान "जन मन गण..." है। उसे कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है। आज की दुनिया में ऐसा कोई सभ्य देश न होगा जहाँ के लोग कवि रवीन्द्रनाथ का नाम न जानते हों। उन्होंने अपना सारा साहित्य बंगला भाषा में ही लिखा है। रवीन्द्रनाथ इस युग के भारत के सबसे बड़े कवि थे।

उनसे पहले भी बंगला में बहुत से कवि और साहित्यकार हो चुके हैं। कोई हजार साल पहले बंगाली साधु संतों ने पहले पहल बंगला भाषा में भजन, गान और पद लिखे थे, जिन्हें 'चर्यापद' कहते हैं। जिस समय चर्यापद लिखे गए, उससे पहले लगभग सभी बंगाली कवि संस्कृत में ही साहित्य रचना करते थे। उनमें जयदेव बहुत प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। उनके काव्य का नाम 'गीतगोविन्द' है, जो राधा और कृष्ण की प्रेमलीला को लेकर लिखा

गया है। वहुत से लोगों का कहना है कि जयदेव की संस्कृत भाषा वंगला भाषा का ही मँजा हुआ सुन्दर रूप है।

जयदेव का घर पच्छिमी वगाल के वीरभूम ज़िले के केदुविल्व गाँव मे था। आजकल उस गाँव का नाम केदुली है। पिछले आठ सौ वरस से केदुली मे हर साल जयदेव के नाम पर मेला लगता है। जयदेव ने राधाकृष्ण की कथा लिखी थी। पर जयदेव के पदों मे जो भाव है वैसे ही भाव लिए हुए वहुत से प्राचीन पद वंगला में भी मिलते है।

चंडीदास के लिखे हुए पद प्राचीन वगला के पदो के सवसे पुराने नमूने है। चंडीदास वगालियों के प्राणो के कवि थे। जान पड़ता है कि चंडीदास किसी एक आदमी का नाम नहीं था, वल्कि वहुत से कवियो ने उस नाम से पद लिखे थे। यह भी हो सकता है कि वहुत से कवियो ने चंडीदास के पदो में ही अपने पद मिला दिए हो। चंडीदास नाम से सवसे पहले लिखनेवाले का नाम वड़ु चडीदास था। कुछ लोगों का कहना है कि वड़ु चंडीदास वीरभूम जिले के नान्नूर गाँव क रहनेवाले थे, और उनका जन्म आज से लगभग पाँच सौ वरस पहले, सन् १४५० ईस्वी के आसपास हुआ था। कुछ दूसरे लोग उनके जन्म की तिथि को उसके लगभग सौ वरस वाद, यानी सन् १५५० ई० के आसपास, मानते हैं।

वड़ु चडीदास ने अपने पदो मे कृष्ण की वृन्दावन लीला की भिन्न भिन्न कथाएँ तेरह खडो की एक पोथी मे लिखी है, जिसका नाम 'श्री कृष्ण कीर्तन' है। उसके हर पद के शुरु मे राग रागिनियो के नाम दिए है। 'श्री कृष्ण कीर्त्तन' के पद नाटकों की तरह सवाल जवाव के ढंग पर रचे गए है, जिससे मालूम होता है कि वे पद लीला खेलते समय गाए जाते होंगे। लीला के

साथ गाए जानेवाले पदो को उन दिनो 'नाट्यगीत' कहते थे। पुराने जमाने मे कुछ नाटको मे बातचीत गीतो में होती थी। चंडीदास के नाट्यगीत उन नाटको के सबसे पुराने नमूने है। उनसे पता चलता है कि उन दिनों बगाल मे नाट्यगीतो का आम चलन था।

कृत्तिवास नाम के एक दूसरे कवि ने राम के जीवन पर उसी प्रकार की कविताएँ लिखीं, जैसी चडीदास ने कृष्ण के जीवन पर लिखी। बगला भाषा की सबसे पुरानी रामायण उनकी ही लिखी हुई है। कृत्तिवास का जन्म चडीदास से कुछ पहले हुआ था। उनके जन्म दिन के बारे मे दो राये है। कुछ लोग उनका जन्म सन् १३९८ ई० मे और दूसरे सन् १४०३ ई० मे मानते है। कुछ भी हो, वे अब से कोई साढे पाँच सौ साल पहले पैदा हुए थे। कृत्तिवासी रामायण से पहले भारत की किसी और आधुनिक भाषा मे कोई रामायण नही लिखी गई थी। यह ठीक है कि तब से अब तक बगला भाषा बहुत बदल गई है, और कृत्तिवास ने जो भाषा लिखी थी उसका अब चलन नही रहा। फिर भी 'कृत्तिवासी रामायण' बगालियो की राष्ट्रीय संपत्ति है। आज भी घर घर मे उसका पाठ होता है।

कृत्तिवास नदिया जिले के फुलिया गाँव मे पैदा हुए थे। पढाई लिखाई के बाद वे गौड देश के राजा की सभा मे गए। राजा ने कवि का बहुत आदर मान किया और उनसे बार बार इनाम माँगने के लिए कहा। पर कवि ने इनाम माँगने से साफ इकार कर दिया। कारण पूछने पर उन्होने कहा –

"कार किछु नाईं लइ, करि परिहार
यथा याइ तथा आइ, गौरव मात्र सार।"

कवि कृत्तिवास
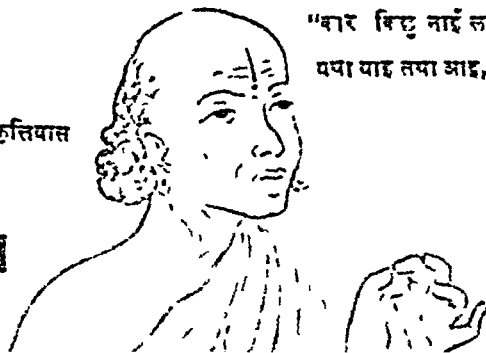
यानी, "मैं किसी से कुछ नहीं लेता। मैं धन लेने से बचता हूँ। मैं जहाँ जैसा जाता हूँ, वैसा ही लौट आता हूँ। मेरे लिए आदर ही एक मात्र सार वस्तु है।"

इस प्रकार उन्होंने सभी कवियों के लिए एक ऊँचे आदर्श की परम्परा कायम कर दी।

रामायण लिखे जाने के एक सौ बरस के भीतर ही बंगला में पहले पहल चटगाँव जिले के परागलपुर गाँव में महाभारत की रचना हुई। उन दिनों बंगाल में सुलतान हुसैनशाह का राज्य था, जिन्होंने सन् १५०३ ई० से १५१९ ई० तक शासन किया। उनके जैसा जनता का प्यारा राजा वहाँ और कोई नहीं हुआ। हुसैनशाह और उनके सेनापति परागल खाँ दोनों ही बंगला साहित्य के बड़े हिमायती और प्रेमी थे। त्रिपुरा को जीतने के बाद परागल खाँ ने वहाँ बंगला में महाभारत की कथा सुनना चाही। उनके लिए परमेश्वर नाम के एक महाकवि ने महाभारत लिखने का काम शुरू किया। परागल खाँ के बेटे, छोटे खाँ, के राज्यकाल में श्रीकर नंदी नाम के एक दूसरे कवि ने उस महाभारत में 'अश्वमेध पर्व' नाम का एक और अध्याय जोड़ा। उस समय तक भारत की किसी दूसरी भाषा में महाभारत का अनुवाद नहीं हुआ था। उसके बाद सन् १६०२-१६०३ ई० में काशीराम दास नाम के एक दूसरे कवि ने भी बंगला में महाभारत लिखा। काशीराम दास के महाभारत का परागली महाभारत से कहीं अधिक आदर हुआ। काशीराम दास सचमुच बड़े अच्छे कवि थे।

बंगाल के जीवन पर कृत्तिवासी रामायण और काशीदासी महाभारत की ऐसी अमिट छाप है कि अगर उन्हें भुला दिया जाय, तो बंगाली जाति की संस्कृति को समझना असंभव हो जाएगा।

।

चैतन्यदेव

चैतन्यदेव का भी बंगला साहित्य में लगभग कृत्तिवास और काशीराम दास जैसा ही स्थान है, हालाँकि बंगला में उनकी लिखी एक पंक्ति भी नहीं मिलती। बंगालियों की निगाह में वे साक्षात् श्रीकृष्ण के अवतार थे। उनका जन्म सन् १४८६ ई० में नवद्वीप में हुआ था। चैतन्य बेजोड़ पंडित थे, और संन्यास लेकर भगवान के प्रेम में पागल से हो गए थे। श्री चैतन्य ने उत्तर और दक्खिन के सभी तीर्थों की यात्रा की, और ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक सबको श्रीकृष्ण के प्रेम की माधुरी बाँटी। जीवन के आखिरी दिनों में वे उड़ीसा के नीलाचल स्थान में रहने लगे थे। वहीं ४७ बरस की उमर में सन् १५३३ ई० में उनका देहान्त हुआ। उनकी मृत्यु के बाद उनके भक्तों का एक बहुत बड़ा सम्प्रदाय बन गया। उन भक्तों में से बहुतों ने संस्कृत और बंगला दोनों भाषाओं में काव्य, नाटक और दर्शन के अनेक ग्रंथ लिखे। शायद ही किसी एक समय में एक साथ इतने अधिक ग्रंथ लिखे गए हों। इसीलिए बंगला साहित्य में सन् १५०० ई० से सन् १७०० ई० तक के समय को 'चैतन्य युग' कहा जाता है।

चैतन्य युग के वैष्णव लेखकों की खास रचना 'वैष्णव पदावली' है, जिसमें कृष्ण-लीला और चैतन्य-लीला के पद हैं। इन पदों की रचना चैतन्यदेव के बाद दो सौ बरस तक लगातार होती रही। आज भी उनमें से लगभग दो सौ कवियों के रचे हुए कोई आठ हजार पद मिलते हैं। चंडीदास

और विद्यापति के बाद ज्ञानदास और गोविन्ददास बंगाल के दो अमर कवि हुए। वे दोनों ही बर्दवान जिले में पैदा हुए थे। ज्ञानदास आज से कोई ढाई सौ बरस पहले और गोविन्ददास दो सौ बरस पहले हुए थे।

वैष्णव पदावली के पदों की रचना करने वालों में सैयद मुरतज़ा जैसे कई मुसलमान भक्त और कई महिलाएँ भी थीं। अनेक पद ऐसे भी हैं जिनके लिखनेवालों का ठीक पता नहीं चलता। पर सभी कवियों के भाव एक से ही हैं। सभी कृष्ण के प्रेम में मतवाले हैं। किसी का कहना है कि संसार में 'सार' बस एक 'पिरीति' (कृष्ण की प्रीति) ही है, तो किसी ने कहा है कि जप तप कुछ नहीं है 'रसिक' (भक्ति के रस का आनन्द लेनेवाले) बनो। पूजा पाठ में अक्सर एक ऐसी भावना होती है कि मनुष्य तुच्छ है और भगवान बहुत ही महान् है। उसके ख़िलाफ़ वैष्णव कवियों ने यह बताया कि मनुष्य अपने आप में महान् है और उसको भगवान से सहज भाव से ही प्रेम करना चाहिए। अपने को हीन समझकर नहीं, बल्कि मनुष्य को कृष्ण से वैसे ही प्रेम करना चाहिए, जैसे कोई भी अपने प्रिय से प्रेम करता है। अपने को हीन समझने की भावना के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हुए चंडीदास ने कहा—'मानुष जनम' जैसा सौभाग्य और कोई नहीं होता, 'मानुष' ही सत्य है।

"शुनह मानुष भाई,
सबार उपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाई।"

यानी, "हे मनुष्य भाई सुनो ! सबसे बड़ा सत्य आदमी ही है। उससे बड़ा सत्य और कुछ नहीं है।"

भक्ति के पदों के अलावा उन दिनों कविता में भक्तों की जीवनियाँ भी लिखी गई। सबसे पहले चैतन्यदेव की जीवनी लिखी गई। आगे चलकर हिन्दी के

'भक्तमाल' का अनुवाद बंगला में हुआ। हिन्दी मे भक्तमाल प्रसिद्ध कवि नाभादास ने लिखी है। उसमें उन्होंने अपने से पहले के सभी भक्तो की प्रशंसा पदो मे की है। कविता मे जितनी जीवनियाँ लिखी गई, उनमे वृन्दावनदास के 'चैतन्य भागवत', और कृष्णदास कविराज के 'श्रीचैतन्यचरितामृत' का बड़ा महत्व है। 'श्रीचैतन्यचरितामृत' तो बिल्कुल ही बेजोड रचना है।

भक्ति की धारा का प्रभाव दूसरे लेखको पर भी पडा, जिन्होने कविता में एक विशेष प्रकार की कथाएँ लिखी। उस कथा काव्य को 'मंगल काव्य' कहते है, जिनमे बगाली समाज मे प्रचलित कहानियाँ कही गई है। मंगल काव्य भी किसी एक कवि की रचना नही है। सन् १४०० से सन् १८०० तक न जाने कितने कवियों ने अनेक देवताओं के नाम पर मगल काव्य लिखे।

मगल काव्यो मे 'मनसा मगल' एक मुख्य रचना है। विप्र गुप्त, नारायणदेव आदि उसके बडे लेखक है। 'चडी मगल' उसी तरह की दूसरी मुख्य रचना है। चडी मगल के ग्रास लिखनेवाले का नाम 'मुकुन्दराम चक्रवर्ती' था, जिन्हे कवि-ककण की पदवी दी गई थी। उनकी रचना मे काव्य के गुण तो है ही, उनमे चरित्रो का वर्णन भी ऐसा सजीव है कि पढनेवाले को उसमें उपन्यास जैसा रस मिलता है।

मुकुन्दराम के लगभग डेढ सौ साल बाद भारतचन्द्र राय ने 'अन्नदा मगल' लिखा। वे अपने ढग के अकेले कवि थे। उनकी पदवी 'कवि गुणाकर' थी। ऐसी मँजी मँजाई, चटपटी और मनोहर कथा की रचना और कोई नही कर पाया। पर भारतचन्द्र राय कथा के ही रसिक थे। उनके काव्य मे जान कम है। उनके बाद एक और भारतचन्द्र हुए। ये भी बहुत बडे कवि थे। सन् १७५७ ई० मे प्लासी की लड़ाई हुई। उस समय

देश की आज़ादी खत्म हो रही थी। वह देश के दुर्भाग्य का समय था। भारतचन्द्र के 'विद्यासुन्दर' ग्रंथ मे उस समय की दुर्दशा की छाप है।

पर विद्यासुन्दर ग्रंथ से भी कोई सत्तर अस्सी साल पुराने दो और ऊँचे दर्जे के काव्य पाए जाते है, जिनकी रचना दो सूफ़ी मुसलमानों ने की थी। वे दोनों चटगाँव के कराकान नामक वौद्ध राजा की राजसभा में थे। उनके नाम दौलत काजी और सैयद आलाओल थे। दौलत काजी ने 'लोर चन्द्राणी' लिखी, और सैयद आलाओल ने हिन्दी के कवि मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत' का अनुवाद किया। कवि आलाओल जैसे उदार और पंडित कवि वहुत कम पैदा हुए हैं। वे आज से ढाई सौ वरस पहले हुए थे, जव वंगाल ने अपनी आज़ादी नही गँवाई थी।

अंग्रेज़ी राज्य के शुरू के लगभग पचास साल का समय वंगला साहित्य के लिए अंवकार का युग था, क्योंकि वंगाल ने ही सवसे पहले आज़ादी खोई थी। मगर परावीनता की पीड़ा भी सवसे पहले वंगाल ने ही महसूस की, और नई जागृति भी पहले वही आई। उसके वाद वंगाल में जिस साहित्य की रचना हुई, उसके तेवर कुछ और ही थे। उस साहित्य ने लोगों को सामाजिक, वार्मिक और राजनैतिक आज़ादी के लिए जैसे झँझोड़ कर जगा दिया और दिलों में आज़ादी की तड़प पैदा कर दी। आज़ादी की उस भावना के अगुआ राजा राममोहन राय थे। उनका जन्म सन् १७७२ ई० में हुआ था और वे सन् १८३३ ई० में विलायत में मरे थे। वे ज्ञानी, धर्म सुवारक, समाज सुवारक और कर्मठ महापुरुष थे। उन्होंने अखवार निकाले, पुस्तिकाएँ लिखी और शास्त्रों की टीका की। उन्होंने अपने इन कामों के ज़रिए वंगला गद्य की नींव डाली।

- राजाराम मोहन रा

इस समय सबसे पहला काम नई शिक्षा फैलाना था। इसीलिए सबसे पहले शिक्षा के विषय पर ही साहित्य रचा गया। इस सिलसिले में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम सदा अमर रहेगा। वे सन् १८२० ई० में पैदा हुए और सन् १८९१ ई० मे मरे थे। यो तो बगला गद्य की बुनियाद राजा राममोहन राय ने रखी थी, पर बगला गद्य के पिता ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ही माने जाते है।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

सन् १८१७ ई० से १८६७ ई० तक, पचास साल में शिक्षा का जो विस्तार हुआ, उसके फल १८५७ ई० के स्वतंत्रता संग्राम के बाद प्रकट होने लगे। इसी शिक्षा का नतीजा था कि बंगला साहित्य मे एक नया युग शुरू हुआ। धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक कामों मे पढ़े लिखे बंगाली दीवानो की तरह जुट पड़े। निलहे गोरो के अत्याचारो के खिलाफ दीनबन्धु मित्र ने सन् १८५९ ई० मे 'नीलदर्पण' नाम का नाटक लिखा। प्रसिद्ध लेखक माइकेल मधुसूदन दत्त ने उसका अंग्रेजी अनुवाद किया। उसे छापने के जुर्म में अंग्रेज पादरी लौंग साहब को भी जेल की सजा भुगतना पड़ी। पर 'नीलदर्पण' के अनुवादक माइकेल मधुसूदन दत्त पर इस सजा का उल्टा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अंग्रेजी को छोड़कर बगला में नाटक और काव्य लिखना शुरू किया। माइकेल जैसी अनोखी प्रतिभा दुनिया मे कम नजर आती है। नाटक और प्रहसन लिखने के अलावा उन्होंने एक महाकाव्य भी लिखा। उस महाकाव्य का नाम 'मेघनाद वध' है। मेघनाद वध एक अनोखी रचना है। राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसा आदि की कथाएँ लेकर ऊँचे ढंग का बहुतेरा साहित्य

लिखा गया है। पर जिन चरित्रों को लोग आम तौर से वुरा कहते हैं, उनके ऊपर साहित्य लिखना आसान काम नहीं है। माइकेल ने रावण के पुत्र मेघनाद और लक्ष्मण की लड़ाई की कथा लेकर 'मेघनाद वध' लिखा, और इतना अच्छा लिखा कि पढ़नेवाला वरवस मेघनाद की वीरता और उसके गुणों पर मुग्ध हो जाता है। मेघनाद के सामने लक्ष्मण का चरित्र फीका पड जाता है। हिन्दी मे उसका अनुवाद कवि मैथिलीशरण गुप्त ने किया है। माइकेल का 'वीरांगना काव्य' और 'व्रजांगना काव्य' भी वेजोड़ है। वंगला मे सानेट या चौदहपदी कविता भी पहले पहल माइकेल ने ही लिखी। कुल छे वर्ष के भीतर माइकेल मधुसूदन दत्त ने वंगला कविता का पूरा रूप वदल दिया।

उनके वाद कई और वड़े वड़े कवि पैदा हुए। उनमे तीन खास हैं—नवीन चन्द्र सेन, हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय और विहारीलाल चक्रवर्ती। लगभग उसी समय, यानी सन् १८६५ ई० मे, एक और महान् लेखक वंगला साहित्य के मैदान मे उतरे। वे वंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय थे। वंकिम चन्द्र ने ही अपने 'आनन्दमठ' नाम के उपन्यास मे "वंदे मातरम्" गीत लिखा है। उनका पहला उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' सन् १८६५ ई० में प्रकाशित हुआ था। उस समय वंकिम केवल २७ वर्ष के थे। सन् १८९४ ई०के मार्च के महीने में ५६ साल की उमर मे वंकिम वावू का देहान्त हो गया। उन्होंने ही सन्१८७२ई० मे वंगदर्शन नाम के पत्र की स्थापना की थी और अंतिम साँस तक उसका सम्पादन भी किया। उस पत्रिका ने वंगला में लेखकों का एक नया दल पैदा किया। वंकिम वावू ने 'विषवृक्ष', 'कपाल कुंडला', आदि लगभग १५ छोटे वड़े उपन्यास और

वंकिम चन्द्र चट्टोपा

दूसरे विषयों की लगभग १५ ही और पुस्तकें लिखीं। दूसरे विषयों की पुस्तकों में साहित्य, धर्म और दर्शन आदि पर उन्होंने अपने विचार प्रकट किए हैं। वे देशभक्त, अत्यन्त बुद्धिमान और प्रबल चरित्रवाले महापुरुष थे। वे साहित्य में नए विचार देनेवाले ही नहीं थे, बल्कि गलत विचारों को रोकनेवाले भी थे। इसीलिए उनको रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'सव्यसाची बंकिम' कहा है। सव्यसाची का अर्थ है, वह वीर जो दाएँ और बाएँ दोनों हाथ से एक समान लड़ सके और जिसके दोनों हाथ के निशाने सच्चे हों। बंकिम बाबू भारत के पहले उपन्यासकार थे। लेकिन अगर वे उपन्यास न लिखकर केवल अपने निबंध ही लिखते, तो भी बंकिम 'बंकिम' ही रहते।

बंकिम चन्द्र की मृत्यु से पहले ही रवीन्द्रनाथ साहित्य के मैदान में उतर चुके थे। उनका जन्म सन् १८६१ ई० में जोड़ासाँको (कलकत्ता) के प्रसिद्ध ठाकुर वंश में हुआ था। उनके पिता और सभी बड़े भाई साहित्यकार थे। बड़ी बहन स्वर्णकुमारी देवी भी साधारण लेखिका नहीं थीं। सच पूछिए तो उस समय पूरे बंगला साहित्य में एक ज्वार सा आया हुआ था। उसी ज्वार के कारण सन् १९०५ ई० में 'स्वदेशी आंदोलन' की जो बाढ़ आई तो बंगाल के पूरे जीवन पर छा गई।

रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा अनन्त थी। उनकी रचनाएँ रंग बिरंगी हैं। उनकी

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

लिखी हर चीज़ गठी हुई, सुन्दर और सरस है। मानवता की महिमा मे उनका अटल विश्वास था। कविता और कहानी लिखने में उनकी गिनती संसार के चोटी के लेखको में की जाती है। वे इतनी कविताएँ, इतने गाने, इतनी कहानियाँ, इतने नाटक, इतने उपन्यास, गीति-नाट्य, नृत्य-नाट्य, पत्र, यात्रा-पुस्तके, रस-प्रवन्ध, साहित्यिक समालोचना, सामाजिक लेख, धार्मिक निवंध आदि लिख गए हैं कि उनके पूरे साहित्य को कोई आसानी से पढ़ भी नहीं सकता।

रवीन्द्रनाथ के समय में और भी कई अच्छे कवि थे। उनमे अक्षयकुमार वड़ाल, देवेन्द्रनाथ सेन और श्रीमती कामिनीराय प्रमुख थी। पर रवीन्द्र की प्रतिभा सूर्य की तरह इतनी अधिक चमकदार थी कि उनके सामने दूसरे फीके पड़ गए। रवीन्द्रनाथ की देन से वंगला साहित्य मानो दो सौ साल आगे वढ़ गया। इतना ही नहीं उनके उदार विचारों और मानव प्रेम ने संसार के सव देशों का मन मोह लिया।

रवीन्द्रनाथ के जीवन काल में ही शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय का नाम चमक चुका था। उनका जन्म सन् १८७८ ई० में और मृत्यु सन् १९३८ ई० में हुई। वे वंगाल के सवसे प्रिय उपन्यासकार हैं। 'श्रीकान्त', 'चरित्रहीन', 'देवदास', आदि उनकी ही कृतियाँ हैं। वे भी आज़ादी के पुजारी थे। 'पथेरदावी' या 'पथ के दावेदार' उन्हीं का लिखा हुआ उपन्यास है। समाज के दलित पीड़ित नर नारी के लिए उनके मन मे अथाह जगह थी। उन्होंने अपने उपन्यासों मे आनेवाले

शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय

लोगों के ऐसे चित्र खींचे हैं कि वे पढ़नेवालों के मन में अमर रह जाते हैं।

रवीन्द्रनाथ और शरत् चन्द्र के समय में और भी कई महान् स्तर के लेखक बंगला साहित्य में पैदा हुए। विशेष रूप से रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी, विपिन चन्द्र पाल, हरप्रसाद शास्त्री जैसे निबंध लिखनेवाले, प्रभातकुमार मुखोपाध्याय जैसे कहानी लेखक, और यतीन्द्र मोहन बागची, मोहितलाल मजुमदार, यतीन्द्रनाथ सेन, सत्येन्द्रनाथ दत्त और काजी नजरुल इस्लाम जैसे शक्तिशाली कवि किसी भी साहित्य में सदा याद किए जाने योग्य हैं। आजकल के जीवित लेखकों में भी चमत्कारी गद्य लेखकों, अच्छे उपन्यासकारों और विचार से भरे हुए निबंध लेखकों की कमी नहीं है। हर साल नए नए लेखक अपनी विचारों से भरी रचनाओं की देन लेकर मैदान में आ रहे हैं।

बंगला साहित्य की मूल भावना का निचोड़ नीचे की दो पंक्तियों में पाया जाता है, जिनके भाव को बंगला साहित्य में बार बार और तरह तरह से दुहराया गया है। वे दो पंक्तियाँ हैं —

"स्वाधीनता हीनताय के बाँचिते चाय रे, के बाँचिते चाय ?

(आज़ादी खो जाने पर कौन ज़िंदा रहना चाहता है रे, कौन ?)

और

"सबार उपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाइ।"

(सबसे बड़ा सत्य मनुष्य है। उससे बड़ा सत्य और कुछ नहीं।)

—o—

(२)

★ असमी साहित्य

पंडित हर प्रसाद शास्त्री बंगाल के एक प्रसिद्ध विद्वान थे। कुछ दिन हुए, उन्हे नेपाल मे बहुत सा पुराना भारतीय साहित्य मिला था। वह सब 'बौद्ध गान उ दोहा' नाम की पुस्तक मे प्रकाशित हुआ है। उस पुराने साहित्य की भाषा को बगला, उड़िया और असमी तीनों भाषाओं के लोग अपनी भाषा का सबसे पुराना नमूना मानते है। पर असमी भाषा के सबसे पुराने रूप की जानकारी उन शिलालेखों से होती है जो हाल की खुदाइयो मे मिले है। असमी भाषा उन भाषाओं मे से है, जिन्हे विद्वान लोग 'हिन्द-युरोपीय' (Indo-European) कहते है। 'हिन्द-युरोपीय' मे सभी भारतीय भाषाओं की गिनती होती है। पर इस बात से इंकार नही किया जा सकता है कि असमी भाषा पर उन भाषाओं का भी बहुत प्रभाव है, जिन्हे मंगोल परिवार की भाषाएँ कहते है। ये भाषाएँ चीन, तिब्बत, कम्बोडिया आदि देशों मे बोली जाती है। असमी भाषा मे बहुत से शब्द मंगोल भाषाओं से आए है। खुद 'असम' शब्द मगोल भाषा का है, जिसका अर्थ है 'वह जो हारा न हो।'

असमी भाषा की जो सबसे पुरानी पुस्तक मिलती है, उसका नाम 'प्रह्लाद चरित' है। वह कविता की पुस्तक है और उसे 'हेम सरस्वती'

नाम के एक कवि ने १३ वीं सदी में लिखा था। हेम सरस्वती ने महाभारत से प्रह्लाद की कथा लेकर इस काव्य की रचना की थी। लगभग इसी समय असम में दो और कवि हुए जिनके नाम हरिहर विप्र और कविरत्न सरस्वती थे। उन्होंने भी महाभारत की कथाओं के आधार पर काव्य रचे। चौदहवीं सदी में एक राजा ने माधव कन्दली नाम के एक कवि से असमी भाषा में वाल्मीकि रामायण का अनुवाद कराया। इसे कन्दली असमी की सबसे महत्वपूर्ण रचना माना जाता है। माधव कन्दली की दूसरी पुस्तक देवजित् है। वह भी कविता में ही है। देवजित् की रचना में संगीत की मधुरता और मुहावरेदार भाषा का अनूठा मेल है। कविता रचने का वह ढंग बिल्कुल नया था। असमी में इस ढंग का चलन वैष्णव आंदोलन के शुरू होने पर देवजित् की रचना के लगभग सौ साल बाद हुआ।

इसी जमाने में दुर्गावर ने रामायण की कथा और मनकर नाम के एक दूसरे कवि ने मनसा देवी की कहानी गीत में लिखी। मनसा सांपों की देवी का नाम है जिसकी कथा असम के घर घर में कही जाती है। पीताम्बर नाम के एक और कवि ने ऊषा और अनिरुद्ध की प्रेम कहानी लिखी। यह असमी भाषा की बहुत लोकप्रिय गीत-कथा है। इस समय के सभी कवियों ने देहाती जीवन की जिन्दा तस्वीरें खींचीं और लोक गीतों की धुन में गीत लिखे।

१५ वीं सदी में शंकर देव (सन् १४४९–१५६८) ने असम में वैष्णव धर्म का प्रचार शुरू किया। शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव वैष्णव आंदोलन के नेता थे। वे सेवक भाव से भगवान को स्वामी मानकर उनकी पूजा करने का उपदेश देते थे। इसलिए सेवक और स्वामी भाव को ही लेकर उन्होंने भक्ति की कविताएं लिखीं। भाषा और साहित्य

में उस समय बहुत निखार आया। माधव कंदली ने वाल्मीकि रामायण का जो अनुवाद किया, उसके दो कांड राजनीतिक हलचलों में ग़ायब हो गए थे, उन्हें शंकरदेव और माधवदेव ने फिर से लिखा।

शंकरदेव ने छे नाटकों के अलावा भक्ति गीत भी लिखे, जिनका आज तक बहुत मान है। उनके नाटकों में गद्य और पद्य दोनों हैं। गद्य लिखने का उनका एक खास ढंग था, जिसे 'ब्रजबुली' कहा जाता है। उस ढंग के गद्य का आरंभ उनकी रचनाओं से ही माना जाता है।

शंकरदेव ने भागवत की कथा लेकर रुक्मिणी-हरण काव्य लिखा। माधवदेव ने भी कई नाटक और गीत लिखे। उनके गीतों में पक्के गाने की राग रागिनियाँ हैं। उस जमाने में और भी बहुत से लेखक हुए। उनमें से राम सरस्वती ने तो क़रीब क़रीब पूरे महाभारत का अनुवाद कर डाला। उन्होंने महाभारत की कथाओं को लेकर प्रेम की कविताएँ भी लिखीं। भट्टदेव भी उस समय के एक लेखक थे। उन्होंने भागवत और गीता का असमी गद्य में अनुवाद किया। उनके गद्य लिखने के ढंग पर संस्कृत का बहुत असर है। एक दूसरे कवि श्रीधर कंदली ने कनखोव नाम का एक काव्य लिखा, जिसमें कृष्ण जी के बाल रूप का वर्णन है। वह काव्य इतना लोकप्रिय हुआ कि घर घर में माताएँ उसके गीत लोरियों की तरह गाने लगीं। श्रीधर कंदली ने कृष्ण की बाललीला का वैसा ही मधुर वर्णन किया है, जैसा हिन्दी के महाकवि सूरदास ने किया है।

१६वीं सदी के अंत में वैष्णव आंदोलन के साथ साथ वैष्णव कवियों का भी ज़ोर खत्म होने लगा। उस आखिरी दौर में शंकरदेव और माधव देव की जीवनियाँ कविता में लिखी गईं। वैष्णव कवियों ने आम तौर से दो

पक्तियों की कविताएँ लिखी, जिन्हे पद या पायर कहत है। पद या पायर लगभग हिन्दी के दोहे की तरह की रचनाएँ होती है।

१७वी सदी मे अम्होस लोगो ने असमी मे गद्य लिखने का एक नया ढग शुरू किया। अम्होस वे लोग थे जिन्होंने थाईलैंड से आकर १२वीं सदी में असम पर हमले किए, और वाद मे वहीं वस गए। उनकी चलाई गद्य शैली को वुरंजी कहा जाता है। गद्य लिखने का वह ढंग वहुत सरल, चुस्त और मुहावरेदार था। वाद मे नाटक और उपन्यास लिखनेवालो ने वुरंजी शैली के गद्य का वहुत सहारा लिया। इस युग मे हस्ति-विद्यार्णव नाम की एक खास पुस्तक लिखी गई, जिसमे हाथियो के रोगो के इलाज वताए गए है। उस पुस्तक मे चित्र भी दिए गए है। उसी समय श्रीहस्त-मुक्तावली नाम की एक दूसरी किताव लिखी गई, जिसमे नृत्य कला का वर्णन है।

१८ वी सदी के अत मे वर्मा की ओर से हमले शुरू हुए, जिससे असम मे उथल पुथल मच गई। उस हलचल मे साहित्य का विकास रुक गया। उसके वाद असम मे अग्रेजो का राज कायम होने के दस साल वाद ही सन् १८३६ से वहाँ की शिक्षा, अदालत और राजकाज की भाषा वगला हो गई। इस कारण आगे भी ५० वरस से अधिक समय तक असमी साहित्य का विकास रुका रहा। पर उसी जमाने मे अग्रेज और अमरीकी पादरियो ने असमी भाषा मे धर्म प्रचार शुरू किया, जिससे उस भाषा की उन्नति मे मदद मिली। श्रीरामपुर के अग्रेज मिशनरियो ने सन् १८१९ मे वाइविल और ईसाई धर्म की दूसरी पुस्तके असमी मे छापीं। अमरीकी पादरियो ने भी सन् १८४६ मे 'अरुणोदय सवाद पत्र' नाम का अखवार असमी मे निकाला। उन्होने सन् १८७७ मे एक असमी उपन्यास भी छापा।

हेमचन्द्र वरुआ (सन् १८३५-१८९६) और गणाभिराम वरुआ (सन् १८३७-१८९५) १९वी सदी मे असमी के सबसे बड़े लेखक थे। आज के असमी साहित्य का जन्मदाता भी उनको ही माना जाता है। हेमचन्द्र वरुआ ने कानीयर कीर्त्तन नामक आधुनिक असमी साहित्य का पहला नाटक लिखा, जिसमे अफीम खाने की निदा की गई थी। उन्होने ही आधुनिक असमी साहित्य का पहला उपन्यास भी लिखा, जिसका नाम था, वाहिरे रगचग भीतरे कोवाभातुरी। उस उपन्यास मे पुरोहितो के ढकोसलो की पोल खोली गई थी। हेमचन्द्र ने असमी भाषा का पहला वैज्ञानिक शब्दकोश भी तैयार किया और वे ही अपनी जीवनी लिखनेवाले पहले असमी लेखक भी थे। गुणाभिराम वरुआ ने सामाजिक विषयो पर कई नाटक लिखे। उनकी लिखी हुई एक जीवनी और असम का एक इतिहास भी है।

बीसवी सदी के शुरू मे असमी साहित्य मे एक नई धारा पैदा हुई, जिसके अगुआ लक्ष्मीनाथ वेजवरुआ (सन् १८६८-१९३८), चन्द्रकुमार अग्रवाल (सन् १८६७-१९३७) और हेमचन्द्र गोस्वामी (सन् १८७९-१९२८) थे। वे तीनो कलकत्ते मे ऊँची शिक्षा पा चुके थे। विद्यार्थी जीवन मे ही (सन् १८८६ मे) उन लोगों ने कलकत्ते से जोनाकी' नाम की एक असमी पत्रिका निकाली, जिस पर अंग्रेजी का काफी असर था। उस पत्रिका मे अंग्रेजी के प्रेम और प्रकृति के गीतो जैसे असमी गीत, देश प्रेम की कविताएँ और सामयिक लेख छपे। 'जोनाकी' निकालनेवालो मे वेजवरुआ सबसे अधिक योग्य थे। उनकी रचनाओ मे शंकरदेव और माधवदेव की जीवनी, कुछ छोटी कहानियाँ, कुछ ऐतिहासिक नाटक और कुछ सुन्दर गीत बहुत मशहूर है। उनके गद्य मे मीठी चुटकी और असमी के मुहावरो का चुस्त प्रयोग होता था। चन्द्रकुमार

अग्रवाल रहस्यवादी कविताएँ लिखते थे। ऐसी कविताओं में कवि आम तौर से ईश्वर या ब्रह्म से सबंध रखनेवाली भावनाएँ प्रतीकों में प्रकट करता है। अग्रवाल ने 'असमिया' नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला।

उस युग के सब से बड़े उपन्यासकार रजनीकांत बारदोलोई थे, जो सन् १८९५ में ही मिरीजियारी नाम का उपन्यास लिखकर काफी मशहूर हो गए थे। मिरीजियारी में दो आदिवासियों की दर्द भरी प्रेम कथा है। बाद में उन्होंने 'मानमती' नाम का एक और उपन्यास लिखा। उसमें बर्मा के हमलों के समय के असमी जीवन का सुन्दर वर्णन है। उनका एक मशहूर उपन्यास दाँडुआ द्रोह है, जिसमें पश्चिमी असम के एक जन आंदोलन का चित्र खींचा गया है। श्री हेमचन्द्र गोस्वामी अंग्रेजी के सानेट के ढंग पर चौदह पंक्तियों के गीत लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं। वे बाद में अच्छे गद्य लेखकों में भी गिने जाने लगे। उन्होंने पुराने इतिहास के बारे में बहुत लिखा है। बेजबरुआ के समय में ही पद्मनाथ गोहाईन बरुआ नाम के एक और लेखक हुए थे। उनकी गाँव-बूढ़ा (गाँव के बड़े बूढ़े) नाम की रचना असमी भाषा में बहुत प्रसिद्ध है।

रजनीकान्त बारदोलोई
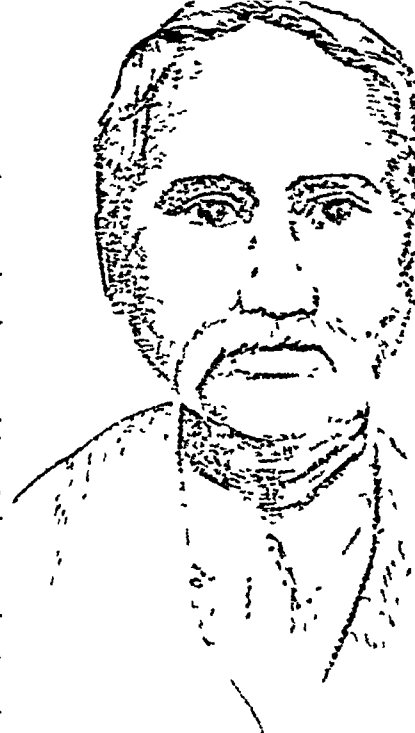
शरत् चन्द्र गोस्वामी

उस समय के दूसरे लेखको मे सत्यनाथ बोरा कम से कम शब्दो मे वड़ी से वड़ी वात कहने लिए प्रसिद्ध है। शरत् चन्द्र गोस्वामी का कहानी लेखकों मे ऊँचा स्थान है। हितेश्वर वरवरुआ ने सुन्दर अतुकान्त कविताएँ लिखने की प्रथा चलाई और नाम कमाया। अंविका गिरि राय चौधरी ने देश भक्ति की अनेक जोशीली कविताएँ रची। उनका गद्य भी वैसा ही जोशीला है। जतीन्द्र नाथ दुवेरा ने फारसी के कवि उमर खैयाम की रुवाइयो का असमी कविता में अनुवाद किया। वह अनुवाद आज भी वड़ा लोकप्रिय है। इसके अलावा उन्होने गद्य काव्य भी लिखे। रघुनाथ चौधरी प्रकृति की सुन्दरता पर कविताएं लिखकर अपना नाम अमर कर गए है। उन्होने केतकी पक्षी पर एक लम्वा गीत लिखा, जो आज भी वहुत लोकप्रिय है।

रघुनाथ चौधरी

सन् १९३० के वाद के दस वरस मे गीत और छोटी कहानियों का साहित्य वहुत आगे वढा। उपन्यास भी लिखे गए, जिनमे समाज के दुख दर्द की कहानी वर्णन की गई। लेकिन रजनीकांत वारदोलोई के उपन्यासों की तरह किसी और के उपन्यास लोकप्रिय नही हो सके। छोटी कहानियो का चलन वढ़ जाने से उपन्यासों की लोकप्रियता मे यो भी कमी आ गई थी, क्योंकि उपन्यास लम्वे होते थे, उनके पढ़ने मे अधिक समय लगता था और छपाई भी महँगी पड़ती थी। कहानियाँ पत्रिकाओ मे सरलता से छप जाती थी। साथ ही उस समय की कहानियाँ उपन्यासों से अच्छी भी थी, जो हर तरह की

और हर विषय की होती थी। माही बोरा और हाली राम डेका की कहानियाँ पढ़कर हँसते हँसते पेट मे बल पड़ जाते है। हाली राम ने गद्य भी अच्छा लिखा है। लक्ष्मीधर शर्मा, रमादास और कृष्ण भूयाँ की कहानियो मे नारी के दुख दर्द का सच्चा चित्र मिलता है।

नाटको मे अतुलचन्द्र हजारिका के धार्मिक नाटक काफी लोकप्रिय है। समाज, देशभक्ति और इतिहास के विषयो पर भी नाटक लिखे गए। ज्योतिप्रसाद अग्रवाल उस समय के सबसे अच्छे नाटककार थे, जिनके शोणित-कुमारी और कारेनगर-लिगिरि नामक नाटक बहुत अच्छे है। शोणित-कुमारी धार्मिक नाटक है और कारेनगर-लिगिरि एक प्रेम कथा के आधार पर लिखा गया है। वे नाटक पढने मे ही नही, खेलने मे भी अच्छे साबित हुए है।

दूसरे महायुद्ध के समय असमी साहित्य की गति मे रुकावट आ गई। वह देश के आर्थिक सकट का जमाना था, जिसका प्रभाव असम पर भी पड़ा। उस आर्थिक सकट के कारण किताबे छापना और पत्रिकाएँ निकालना कठिन हो गया, और लेखको के दिन कष्ट मे बीतने लगे। इसलिए साहित्य मे एक उदासी सी छा गई। उस सकट की घडी मे नए विचारो के कुछ युवको ने रास्ता दिखाया। उन्होने सन् १९४८ मे 'जयन्ती' नाम की एक पत्रिका निकाली। उन युवक लेखको के नेता कवि रघुनाथ चौधरी थे। उस पत्रिका मे प्रेम और भावुकता की कविताओ को "युग के लिए बेकार" कहा गया। उस पत्रिका ने समाज की बुराइयो और जरूरतो को लेकर साहित्य रचने पर जोर दिया।

असमी साहित्य मे एक नई धारा पैदा हुई। उस नई धारा के कवियो मे हेमकान्त बरुआ और अब्दुल मलिक ने काफी अच्छी कविताएँ

लिखी। अब्दुल मलिक की कविताओं मे पूँजीपतियों के अत्याचार और पीड़ितों के दुख दर्द की कहानी हैं। उन्होंने जनता को क्रांति करने के लिए उभारा। उनकी कविता मे लोच नहीं है, पर जोश और विचारों की तेजी है।

उस नई धारा का असर कुछ ऐसा फैला कि पुराने कवियों ने या तो लिखना ही बंद कर दिया, या लिखा तो ऐसा साहित्य लिखा जिसका जनता के जीवन से कोई सम्बन्ध ही न था। पुराने कवि इंद्रेश्वर ठाकुर ने महाभारत की एक कथा के आधार पर रण-ज्योति नाम का एक अच्छा काव्य लिखा। पर मैदान आम तौर से नए कवियों के ही हाथ रहा।

पिछली बड़ी लड़ाई के बाद फिर एक बार अच्छे उपन्यासों का युग शुरु हुआ। बीना बरुआ ने जीवनेर-बाटत नाम के उपन्यास मे गाँव की एक लड़की के कष्टों की दर्दनाक कहानी लिखी, जिसका असमी पढनेवालो पर गहरा असर पड़ा। मुहम्मद पियार का हेरोवा-स्वर्ग, राधिका मोहन गोस्वामी का चाक-नइया, योगेशदास का दावर आरु नाई अच्छे उपन्यासो मे है। उस उपन्यास मे युद्ध के कारण जनता पर आई हुई विपत्तियो का मार्मिक वर्णन है। दीनानाथ शर्मा के नदाई नाम के उपन्यास मे एक किसान के जीवन का वैसा ही हृदय हिला देनेवाला वर्णन है। उस समय आदिवासियों के जीवन के बारे मे भी कई अच्छे उपन्यास लिखे गए।

छोटी कहानियाँ लिखने मे भी अब्दुल मलिक का बड़ा नाम है। कवि के रूप मे तो वे महायुद्ध के पहले ही धाक जमा चुके थे। एक दूसरे अच्छे कहानी लेखक बीरेन्द्र भट्टाचार्य हुए है। मलिक और

असम के एक गाँव का चित्र

भट्टाचार्य दोनों की कहानियों में मनुष्य मात्र के साथ भाईचारे की भावना है। भवेन सेकिया की कहानियों में हँसी और मनोरंजन के पुट हैं। पपिया तारा ने अपनी कहानियों द्वारा समाज की कुरीतियों पर चोट की है। इसी पीढ़ी के कहानी लिखनेवालों ने रिश्वतखोर दारोगा और स्कूलों के लालची इन्स्पेक्टर को खास तौर से अपना निशाना बनाया है।

साहित्य में नए विचार फैलने से नाटकों में भी नई जान आ गई। समाज की सच्ची हालतों को लेकर नाटक लिखे जाने लगे। शहरों और कस्बों की जनता भी धार्मिक नाटक के बजाय सामाजिक नाटक देखना अधिक पसंद करने लगी। इस कारण सामाजिक नाटकों की रचना को और बल मिला, और कई बहुत अच्छे सामाजिक नाटक लिखे गए। उनमें प्रवीण फूकन और शारदा बारदोलोई के नाटक सबसे अच्छे हैं। कुमुद बरुआ ने भी कई अच्छे नाटक लिखे हैं। सामाजिक नाटकों के इस दौर में कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे गए, जिनमें पियाली फूकन और मणिराम दीवान के नाटकों को जनता ने सबसे ज्यादा पसंद किया। उनके नाटक १९ वीं सदी के वीरों की जीवन कथाओं के आधार पर लिखे गए।

सन् १९४२ के आंदोलन और महायुद्ध से नाटकों को और नए विषय मिले। ज्योति प्रसाद अग्रवाल के लभिता नामक नाटक में किसी असमी गाँव की एक ऐसी लड़की की कहानी है जिसका पिता जापानी बमबारी का शिकार हो गया था। लड़की इसके बाद पुलिस के अत्याचार का मुकाबला करती है, और अंत में आजाद हिन्द फौज में भर्ती हो जाती है। नाटक का अंत बहुत दर्दनाक है और इसमें चरित्रों का बहुत अच्छा निखार है।

इस दौर में आलोचनाएँ भी बहुत लिखी गई हैं। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ

ने मध्ययुग के साहित्य पर अच्छी आलोचना लिखी। कृष्णकान्त हंडीकी, डा० वाणीकान्त काकती और दिम्बेश्वर नियोग की आलोचनाओं ने नए लेखकों को रास्ता दिखाया। सूर्य कुमार भुयाँ और वेणुधर शर्मा ने इतिहास के विषयों पर निबंध लिखे। वेणुधर शर्मा के गद्य की भाषा बड़ी मुहावरेदार है। उन्होंने मणिराम दीवान की एक जीवनी लिखी है, जो ऊँचे दर्जे की है।

इधर समाचार पत्रों ने आसान गद्य की एक नई धारा चलाई है। कुछ ऐसे निबंध भी लिखे गए हैं जिनमें व्याकरण के प्रश्न उठाए गए हैं। एक दो उपन्यास मनोविज्ञान का सहारा लेकर भी लिखे गए हैं। उनमें आदमी के मन की भीतरी खींचतान के चित्र हैं और मन के भेद को समझने की कोशिश की गई है। शिक्षा के प्रचार के साथ साथ असमी साहित्य आज सभी दिशाओं में तेज़ी से विकास कर रहा है।

विश्व-साहित्य

उड़िया साहित्य

उड़ीसा और उसके आस पास की भाषा को उड़िया भाषा कहते हैं। पुरानी उड़िया पर प्राकृत भाषा का बहुत प्रभाव था। जब वह प्रभाव धीरे धीरे समाप्त हो गया तब उड़िया एक स्वतंत्र भाषा बन गई। उड़िया

कोणार्क का मंदिर

साहित्य के विकास को हम मोटे तौर पर तीन युगो में बांट सकते हैं—प्राचीन युग, मध्य युग और वर्तमान युग।
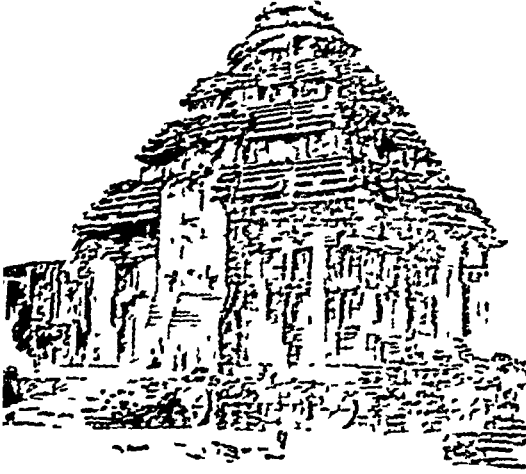
सन् १४०० से सन् १६५० तक का समय प्राचीन युग माना जाता है। वह उडिया जाति के इतिहास में बड़े उतार चढाव का समय था। भुवनेश्वर, पुरी और कोणार्क के शानदार मंदिर बन चुके थे। शकराचार्य, रामानुज और मध्वाचार्य जैसे दार्शनिक और सत वहाँ घूम घूमकर ज्ञान का प्रचार कर चुके थे। राजा लोग विद्वानो और कवियो के केवल सरपरस्त ही नही थे, उनका अपना अध्ययन और ज्ञान भी बहुत आगे बढ चुका था। उस जमाने मे लोग ज्ञान और विद्या प्राप्त करने के लिये सस्कृत साहित्य पढते थे, और राज दरबारो के पडित लोग संस्कृत का दर्जा ऊँचा बनाए रखने की कोशिश मे लगे रहते थे।

भुवनेश्वर का मंदिर

पर सस्कृत जनता की भाषा नही थी। उस भाषा मे आम लोगों के सुख, दुख और अनुभव की बातो का बयान नही होता था। लेकिन आम लोगो की बोली साहित्य की भाषा तब तक नही बनती जब तक समाज मे कोई बड़ी उथलपुथल नही होती, कोई बडा आदोलन नहीं होता। उथलपुथल
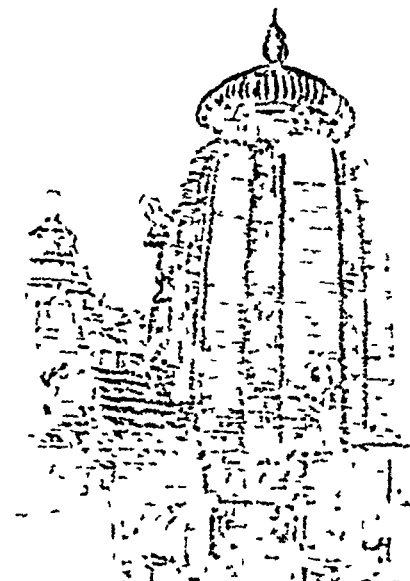
और आंदोलनो के कारण जव लोगों का सामूहिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है, तभी उनकी भावनाओं मे उभार आता है और वे भावनाएँ चारों ओर गूँज उठती है। जाहिर है कि आम लोगों की भावनाओ की गूँज आम लोगों की भापा मे ही प्रगट हो सकती है।

इस प्रकार उड़िया वोली को भी साहित्य की भापा वनने के लिए किसी वड़ी उथल पुथल का इंतज़ार था। वह घड़ी आ भी गई। १५ वीं सदी के शुरु मे उड़ीसा के राजा कपिलेन्द्रदेव को अपने देश की रक्षा के लिए कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी। उड़ीसा मे गंगवश का राज समाप्त होने पर वंगाल के सुलतान, वहमनी सुलतान और विजयनगर के राजा ने उड़ीसा पर अलग अलग कई हमले किए। उन्हीं हमलो से उडीसा की रक्षा के लिए कपिलेन्द्रदेव (सन् १४३६-६६ ई०) ने युद्ध किए और उन पर विजय पाई। उन लड़ाइयों मे उड़ीसा की जनता वहुत वड़ी संख्या मे शामिल हुई।

उस उथल पुथल के जीवन में वोलचाल की भाषा को अवसर मिला और उस भापा मे जनता के सुख दुख की भावनाएँ प्रगट होने लगीं। उसी समय उड़िया भापा की नीव पड़ी और कपिलेन्द्रदेव की शानदार लड़ाइयों के जोशीले वर्णन उड़िया भापा मे लिखे गए।

उसके वाद सन् १५१० मे श्री चैतन्य देव वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए उड़ीसा आए। उस समय उड़ीसा मे राजा प्रताप रुद्र देव राज करते थे। उन्होंने वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया और वे अपना सारा समय पूजा पाठ और भक्ति मे विताने लगे। इसका फल यह हुआ कि शासन कमज़ोर हो गया, पर उड़िया साहित्य की वहुत उन्नति हुई। श्री चैतन्य के पाँच उड़िया शिष्यों ने अपनी भापा मे अनेक काव्य और पुराण रचे। वे पाँचों

शिष्य 'पंच सखा' या पाँच मित्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके नाम हैं — बलरामदास, जगन्नाथ दास, अच्युतानन्द दास, यशवंत दास और अनन्त दास।

उस युग के एक और बड़े कवि सरलदास थे। उस युग की रचनाओं में उनके महाभारत का सबसे अधिक महत्त्व है। वह उड़िया भाषा का सबसे पुराना और सबसे बढ़िया महाकाव्य है, जो १५ वीं सदी के शुरू में लिखा गया। सरलदास का उड़िया भाषा में वही स्थान है जो अंग्रेजी साहित्य में चासर का है। उनका महाभारत संस्कृत के महाभारत का केवल अनुवाद ही नहीं है, उसमें बड़ी चतुराई से १४ वीं सदी के उड़ीसा और वहाँ के निवासियों की तस्वीर भी खींची गई है। उसमें बड़ी सचाई के साथ उड़िया लोगों के रहन सहन, दुख सुख और आचार विचार का वर्णन किया गया है।

उस युग के दूसरे महाकाव्य रामायण का भी बहुत ऊँचा स्थान है। उस लोकप्रिय महाकाव्य के लेखक बलरामदास थे। वे पंचसखाओं में सबसे बड़े थे। उड़िया रामायण वाल्मीकि रामायण का अनुवाद नहीं है। वह बलरामदास की मौलिक रचना है। ठीक वैसे ही जैसे हिन्दी की रामायण गोस्वामी तुलसी दास का मौलिक महाकाव्य है। उड़िया रामायण १६ वीं सदी के शुरू में लिखी गई। वह जिस छंद में लिखी गई है उसे दंडी छंद कहते हैं। इसीलिए उसे आम तौर से दंडी रामायण भी कहते हैं।

वाल्मीकि रामायण और दंडी रामायण में बहुत बड़ा अन्तर है। बलराम दास ने अपनी रामायण अधिकतर पुराणों की कथाओं के आधार पर लिखी है। इसके अलावा उन्होंने उसमें उड़िया रंग भी खूब भरा है। जैसे, वाल्मीकि ने जहाँ कैलाश पर्वत का वर्णन किया है वहाँ बलरामदास ने उड़ीसा के 'कपिलास' पहाड़ का वर्णन किया है। उन्होंने एक जगह यह भी

लिखा है कि रावण उड़ीसा के 'विराज क्षेत्र' नामक स्थान पर तपस्या करने के लिए आया था। उड़िया भाषा मे वाल्मीकि रामायण के लगभग आधे दर्जन अनुवाद मौजूद है, पर उड़ीसा की आम जनता मे दंडी रामायण का जो मान है वह और किसी का नही।

पंचसखाओं मे सबसे प्रसिद्ध जगन्नाथदास थे। उन्होंने संस्कृत के श्रीमद्भागवत का उड़िया मे अनुवाद किया है। पर वह शब्दानुवाद नही है। वह मूल भागवत के भावों का अनुवाद है। यही कारण है कि जगन्नाथदास के भागवत मे कथा की तरतीव बहुत कुछ अपनी है। उड़िया लोगों के विचारों और विश्वासों पर इस भागवत का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। आज भी घर घर मे उसका पाठ आदर के साथ किया जाता है। उसकी भाषा में सादगी और मोहकता है, छंदों मे संगीत की रवानी है और वर्णन मे तस्वीर खींच देने की शक्ति है। इन विशेषताओं के कारण ही जगन्नाथदास का भागवत उड़िया जनता का सबसे प्रिय ग्रंथ है।

जगन्नाथ दास

उन दिनों उड़िया भाषा मे धार्मिक महाकाव्यों के अलावा और भी कई तरह की रचनाएँ हुईं। उनमे से कुछ खास ढंग की कविताएँ बहुत लोकप्रिय हुई। जैसे, कोइली, चौतीसा, भजन, स्तुति, जणाण आदि। कोइली उन कविताओं

को कहते है जिनके हर पद के टेक मे वोयिन्त को सुनाकर अपनी वात कही जाती है। चौतीसा मे चौंतीस पद होते है और हर पद की पहली पंक्ति क्रमश, एक एक व्यंजन वर्ण से शुरु होती है। भजन, स्तुति और जणाण प्रार्थना के अलग अलग रूप है।

वह युग भक्ति का युग था और भक्ति के साहित्य की बाढ सी आ गई थी। किन्तु भक्ति की इस बाढ मे भी एक अच्छा प्रेम काव्य लिखा गया जिसका नाम हारावती है। उसमे एक हलवाई की प्रेम कहानी का सुन्दर वर्णन किया गया है। उस युग मे मुख्य रूप से पद्य का विकास हुआ। पर इसका यह अर्थ नही है कि गद्य मे कुछ लिखा ही नही गया। गद्य मे भी साहित्य लिखा गया, पर उसका विकास उतनी तेजी से नही हुआ जितनी तेजी से पद्य साहित्य का हुआ। सुन्दर गद्य मे लिखी हुई उस युग की पुस्तको मे मादलापाजि, ब्रह्माण्ड भूगोल के कुछ भाग, तुलामिणा और रुद्र-सुधानिधि मुख्य है।

मादलापाजि मे जगन्नाथ जी के मंदिर और उडीसा के राजाओ के विवरण लिखे गए है। ब्रह्माण्ड भूगोल मे कृष्ण और अर्जुन के संवाद के रूप मे कवि ने बताया है कि योग और भक्ति मे कोई भेद नही है। तुलामिणा मे शिव और पार्वती की बातचीत द्वारा यह समझाया गया है कि संसार कैसे बना और धर्म क्या है। रुद्र सुधानिधि गद्य मे है। पर उस गद्य मे पद्य की सी लय है। उसमे योग साधना समझाकर शिव पार्वती की महिमा गाई गई है।

सन् १६५० और १८५० के बीच का समय उडिया साहित्य का मध्य युग माना जाता है। उस युग मे भक्ति और धर्म की कविताओ के बदले प्रेम और शृङ्गार की कविताएँ अधिक लिखी गई।

उपेन्द्र भंज उस युग के सबसे बडे कवि थे। इसलिए अक्सर उस युग को भंज-युग भी कहा जाता है। १५६८ ई० मे उडीसा पर मुसलमान बादशाहों का अधिकार हो गया। पहले जो सरदार सामन्त लोग उडिया राज की रक्षा के लिए युद्ध करने मे लगे रहते थे, वे अब शांतिपूर्ण जीवन बिताने लगे। धीरे धीरे वे साहित्य और कला मे दिलचस्पी लेने लगे और उन्होंने उड़िया साहित्य में वही सुन्दरता पैदा करने की कोशिश की जो संस्कृत साहित्य मे है।

उपेन्द्र भंज

उस युग के कवियों का मुख्य उद्देश्य शब्दों के प्रयोग मे चमत्कार पैदा करना था। उपेन्द्र भंज के अलावा उस युग के दूसरे बड़े कवि दीनकृष्ण दास, अभिमन्यु, सामंत-सिहार, ब्रजनाथ बड़जेना, कवि-सूर्य बलदेव रथ, यदुमणि

सन् १८५० के बाद का समय, उड़िया साहित्य का वर्तमान युग कहलाता है। तव तक उड़ीसा पर अंग्रेजों का अधिकार जम चुका था। अंग्रेजी हुकूमत मे ईसाई पादरियो ने उड़ीसा की जनता की शिक्षा के लिए वहुत काम किया। अंग्रेजी स्कूल कालिज कायम हुए और लोगो का युरोप के साहित्य और संस्कृति से परिचय हुआ। फल यह हुआ कि नई पीढी के पढे लिखे लोग उड़िया और अंग्रेजी साहित्य की अच्छी अच्छी वातो को लेकर उड़िया साहित्य को एक नया रूप देने लगे। अंग्रेजी का जादू कुछ ऐसा चल गया कि नई पीढी के लिए संस्कृत साहित्य भूली विसरी वात हो गई। पर साथ ही उडिया लेखको पर वगला साहित्य के शानदार विकास का असर पडा। उनमे साहित्य की नई परख पैदा हुई। उन्होने नए नए ढंग के गीत, लेख आदि लिखे। देशों के दुखी और पीड़ित लोगों के साथ भी उन्होने सहानुभूति प्रगट की। यही नही दूसरे देशो मे जाकर भारत के लोगो ने वहाँ के लोगो के दुख दर्द मे हिस्सा वँटाया और लौटकर वहाँ का हाल अपने देश की जनता को सुनाया। इंग्लैंड से पढकर लौटनेवाले भारतीय विद्यार्थी नए नए विचार लेकर आए, क्योंकि वे वहाँ सभी देशों के विद्यार्थियों से मिलते जुलते थे। उन सव भावनाओं, तजरवो और विचारो का उड़िया के साहित्य पर वहुत असर पड़ा। आगे चलकर सन् १९३६ मे उड़ीसा का अलग राज्य वना और सन् १९४३ मे उत्कल विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। फल यह हुआ कि साहित्य मे और भी नई जागृति पैदा हुई। कई अच्छे और नए लेखक, कवि और उपन्यासकार सामने आए।

नए युग के सवसे वड़े कवि राधेनाथ राय (सन् १८४८-१९०८) माने जाते हैं। वे कई भाषाओं के जानकार और वड़ी सूझ वूझ के आदमी थे।

उन्होंने उड़िया के अलावा संस्कृत, यूनानी और अंग्रेजी साहित्य भी अच्छी तरह पढ़ा था। उनके लिखे चिलिका और महायात्रा नामक काव्य उड़िया साहित्य की सबसे अच्छी रचनाओं में गिने जाते हैं। भाव, भाषा और लिखने के ढंग के लिहाज से वे अनूठे काव्य हैं। उस समय के दूसरे बड़े कवि मधुसूदन राव, गंगाधर मेहर, नन्दकिशोर बल, चिन्तामणि महान्ती आदि थे।

२० वीं सदी के शुरू के दस पन्द्रह साल बीतने पर उड़िया साहित्य में कवियों का एक खास दल पैदा हुआ। वे 'सत्यवादी' कवि के नाम से प्रसिद्ध हुए। पुरी के निकट सत्यवादी नाम की जगह है। वहाँ एक आश्रम था जहाँ शिक्षा भी दी जाती थी। यही आश्रम और पाठशाला सत्यवादी कवियों का केंद्र था। गोप बन्धु दास उन कवियों के अगुआ थे। उन कवियों की रचनाओं में आशा का राग है देश के लिए मर मिटने की साध है और अपने आप पर अटल भरोसा रखने की दृढ़ता है।

कटक भी साहित्य का एक केन्द्र था। वहाँ अंग्रेजी और बंगला साहित्य के प्रभाव में कई युवकों ने कविताएँ और नाटक लिखना आरम्भ किया। उनकी रचनाओं की भाषा बड़ी सुन्दर है। उनके आदर्शवाद और प्रेम के गीत अच्छे और ऊँचे दर्जे के हैं।

गद्य साहित्य का आरम्भ १९ वीं सदी के अन्तिम ५० वर्षों में हुआ। उड़िया गद्य लेखकों में फकीर मोहन सेनापति की जोड़ का और कोई लेखक नहीं हुआ। उनकी मामू और छमन अठगुण्ठा नाम की गद्य रचनाओं में उस समय के उड़ीसा की दशा के जीते जागते चित्र मिलते हैं। फकीर मोहन सेनापति ने पिछली सदियों की सच्ची और ऐतिहासिक घटनाओं को

ऊपर बहुत अच्छे
लिखे। फकीर
उपन्यास बहुत अ
हैं। उनमे कहानी
चरित्र का निखा
मन के भावो का
हास्य, वार्तालाप
सजीव और
है। उनके
जीवन के सत्य
के आदर्श दोनों
चलते हैं। फकी
उपन्यास किसी
के उपन्यासो से
है।

फकीर मोहन सेनापति

फकीर मो
ही नहीं आजकल
कहानियों के भी पहले उड़िया लखक है। उडीसा के कहानी
वे सबसे ऊँचे है। एक दूसरे कहानी लेखक गोपीनाथ महथी है,
संतान नामक पुस्तक पर साहित्य अकादमी ने पुरस्कार
उड़िया की कई कहानियों और उपन्यासों का हिन्दी अनु
चुका है।

आधुनिक उड़िया नाटक का आरंभ भी १९ वीं सदी के अन्तिम २५ बरस में हुआ। अंग्रेजी नाटक लेखक शेक्सपियर और संस्कृत नाटककार कालिदास के ढंग पर रामशंकर राय ने कांचि कावेरी और लगभग एक दर्जन दूसरे नाटक लिखे। इन नाटकों में देश के प्राचीन गौरव की याद दिलाते हुए वर्तमान मुसीबतों का चित्र खींचा गया है। लेखक ने समाज के हर वर्ग का हाल लिखा है। रामशंकर के बाद गोदावरीश मिश्र अश्विनी कुमार घोष आदि ने भी अच्छे नाटक लिखे। उन्होंने इतिहास की घटनाओं, समाज की अवस्था, महापुरुषों के जीवन आदि सभी तरह के विषयों पर नाटक लिखे। आजकल कालीचरण पट्टनायक को सबसे बड़ा नाटककार माना जाता है। उनके नाटक सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर हैं, जिनसे उड़िया साहित्य को नया उत्साह मिला है। इस समय उड़िया में और भी अनेक नाटककार हैं। नाटकों के मामले में भी उड़िया साहित्य भारत की शायद किसी और भाषा से पीछे नहीं है।

हाल में उड़िया साहित्य में एक और नई धारा आई है। नए विचारों और खासकर समाजवादी विचारों के प्रभाव से नई रचनाएं की जा रही हैं। इस नए साहित्य को प्रगतिशील साहित्य कहते हैं। इस प्रकार साहित्य में देश विदेश के सभी तरह के विषयों को लेकर समाज के सुख, दुख, भय, आशा और विश्वास के जीते जागते चित्र खींचे जा रहे हैं। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध सभी तरह की रचनाओं में इस धारा का व्यापक प्रभाव है। उड़िया साहित्य में काफी काम हो रहा है और वह तेजी से उन्नति कर रहा है।
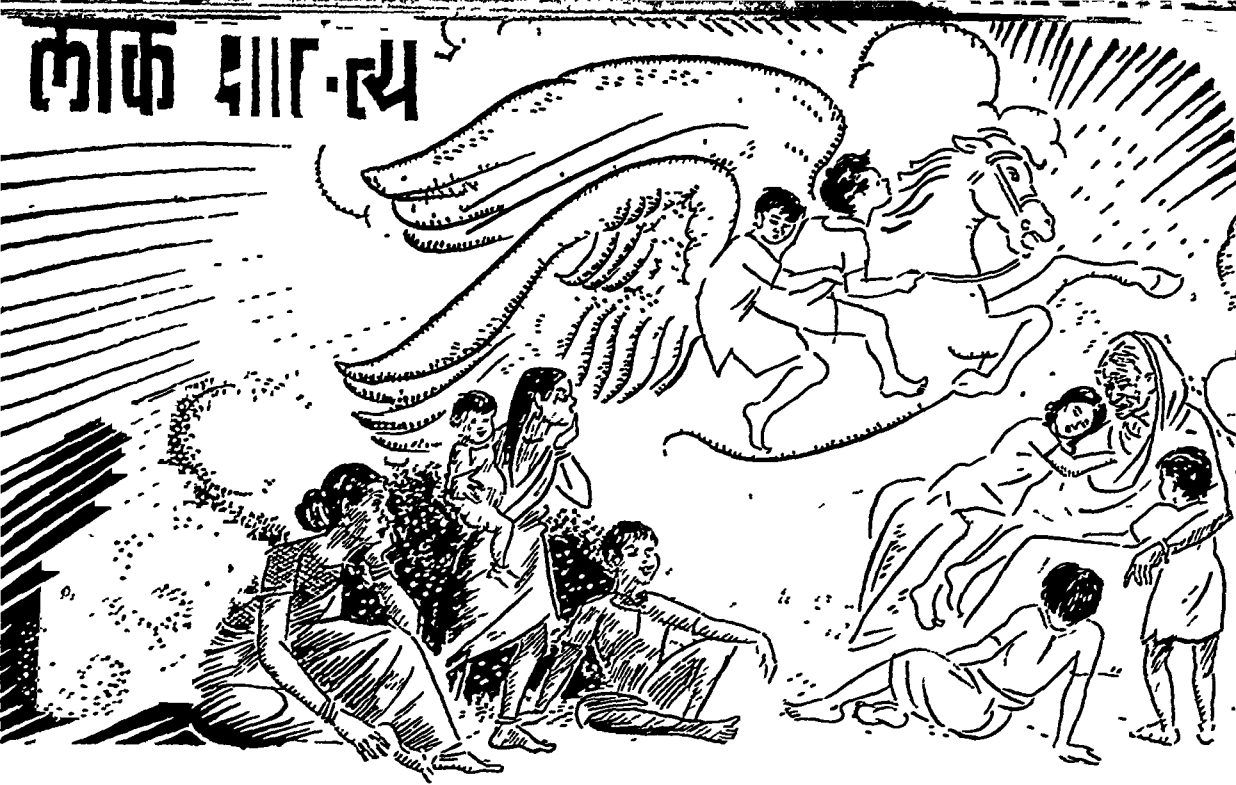
लोक साहित्य

लोक-साहित्य उन किस्सों, कहानियो, गीतो, नाटको आदि को कहते है जिन्हे आम लोग न जाने किस युग से आपस मे कहते और सुनते आए है । इधर कुछ दिनो से ऐसे साहित्य की चुनी हुई चीजे लिखी और छापी भी जाने लगी है । पर आम तौर से लोक-साहित्य लिखा नही जाता । लोक-साहित्य की किस कथा और किस गीत को किसने और कब बनाया यह कोई नहीं जानता । लोक-साहित्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत मे मिलता है, और इस प्रकार उसका सिलसिला चलता रहता है। लोक-कथाओं, गीतो, कहावतो, और पहेलियो में गाँव के लोगो की दशा, उनकी इच्छा और उनके भावो का सच्चा चित्र होता है । उनमे जनता के दुख दर्द और सोच विचार की झलक होती है । इसीलिए कहते है कि किसी देश की जनता को समझने के लिए उस देश के लोक-साहित्य को समझना जरूरी है।

(१)

बंगला लोक-साहित्य

बंगला लोक-साहित्य की बहुत सी शाखाएँ है। पहले एक शाखा थी, जो धर्म और व्रत नियम आदि के साथ जुडी थी। उस शाखा मे व्रत कथा तो थी ही, 'मनसा मंगल', 'चडी मंगल', 'धर्म मंगल' आदि मंगलकाव्य और 'आउल-बाउल', 'मुरशेदी' 'मारफती' आदि अनोखे गाने भी उनके भाग बन गए थे। उन गानो मे से आज भी बहुत से प्रचलित है। पर असल मे वे गाने लोक-साहित्य नही, धर्म गीत है। लोक-साहित्य मे धर्म की बातो से कही अधिक आम लोगो के जीवन की बाते होती है। यह सच है कि व्रत कथाओ मंगल काव्यो आदि मे भी जनता की भावनाएँ ही खास है फिर भी उन्हे लोक-साहित्य मे नही गिना जा सकता।

बंगला लोक-साहित्य की खास चीज 'रूप कथा' है। रूप कथा ऐसी कथाओ को कहते है जो 'एक था राजा', 'उसकी दो रानियाँ थी' आदि इकरंगे वाक्यो से शुरू होती है। उनमे अजीब अजीब बाते होती है। उनमे कही 'सुयोरानी' और 'दुयोरानी' की बाते है। कही 'राजकुँवर' और 'राजकुँवरि' का वर्णन है तो कही 'तीन पानरि मैदान' और 'पक्षीराज घोडा' की कथाएँ है। और सबसे बढकर उनमे 'करजनी वरन राजकुँवरि' और उसके 'मेघवरन केश', और पाताल पुरी के भौरे मे जिनके प्राण बसते थे उन 'राक्षस-राक्षसी' की विचित्र कहानियाँ है।

'रूप कथा' के बाद 'उपकथा' का स्थान है। उपकथाएँ भी तरह तरह की होती हैं। एक तरह की उपकथा वह है जिसमें जानवरों और चिड़ियों की कहानियाँ हैं। उन कथाओं में कभी गोरैया से राजा हार जाता है, कभी सियार पाडे से मगर ठगा जाता है, तो कभी 'बाघ' किसी की जाँघ से सर हो जाता है। एक दूसरी तरह की उपकथा आदमी के बारे में होती है, जिसमें कहीं चोरों की बदमाशी का बयान होता है, कहीं बुद्धू बाँभन और चालाक बाँभनी, तो कहीं गरीब किसान की तस्वीर होती है जो स्वभाव से ही ही सीधा सादा और नासमझ होता है। उपकथाओं की एक खास बात यह है कि उनमें आम आदमी की हमदर्दी सदा छोटों के साथ होती है। उनमें दुखिया और सताए हुए लोग ही अंत में जीतते हैं।

बंगला लोक-साहित्य में कथा कहानियों के अलावा 'गीतिका' (गाथा) और गीतों के भी भंडार हैं। कहीं 'सारी गान', 'जारी गान' आदि बरसात के गीत मिलते हैं, कहीं ब्याह और विदाई के गाने पाए जाते हैं तो कहीं बच्चा होने पर आनंद के सोहर, मंगल और स्त्रियों के दूसरे गीत। इतना ही नहीं धीरे धीरे स्वराज्य आंदोलनों के बहुत से गीत भी उनमें शामिल हो गए हैं। उनके अलावा लोरियाँ और छडे भी बंगला के लोक-साहित्य की खास चीज़ें हैं। छडों में भी स्त्रियों के गीत अलग हैं और नन्हे बच्चों के अलग। छड़ों के शब्द अर्थहीन होते हैं। उनमें केवल सुर ही सुर होता है। पर सुर और शब्द के मेल से जो चीज बनती है, वह एक निराला काव्य होता है। बंगला लोक-साहित्य में 'धाँधाँ' (मुकरियों) और पहेलियों की भी एक विचित्र दुनिया है। इन सारी चीजों का आज भी चलन है।

बंगला लोक-साहित्य पर विद्वानों ने तरह तरह से विचार किए हैं।

उन्होने वड़े यत्न और मेहनत से उन्हे जमा भी किया है। लाल विहारी दे की अंग्रेजी मे संग्रह की गई 'वंगला लोक कथा', दक्षिणारंजन मित्र मजुमदार की 'दादी की झोली', और 'दादा की झोली', उपेन्द्र राय चौधुरी की 'गौरैया की कितात्र' और छडो की कई किताबे वंगला के उच्च साहित्य मे गिनी जाती है।

वंगला लोक-कथा

दुखिया सुखिया की कहानी

एक था ताँती। उसके दो बीवियाँ थी। दोनो वीवियो से उसके एक एक वेटी थी। वड़ी वीवी की वेटी का नाम था सुखिया और छोटी की विटिया का नाम था दुखिया। ताँती वडी वीवी को वहुत ही मानता था। हर घड़ी 'कहाँ उठाऊँ, कहाँ विठाऊँ' लगाए रहता था। काम न धधा, माँ वेटी वैठी चारपाई तोड़ती रहती थी। घर गिरस्ती का का सारा वोझ दुखिया की माँ और दुखिया के सिर था। वे दिन रात चूल्हा-चक्की, झाड-वहारु मे लगी रहती थीं। समय वचता तो वेचारी चर्खा कातती और सूत के गोल्हे वनाती। फिर भी उन्हे दिन रात गाली और फटकार मिलती। और दिन डूवे मिलता मुट्ठी भर भात।

लेकिन सव दिन एक से नहीं जाते। एक दिन ताँती अचानक चल वसा। एक ओर रोना पीटना मचा था और दूसरी ओर वडी वीवी झपाक से उठी और यह जा, वह जा। देखते देखते ताँती के सारे रुपए पैसे वह न जाने कहाँ छिपा आई। उसके वाद उसने दुखिया और उसकी दुखियारी माँ को मार पीट कर अलग कर दिया।

फिर तो सुखिया और उसकी माँ के सुख की कुछ न पूछो। उनकी पाँचों घी में थीं। धन-दौलत का कोई पार न था। हाट बाजार जाती तो बड़ी रोहू मछली की मूँड़ी ही छाँटकर लातीं, और लाती हाट भर में सबसे अच्छी कचबतिया लौकी। घर लौटकर दुखिया और उसकी माँ को दिखा दिखा कर पकातीं। वे सोरहों व्यंजन बना बना कर खातीं। दुखिया माँ बेटी के भाग मे था बासी भात और नमक। वह भी कभी जुड़ता, कभी नहीं। उनकी विपदा को देख देखकर सुखिया की माँ निहाल हो जाती और ठहाके मार कर हँसती। उधर दुखिया माँ बेटी दिन रात सूत कातती और कपड़े बुनतीं। हाड़तोड़ खटनी के बाद किसी दिन एक अगोछा तैयार हो जाता, तो किसी दिन गज भर कोई और कपड़ा। जो वह बिक जाता तो माँ बेटी के मुँह मे दो कौर अन्न पड़ जाता। नही बिकता तो सूखी एकादशी।

एक दिन सुबह-सवेरे आँख खोलते ही दुखिया की माँ क्या देखती है कि हाय राम बंटाढार! चूहो ने सारा सूत काट काट कर सत्यनास कर दिया था। जो कुछ रुई थी, वह भी एक दम सील गई थी। अब क्या हो? दुखिया की माँ भोर की कच्ची धूप मे रुई की पूनियाँ सूखने को डालकर घाट पर कपड़े धोने चली गई। दुखिया बैठी पथार की रखवाली करती रही।

कहा है कि 'राजा नल पर विपत पड़ी तो भुनी पोठिया जल में पड़ी।' माँ बेटियों को बस पूनियों का ही सहारा रह गया था। सो, न जाने कहाँ से झपटता एक झकोरा आया और पूनियो को भी उड़ा ले गया। दुखिया बहुत कूदी फाँदी पर हवा मे ऊँची उड़ती पूनियो तक पहुँच न पाई। हारकर बैठ गई और फफक कर रोने लगी। उसी समय हवा उसके कान में फुसफुसाने लगी, "दुखिया,

दुखिया ऊँची उड़ती पूनियो तक पहुँच न पाई
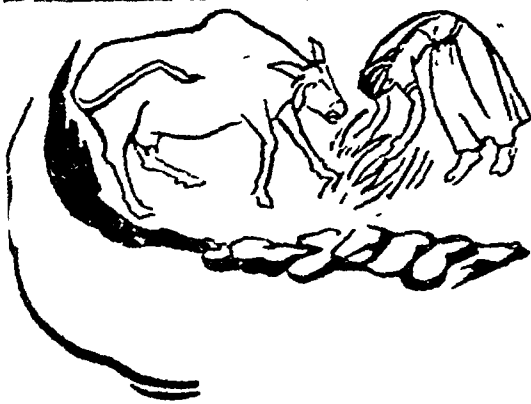
दुखिया गाय को घास डाल रही है।

री दुखिया ! रोती क्यों है ? आ, मेरे संग आ। रुई मिलेगी. रुई ! नरम नरम रुई !" दुखिया ने आँसू पोछ डाले और भागती. दौड़ती, गिरती, पड़ती हवा के पीछे चल पड़ी।

बहुत दूर जाने पर राह मे एक गाय मिली। गाय ने पुकारा, "दुखिया. री दुखिया ! भागी भागी कहाँ जा रही है ? मेरी गोठ तो साफ किए जा।" अभी दुखिया के आँसू भी पूरी तरह सूखे न थे। फिर भी उसने बड़े जतन मे गोठ को झाड पोछकर साफ किया और थोड़ी सी घास लाकर गाय के आगे रख दी और हवा के पीछे पीछे हो ली।

कुछ दूर जाने पर केले का एक पेड मिला। केले का पेड बोला, "दुखिया, री दुखिया ! चारो ओर से खर पात ने मुझे जकड लिया है। इनको नोचती जा, बिटिया ! इन्हे जरा उखाड पछाड़ के फेंकती जा।" दुखिया रुक गई। उसने केले मे उलझी बेलों को बड़े जतन से सुलझाया। और घास फूस उखाडकर फेक दिया। उसके बाद वह फिर दौड चली हवा की राह पर।

कुछ दूर और जाने पर उसके आँचल को एक सिहोड़े के पेड़ ने पकड लिया। वह आँचल खीचता हुआ बोला, "दुखिया, री दुखिया ! तू उधर कहाँ भागी जा रही है ? तनिक मेरी जड़ तो देख। देख मेरी नगी जड़ को कितने झाड़ झंखाड़ घेरे हुए है। इधर कोई राही भी नही आता। क्या तू मुझ पर दया करके मेरी जड़वट को झाड़ झूड़ न देगी ?"

दुखिया दुखियारो के दुख को खूब समझती थी। दौड़ते दौड़ते रुक गई। वह सिहोड़े की जड़ झाड़ पोंछकर फिर अपनी राह चल पड़ी।

थोडी ही दूर गई होगी कि एक घोड़े से भेट हुई घोड़ा दुखिया को देखकर वोला, "दुखिया, री दुखिया! वहुत भूख लगी है। दो मुट्ठी घास तो नोच ला। पेट की जानमारू अगिन कुछ तो सान्त हो।" घोड़े की वात सुनते ही दुखिया फिर थमक गई। उसने घोड़े को घास दी और फिर हवा के पीछे चल पड़ी।

हवा के साथ न जाने कहाँ कहाँ होती हुई दुखिया आखिर एक वपाधप उजले महल मे पहुँची। महल एकदम सुनसान था। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। न कोई आदमी न आदमजाद। यहाँ तक कि कोई पत्ता भी नही खड़कता था। उस सुनसान गुमसुम मे वस किसी की हल्की हल्की साँस सुनाई दे रही थी।

दुखिया आँखे फाड फाड कर कुछ खोजती हुई सी चारो ओर देख देख आगे वढ़ती गई। एक से एक सुन्दर सजे सजाए फिटफाट दालान और झकाझक चमकते आँगन को पार करती गई। एक जगह देखती क्या है कि कोई निपट थुड़थुड़ी वुढिया वैठी सूत कात रही है। इतनी वूढ़ी, इतनी वूढी कि न चल सके, न फिर सके। उसके सफेद वाल सन की लुडी की तरह हो चुके थे। वह धपाधप उजली साड़ी पहने सूत काते जा रही थी। फिर सूत भी इतना कि उसकी लच्छियो का न कोई ओर न छोर। इतना ही नहीं, एक ओर झौंओ झौंओ पूनियाँ वन रही थी, तो दूसरी ओर थान के थान कपड़े और थाक के थाक साड़ी जोड़े वनते जा रहे थे। दुखिया की आँखे फटी की फटी रह गई।

हवा वोली, "दुखिया, री दुखिया! यह जो वैठी वैठी चर्खा कात

रही है, वह चाँद की बुढ़िया अम्मा है। जा जा, इसके पास चली जा और प्रणाम करके बैठ जा। नरम नरम खोटी रुई चाहती है न तू? इसी से माँग। तू जितनी चाहेगी, उतनी मिलेगी। यही देगी, यही।"

दुखिया ठिठकती थमकती दबे पाँव डग डग आगे बढ़ी। उसने पास जाकर बुढ़िया के पैरों को छूकर प्रणाम किया और कहा, "दादी माँ, ओ दादी माँ, हमारी रुई को हवा उड़ा लाई है। अब हम कैसे क्या करें? कहाँ से खाएँ? कहाँ जाएँ? माँ घर लौटने पर बकझक करेगी। डाँट डपट, गाली फटकार की नौबत आएगी। इसलिए कहती हूँ कि जो रुई हवा उड़ा लाई है वह मुझे दे दो। दे दो, दादी माँ। सुनती हो कि नहीं?"

बादलों की हर तह पर और रुई की पूनी पूनी पर चाँद की चाँदनी पड़ रही थी। बुढ़िया ने आँखें उठाकर देखा। देखा कि दुखिया की आँखों में भय खेल रहा था, और उनमें मोह ममता झलक रही थी। पर उसके चेहरे से झर रही थी हँसी। वह हँसी एक बच्चे की हँसी थी, प्रकृति की हँसी थी, भगवान की हँसी थी। दुखिया उसे भा गई। उसने ललककर दुखिया की ठोढ़ी उठाई और चूम ली। बोली, "छठी माई, छठी माई, माय की बाछरी की अलाय बलाय दूर हो, आपद विपद दूर हो, जियो बिटिया जियो। बहुत अच्छा किया जो तू आ गई। अच्छा, अब जरा उस घर में तो चली जा रानी? देखूँ तो कैसे जाती है? जा के तेल फुलेल लगा ले, कपड़े ले ले, एक अँगोछा ले ले, और चली जा घाट पर। जाके झटपट नहा धो डाल। हाय, मुँह सूख के कैसा मुर्झाटा हो गया है मेरी बाछरी का! नहा धो के आ और कुछ खा पी ले। फिर रुई लेके घर जाना।"

दुखिया उस घर में गई। देखा कपड़ों के ढेर लगे हैं। फिर दूसरे

घर मे गई देखा, न जाने कितने तरह के उवटन, तेल-फुलेल, गध-मसाले, खली-खलेड़ी, साज-सिंगार की चीजे जहाँ तहाँ विखरी पड़ी है। दुखिया ने चुन चुनाव कुछ भी नहीं किया सीधे जाकर एक जैसा तैसा कपड़ा ले लिया, कधे पर एक ग्रँगोछा डाल लिया ग्रौर थोड़ा सा तेल सिर से छुआ लिया,। वह भी राम जाने सिर से छुआ कि नहीं। रत्ती भर खली सज्जी ले ली। फिर पोखरी पर गई और हाथ मुँह में खली सज्जी मलकर पानी मे उतरी। पहली डुवकी लगाई। पानी से उभरी कि हाय मैया! ग्रंग ग्रग से रूप चूने लगा। पोखरी का घाट उस रूप के उजाले से भर गया। दुखिया को मन ही मन वड़ा अचरज हुआ। उसने जल्दी मे एक डुवकी ग्रौर लगा ली। इस वार जो उभरी तो, ग्रंग ग्रंग सोने चाँदी से लदा हुआ! सात राजाग्रों की दौलत से वने हीरे, मोती, लाल, जवाहर के गहने! दुखिया नहाकर निकली। सहमी सहमी, घवराई घवराई सी, डरती डरती वह रसोई की ग्रोर वढ़ी।

दुखियारी माँ की दुखियारी वेटी को इतना उतना से क्या वास्ता? पकवान, मिठाई, खीर या मलाई खाना वेचारी क्या जाने? सो, दुवकी दुवकी रसोई के एक कोने मे दीवार से सट कर वैठ गई ग्रौर मुट्ठी भर वासी भात लेकर इमली, मिर्च, नोन के साथ खाने लगी। खा पीकर वुढ़िया के पास रुई माँगने गई। वुढिया वोली, "आ, री आ, ग्रो मेरी सोना-मणि नातिन। रुई चाहिए न तुझे? जा, उस घर मे रुई की पिटारियाँ पड़ी है। जितनी जी चाहे, उठा ले जा। जा मैया की वाछरी, रुई लेके अपनी मैया के पास जा।"

पासवाले घर मे जाकर उसने देखा कि वहाँ रुई की पिटारियाँ ही पिटारियाँ भरी थीं। छोटी, वड़ी, मझोली। हर किस्म की पिटारियाँ सजाकर रखी हुई थीं। उनमे से एक उठाकर दुखिया वुढिया के पास आई।

रुई की पिटारी लेकर लौटती दुखिया

चाँद की बुढ़िया माँ ने दुखिया को लाड़ा, दुलारा, चूमा और असीस दिए। फिर उसे रुई देकर विदा किया। दुखिया के पाँव जैसे धरती पर नहीं पड़ रहे थे।

लौटती बेर राह में उसी घोड़े ने पुकारा, "अरे, यह दुखिया तो नहीं ? किधर चली री ? अरे, तेरे लिए ही यह पछीराज बछेड़ा रख छोडा था। इसे तो लेती जा।" और नन्हा सा पछीराज बछेडा दुखिया के सग चल पडा।

दुखिया सिंहोड़े के पेड़ के पास से निकली तो वह बोल पडा, "कौन जा रही है री ? दुखिया तो नहीं है ? अरी, तेरे लिए मोहरों की गगरी रखी है, इसे लेती जा।" दुखिया के लिए ना कहना कठिन हो गया। उसने मोहरों की गगरी पछीराज की पीठ पर लाद ली।

केले के पास से निकली तो वह भी उसे खाली हाथ जाने देने को तैयार नहीं था। वह उसे सुनहले रग के बडे बडे और ताजे केलो की घौद थमाकर ही माना। सबके बाद मिली गैया। उसने भी दुखिया के सग एक कपिला बछिया बरजोरी लगा दी।

आगे बढने पर दुखिया को यह चिता हुई कि माँ उसकी बाट जोह रही होगी और उसकी आँखो से धारे बह रही होगी। इसी चिता मे वह भागती चली गई और पहुँचते ही झपटकर माँ की गोद मे जा गिरी। माँ बेटी दोनो ही के हिये जुडा गए।

दुखिया की माँ बिचारी बहुत नेक थी। वह सारी बाते सुनकर बहुत खुश हुई। वह दुख के पहाड जैसे जाने कितने दिन काटकर सुख की हँसी

हँसती हुई सुखिया के घर गई। संग लगी दुखिया भी गई, क्योंकि वह सुखिया को अपने माल असवाव मे से हिस्सा देना चाहती थी। लेकिन जव वह सुखिया को हिस्सा देने लगी तो उसने मुँह मोड़ लिया। उसकी माँ दुखिया की माँ को गदी गंदी गालियाँ देकर वोली, "इतना तेज क्या दिखाती हो? इतना घमंड किस वात पर? न जाने कहाँ से खोज माँग कर लाई है। पता नहीं माँगकर लाई है या चोरी का धन है? वायना वाँटने की जरूरत कैसे आ पड़ी, री दुखिया की माँ? हमारी सुखिया को कमी किस चीज की है भला?" दुखिया की माँ सन्न रह गई। उसे कुछ सूझा ही नही कि क्या कहे, क्या न कहे। सिर झुकाए लौट पडी। उसके वाद सुखिया की माँ झमक कर गरज उठी, "कहाँ गई री सुखिया, मुँहजली कहीं की। कल जो तू चाँद की उस वुड्ढी माँ के पके सन जैसे वाल मुट्ठी मुट्ठी न उखाड़ लाई तो इस घर मे वस तू होगी या मै। वस समझ ले कि चाहे तेरी जिंदगी पूरी हो जायगी या मेरी। उस कलमुँही वुढिया को लच्छमी उँडेलने की और कोई जगह ही न मिली?"

उसी रात को दुखिया की पिटारी मे से एक राजकुमार निकला। माथे पर मुकुट, गले मे रतनहार और हाथ मे तलवार। उसने कहा, "मै दुखिया से व्याह करूँगा।" दुखिया की माँ के आँसुओ मे हँसी के फूल खिल उठे और उसने राजकुमार के हाथो मे अपनी वेटी सौंप दी। माटी की कुटिया सोने की दौलत से भर गई। दुखिया की माँ के काँपते हिये मे दुखिया के वापू की याद आई। आह, अगर आज वे होते। जव जव उसके मुँह पर हँसी आती, तव तव किसी की याद उसे खूव रुलाती।

उसी रात राजकुमार निकला

दूसरे दिन अभी पौ भी नहीं फटी थी कि सुखिया की माँ ने अपनी गठरी खोलकर डगरे में बिखेर दी। रुई पसर गई और सुखिया रखवाली पर बिठाल दी गई। सुखिया की माँ बिना जरूरत जगदिखावे को घाट की ओर कपड़े धोने चल पड़ी। घड़ी पहर बीते, पहले दिन की तरह ही फिर बयार सनकी। सुखिया फूलकर कुप्पा हो गई। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। अथा क्या चाहे दो आँखें। रुई अच्छी तरह उड़ भी न पाई थी कि वह बिन बुलाए ही हवा के पीछे लग गई। सुखिया को भी रास्ते में वह गाय मिली। उसने उसे भी उसी तरह पुकारा। पर सुखिया भला कहे को सुनने लगी? उसने मुड़कर देखा तक नहीं। आगे बढ़ने पर जिन सबने दुखिया को पुकारा था, उन्होंने बारी बारी से सुखिया को भी पुकारा। पर बेचारे अपना सा मुँह लेकर रह गए। सुखिया ने किसी की तरफ घूमकर भी नहीं देखा। उल्टे जली कटी सुनाती गई, "हाँ, रे हाँ! मैं ही बुद्धू मिली हूँ क्या? बेछदाम की गुलामी कराना चाहते हैं। हूँ, मैं क्या किसी की टहलुई हूँ? ऐसी दासी कोई और होगी।"

हवा के पीछे लगी लगी सुखिया चाँद के देश में जा पहुँची। बादलों को रुई की तरह पैरों से रौंदती मसलती वह फाँद फूँदकर सीधे चाँद की बुढ़िया माँ के दरवाज़े पर जाकर ही रुकी। बुढ़िया ने झटपट सूत चर्खे को समेट सुमेट कर एक ओर किया और बोली, "कौन री? तू किसकी बिटिया है री बाछरी।" मुँह बिचकाती हुई सुखिया ने हाथ मटकाकर जवाब दिया, "दुखिया को भूल गई क्या तू? मैं दुखिया की बहन सुखिया हूँ। पर छोड़ इस बात को, पहले यह तो बता री बुड्डी, कि तेरी अक्किल क्या मारी गई थी जो उसे इत्ता सारा दे डाला? अच्छा बोल, अब मुझे क्या देती है?

जो कुछ देना हो झटपट दे। उठ, निकाल। नही तो तेरा कचूमर निकाल दूँगी, बुढ़िया कही की।" बुढ़िया यह सुनकर जैसे पत्थर हो गई। वह टुकुर टुकुर ताकती की ताकती ही रह गई। जैसे तैसे उसने जवाव दिया, "अच्छा, री अच्छा। तुझे भी देती हूँ। लेकिन पहले नहा धो के पेट तो जुड़ा ले।"

बुढ़िया पूरी वात कह भी न पाई थी कि सुखिया उठ पड़ी। घर मे घुस गई और 'यह कहाँ है, वह कहाँ है' करती रही। फिर किसी तरह चुन चुनाव करके उसने अपने लिए पाट-पटम्वर छाँटे। एक अच्छा अँगोछा लिया, डिव्वे भर भर गध मसाले, कटोरी भर भर तेल, और साज सिंगार की एक पूरी पिटारी लेकर घसीटती घुसूटती पोखरी पर नहाने पहुँची।

कहते है लालसा का अत नही। सुखिया का भी वही हुआ। तेल फुलेल के भुक्खड़ की तरह उसने पाँच सात वार खली खलेड़ी, उवटन सुपटन घिस घिस कर सारे वदन को रगड़ डाला। फिर भी साध नही पुजी। पानी की आरसी मे वार वार मुँह देखने के वाद वह नहाने उतरी। डुवकी लगाई, पानी से उभरी, फिर पानी मे अपना रूप निहारा। रूप वदल चुका था। वह अपरूप सुन्दरी वन गई थी। देख देखकर जी नही भरता। सात समुन्दर के रतन-जवाहर के लोभ मे उसने फिर डुवकी लगाई। निकली तो अग अंग पर गहने लदे थे। सवको हिला डुलाकर, झमका झमका कर देखा। साध फिर भी वनी रही। लालसा फिर भी नही मिटी। उसने फिर डुवकी लगाई। पर तीसरी डुवकी के वाद 'और मिले' की आस मन की मन में ही रह गई। पानी से उभरी तो अपने को पहचानने मे धोखा होने लगा। गले का सुर भयावना हो गया। चेहरे पर वड़े वड़े चकत्ते। शरीर भर मे खाज के फफोले। इतने फफोले कि सुखिया सभी

तीसरी डुवकी के वाद

को खुजला भी नही पाती थी। सिर के बाल सन की लुडी की तरह सफेद। नाखून, जैसे बघनखे। बालों पर उँगली पड़ी नही कि गुच्छे के गुच्छे साफ। रोष के मारे सुखिया एड़ी से चोटी तक सुलग उठी। बस चले तो बुढ़िया को कच्चा ही चबा जाए। सो लौटकर वह बुढ़िया को जली कटी सुनाने लगी। जितनी भी गालियाँ उसे याद थीं, सभी दे डाली।

चाँद की बुढिया माँ माया ममता के सुर मे बोली, "और होना भी क्या? तीन डुबकियाँ लगाने पर यही तो होना है। जा बाछरी जा, कुछ खा पीके जुड़ा ले, ठंडी हो ले।" बुढ़िया को ठेल ठालकर सुखिया पास के घर मे चली गई। वहाँ खाने पीने की भाँति भाँति की चीजे, तरकारी, फल-फलाहारी सँजो कर सजाई रखी थी। सुखिया कभी यह चखती तो कभी वह। कुतरती, जुठारती, भकोसती, जितना खाती नही उससे अधिक खराब करती। जहाँ तक खाया गया सुखिया ने ठूँस ठाँस कर खाया और खा पीकर बुढ़िया के पास पहुँची। उसे धमकाती हुई बोली, "रुई की पिटारी कहा है री? देती है सीधे से कि नही?" बुढिया ने इशारे से पिटारियोवाला घर दिखला दिया। सुखिया ने चुनकर खूब बड़ी, धमधूसर सी एक पिटारी उठाई और बुढिया को कोसती सरापती पिटारी लादकर वह घर को रवाना हुई।

रास्ते मे सुखिया को जो देखता वही डर के मारे भाग खड़ा होता। जाने पहचाने लोग भी दूर पहुँचकर ही दम लेते। सुखिया जिस रास्ते आई थी, उसी रास्ते लौटी। घोड़े ने कसकर उसके एक दुलत्ती जड़ी। सिहोड़े ने अपनी एक डाल हरहराकर उस पर गिरा दी। केले ने धड़ाम से एक भारी घौंद उसकी पीठ पर दे पटकी। और सबके बाद गैया माघ

गैया साव सावकर सींग मारती हुई
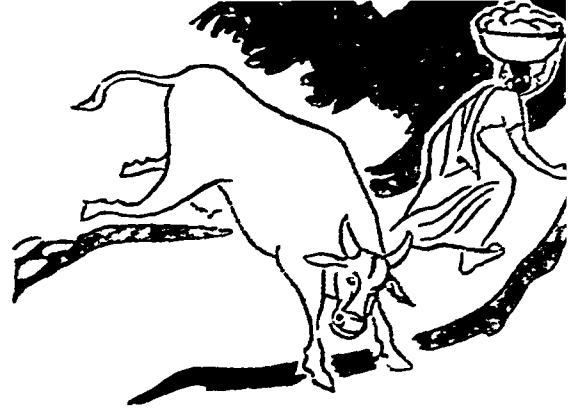
सावकर सींग मारती हुई सुखिया को दूर तक खदेड़ आई। सुखिया त्राहि त्राहि करती किसी तरह गिरती पड़ती अपने घर के करीब पहुँची। दरवाजे पर पहुँचते पहुँचते ऐसी ठोकर लगी कि सीधी मुँह के बल गिरी। सुखिया की माँ तो ऐसी डरी कि बस पूछो मत। काटो तो खून नहीं। सोचने लगी, "यह दँतफाड़, ओखली जैसी मूँड़वाली चुड़ैल कहाँ से आ मरी यहाँ ?" आखिर जब वह सुखिया को पहचान पाई तो पछाड़ खाकर गिर पड़ी और देहरी पर माथा धुनने लगी।

थोड़ी देर बाद दोनों माँ बेटी सारी दुनिया को कोसती हुई वहाँ से उठीं। वे पिटारी को घर के भीतर ले जाकर सहेजने लगीं। सोचने लगीं, शायद पिटारी में ही 'मुश्किल आसान' का नुस्खा छिपा हो। कहीं पिटारी में से सुखिया का राजकुमार दूल्हा निकल आए तो घर में उजियारी लौक उठेगी। फिर सुखिया का रूप पलटेगा और धन दौलत घर में अटाये नहीं अटेगी।

सो रात हुई। दूल्हा भी निकला। लेकिन ऐसा निकला कि सुखिया चिल्ला उठी :

मैया री मैया—
अंग अंग कनकनी, माथे में झिनझिनी
अब न सहा जाय री, हाय री ! हाय री !

सुखिया की माँ बाहर देहरी के पास ही बैठी थी। सुनकर पुचकारती हुई बोली, "पहन ले, पहन ले रानी बिटिया ! गहने तो पहन ले।" सो, सुखिया ने अंग अंग पर गहने पहने। सुखिया की माँ ने संतोष की साँस ली।

वह देहरी से उठकर खाट पर गई और रातभर सुख के सपने देखती रही।

रात बीती। पौ फटी। दिन चढ़ने लगा। पर सुखिया की नींद न खुली। सुखिया की माँ ने बहुत पुकारा, पुकारते पुकारते उसका गला बैठ गया। तब उसने गाँव के लोग बटोरे और उनसे किवाड़ तुड़वा दिए। कमरे के भीतर जो देखा तो सन्न रह गई। लोग डरकर भाग खड़े हुए। वहाँ सुखिया कहाँ? सारे कमरे में हड्डियों के टुकड़े पड़े थे, और पड़ा था एक बहुत ही विशाल अजगर का केंचुल!

सुखिया की माँ हाय हाय करती और अपना माथा कूटती रह गई।

(२)

असमी लोक-साहित्य

असम के लोक-साहित्य में कुछ भाव ऐसे हैं जो भारत भर के लोक-साहित्य में मिलेंगे। भारत का किसान सादगी पसंद करता है और सादा जीवन बिताता है। देहातों में प्रकृति की छटा दिखाई देती है। गाँव के लोग आम तौर से मेहनती होते हैं। उन्हें अपने खेत खलिहान और धंधे से प्रेम होता है। असम की ऐसी कुछ कहावतों में हमें पूरे भारत के जीवन का चित्र दिखाई देता है। जैसे भारत भर में यह विचार प्रचलित है —

'राखे हरि मारे कौन
मारे हरि राखे कौन

उसी को कुछ बदलकर असमी में यों प्रकट किया गया है :—

"जिआए थके माने भाते आंतिवा,
मरिले गाले आंतिवा"

यानी, "जब तक जिओगे भात मिलेगा, मरने पर जमीन का गड्ढा मिलेगा।" अनूठे मज़ाक़ भी देहातों में हर जगह सुनने को मिलते है। गाँवों की उलटबाँसियाँ मशहूर हैं। जैसे :—

"कथा कलेइ लाग पाक
बार जनी गैथिल पानि तुसिबलाई तेरा जनिर कातिले नाक।"

यानी, "उसकी हर बात मे पेंच है, बारह औरते पानी भरने गईं, तेरह की नाक कट गई।" अर्थात् पानी भरने के लिए जानेवाली औरतों की ही नही उन्हे जाने देनेवाली सास की भी नाक कट गई।

कुछ कहावतों में गाँवों की ग़रीबी बहुत ही सीधे सादे ढंग से बता दी गई है। घर मे ग़रीबी का रंग देखिए —

"गिरिये के बोले भोक भोक,
घैनिये के बोले दुइजे साजी एक लंगे हक।"

यानी, "पति भूख भूख चिल्लाता है और पत्नी कहती है, एक ही जून खाओ।"

और घर से बाहर उसका रूप यह है :—

"आलहीए बिकारे आरजार लोन, धान-किनाई बिकारे दांगरदोन।"

यानी, "मेहमान को चाहिए दाल मे नमक और धान के खरीदार चाहते हैं कि बटखरे दूने वज़नी हों।"

असमी लोक गीत अधिकतर मौसम, खेत-खलिहान, काम धंधे, विवाह और रीति रिवाज, बच्चों को सुलाने, धर्म, इतिहास और प्रेम के बारे मे है।

'जोन बाई' लोरी असम के घर घर मे गाई जाती है। उसमें (पृ० १७
जोन यानी जुन्हैया (चाँद) को बच्चे की बहन बताया गया है।

विवाह के गीतों मे ससुराल वालों की छेड़छाड़ का एक अच्छा न
'लोण आमलाखी खाला, ऐ कालिया' (पृ० १७२) मे मिलता
'बिहु' नामक उत्सव असम मे साल मे तीन बार मनाया जाता
दो बार फसले कटने पर और एक बार नया साल आने पर।
'बिहुनाम' गीत गाए जाते है। उन्हे असम का सबसे मधुर गीत माना
है। असम का एक दूसरा प्यारा गीत है "आतिकाई केनहर मूगारे माहु
उससे पता चलता है कि मूगा (सुनहरी रेशम) की कताई बुनाई से
की ज़िंदगी का कितना गहरा लगाव है। प्रकृति और प्रेमी दोनो की मो
"पानिर जिकमिक पानिरे परुआ" (पृ० १७२) मे है।

असमी लोक साहित्य परियो की कहानियो और हैरत पैदा करने
किस्सों से भरा हुआ है। 'तेतोन तुमिल' नामक आदमी की चाल
की कहानियाँ वहाँ बड़े चाव से कही और सुनी जाती है। सीख देने
नीति कथाएँ भी बहुत सी है, जिनमे जीवन के गहरे अनुभव छिपे है। नमू
तौर पर असमी की दो लोक-कथाएँ और तीन गीत यहाँ दिए जा रहे हैं

असमी लोक-कथ

एक भूल

किसी बूढे आदमी के एक बहुत गुणी लडका था। लड़का
बुद्धि मे तेज़ और काम काज मे कुशल था। फिर भी उ

पिता उसके किसी काम की सराहना नही करता था। इससे लडका बहुत अनमना रहता था। बहुत दुखी होने पर एक दिन लडके ने अपने पिता को जान से मार डालने का निश्चय किया। अपने इरादे को पूरा करने के लिए वह चाँदनी रात मे केले के एक पेड़ के नीचे लाठी लिए छिपकर खडा हो गया।

शाम को बूढे ने लडके को घर मे न देखकर अपनी पत्नी से पूछा, "कहाँ गया है, लड़का?"

बुढ़िया ने जवाव दिया, "क्या करोगे? तुम्हें तो वह फूटी आँख भी नही सुहाता। आज क्या हो गया, जो उसे इस तरह पूछ रहे हो?"

बूढ़ा मुस्कराया और वोला, "अरी बुढ़िया! चाँद मे दाग हो सकता है पर हमारे लड़के मे नही। फिर भी जो मै लाड प्यार का दिखावा नही करता तो उसका कारण है। अगर मै उसे सराहने लगूँ तो वह फूलकर कुप्पा हो जायगा। फिर वह और भला वनने की कोशिश नही करेगा। अभिमान सदा वुरी राह पर ले जाता है। यही कारण है कि मैं मुँह पर उसकी तारीफ़ नही करता। नही तो तुम्हीं सोचो, मै और उसे प्यार न करूँ?"

बूढे की वातों की भनक वेटे के कानों मे भी पड़ रही थी। पिता की वाते सुनकर वह तीर की तरह भीतर आया और पिता के पैरों पर गिरकर रोने लगा।

बूढ़ा हक्का वक्का रह गया। उसने पूछा, "मेरे वेटे! तुझे आखिर हो क्या गया है?"

लड़के ने पिता को पूरी कहानी कह सुनाई और क्षमा माँगी। बूढे ने वेटे को कलेजे से लगा लिया।

"...वह पिता के पैरों पर गिरकर रोने लगा।"

तेतोन की चालाकी

एक दिन ठीक दुपहरी मे तेतोन किसी खेत मे से गुजर रहा था। एक किसान उस खेत को जोत रहा था। पर उसके बैल इतने वूढे थे कि डडे की मार खाकर भी वे मानो ऊँघते से चलते थे। वहुत दुखी और निराश होकर किसान झल्ला पडा, "वाघ खा जाए इन वैलो को ? ये मर भी तो नही जाते कि मुझे नई जोडी लाने का अवसर मिले।"

तेतोन ने पुकार कर पूछा, "क्या वात है भाई ?"

"अरे, मुसीवत है ! ये वूढे वैल टस से मस नही होते। मैंने एक कोडी (वीस) रुपए जमा कर रखे है, लेकिन न ये मरते है न मुझे इतना समय मिलता है कि वैलो की नई जोडी मोल ले आऊँ।"

"भाई, तालाव का कीचड इन वैलो की पीठ पर लेप दो, वे कुछ तेज चलने लगेगे।" तेतोन ने सलाह दी।

किसान ने वैसा ही किया। कीचड की ठंढ से वैलो को वहुत सुख मिला, उनके कदम कुछ तेज हो गए। उसके वाद तेतोन ने वहुत प्यासे

होने का दिखावा किया और खेत के ही एक गड्ढे से पानी पीने के लिए चुल्लू बढ़ाया। किसान बोला, "अरे, कहीं ऐसा गँदला पानी पिया जाता है ? तुम मेरे घर जाकर पानी क्यों नहीं पी लेते ?"

तेतोन ने पूछा, "क्या मालकिन मुझे पानी दे देगी ?"

किसान बोला, "हाँ, हाँ, क्यों नहीं ?"

तेतोन किसान के घर गया और उसकी पत्नी से बोला, "भाभी ! भाई साहब ने अभी बैलों की नई जोड़ी खरीदी है और जो एक कोड़ी (बीस) रुपए रखे हैं उन्हें माँग लाने को मुझे भेजा है।"

घर की मालकिन कुछ असमंजस में पड़ गई। वह एक अजनबी को रुपए देना नहीं चाहती थी। तेतोन उसके मन की बात समझ गया। उसने खेत की तरफ इशारा करके कहा, "देखो ! वह सामने रही सफेद बैलों की जोड़ी। तुम्हारी पुरानी जोडी तो लाल थी न ?" कीचड़ की वजह से बैल सचमुच दूर से सफेद लग रहे थे। फिर भी उस औरत ने रुपए निकाल कर नहीं दिए।

" वह सामने रही सफेद बैलों की जोड़ी।"

तेतोन ने तब खेत की तरफ मुँह करके जोर से चिल्लाकर कहा, "भाभी नहीं देती ।" किसान ने तुरत वहीं से पुकारकर कहा, "तुझे बाघ खा जाए। क्यों नहीं दे देती ?" इतना सुनकर औरत ने एक रुपया

अपने पास रखकर बाकी रुपए तेतोन को दे दिए। तेतोन रुपए लेकर लम्बा हुआ।

सूरज डूबे किसान हल लेकर घर लौटा और भोजन करने बैठा। उसकी औरत खाना परोसती हुई बार बार विहँस विहँस कर बुडबुड़ाती जाती, "मै चालाक निकली, आखिर मै चालाक निकली।"

किसान ने पूछा, "बहुत खुश दिखाई दे रही हो। क्या बुडबुडा रही हो? आखिर बात क्या है?"

"मैने चालाकी करके कोडी मे से एक रुपया बचा लिया।"

"कैसे रुपये?" किसान ने चौककर पूछा।

स्त्री ने ज्योही तेतोन की कहानी सुनाई, किसान खाना छोडकर उसकी खोज मे निकल पडा।

दो असमी लोक-गीत

"जोनबाई" लोरी

"जोनबाई ए बेजी एति दिया।
बेजीनो केलाइ? मोना सीबलाइ।
मोनानो केलाइ? धान भराबलाइ।
धान्नो केलाइ? हाती किनिबलाइ।
हातीनो केलाइ? उथि फुरिबलाइ।
उथि फुरिले की हे? बर मानुह हे।
बर मानुहे की करे? गघूलिटे गघूलिटे
दबा कोबे डुडुम डुम · · ·।"

(प्यारी जोनवाई मुझे एक सुई दे दो। सुई किसलिए ? एक थैला सीने के लिए। थैला किसलिए ? रुपए भरने के लिए। रुपए किसलिए ? हाथी खरीदने के लिए। हाथी किसलिए ? सवारी करने के लिए। सवारी करके क्या होगा ? हाथी पर सवार होकर बड़ा आदमी बन जाऊँगा। बड़ा आदमी क्या करता है ? वह शाम को ढुडुम-डुम ढोल बजाता है।)

शाम को ढोल बजाने से, 'नामघर' (प्रार्थनाभवन) में रखे ढोल की ओर इशारा है।

ससुराल की छेड़छाड़

"लोण आमलखी खाला ऐ कालीया लोण आमलखी खाला।
कोनोवा जन्मत तपस्या साविला सीता हेन सुन्दरी पाला ॥

(आँवला और नमक खाता है, ओ स्वार्थी, तू आँवला और नमक खाता है ! हमारी सीता जैसी सुंदरी को पाने के लिए तूने जरूर पिछले जन्म में तपस्या की होगी, नहीं तो कहाँ तू और कहाँ हमारी सीता ?)

"पानीर जिर्कामिक पानीरे परुआ, फुलर जिर्कामिक पाहि।
सेनाई जिर्कामिक तेजरे वल्तः, मुखट ऐ नुगुचे हाँहि ॥"

(पानी के कीड़े पानी में चमकते हैं। पँखुड़ियाँ फूलों में चमकती हैं। मेरा प्रीतम अपने तेज से चमकता है। उसके चेहरे की मुसकराहट कभी गायब नहीं होती।)

लोक-साहित्य

उड़िया लोक-साहित्य

हर देश के लोक-साहित्य की तरह उड़िया लोक-साहित्य को भी मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है: लोक-गीत और लोक कथा।

उड़ीसा की लोक-कथाएँ और देशों की लोक कथाओं की तरह ही सदियों से दादी नानी के मुँह से बच्चों को विरासत में मिलती रही है। उनमें बढ़ाना घटाना भी होता रहा है। इसीलिए एक ही कहानी अलग अलग जगह अलग अलग रूप में मिलती है।

ये कहानियाँ आम तौर से मनगढ़त होती हैं। इनमे हँसी, मनोरंजन और उपदेश कूट कूटकर भरे होते हैं। राजा और रानी, विदेश जानेवाला सौदागर, भूत प्रेत, देव दानव, परियाँ और चुड़ैल, पशु पक्षी, पेड़ पौधे आदि इन कथाओं के पात्र होते हैं। उड़ीसा की जनता धर्म की बातो मे अधिक दिलचस्पी रखती है। उसका पुराण चर्चा मे विश्वास है। इसलिए अक्सर कहानियो मे शिव पार्वती आ जाते है। कुछ कहानियाँ ऐतिहासिक भी हैं। उड़ीसा के इतिहास ने कभी अच्छे दिन भी देखे थे। वे दिन इन कथाओं में अब तक सुरक्षित है। कोणार्क के सूर्य मंदिर के बारे मे कई कथाएँ प्रचलित हैं। उड़िया वीरो की बहादुरी, दूर दूर के टापुओं तक उड़िया सौदागरो की समुन्दरी यात्रा आदि का वर्णन भी बहुत सी कथाओं मे मिलता है। उनमे सच्चा इतिहास न हो, पर सच्चे इतिहास की यादगार जरूर है। मेलो, पर्वों और त्यौहारों मे धर्म सम्बन्धी कामो से अधिक लोकाचार होता है। उड़ीसा के लोक-साहित्य मे उनकी भी अच्छी झाँकी मिल जाती है। चारों धामो मे से एक जगन्नाथ धाम उड़ीसा मे ही है। उसके बारे में भी लोक-कथाएँ मिलती है।

कहा जाता है कि उड़ीसा के सँपेरे गीत गा गाकर साँपों को वश मे कर लेते है। केल जाति की औरते नटो के करतब दिखाने के लिए प्रसिद्ध है। उनके गाने भी होते हैं। गाते समय वे लोग अपने को भूल जाती हैं।

जोगी जाति के लोग भीख माँगते समय गीत गाते हैं। उन गीतों का भी लोक-गीतों मे ऊँचा स्थान है।

दंड नाट, गोटिपुअनाच, पाल, दासकाथिआ, राम लीला, भग्त-लीला, कृष्ण-लीला, चइतघोड़ानट आदि उड़ीसा के जनप्रिय लोक-नाटको मे से है। इन को खेलनेवाली विशेष जातियाँ है। इन लीलाओं का भी बहुत बड़ा साहित्य है। पौराणिक कथाओं मे भी बहुत कुछ जोड घटाकर उनको ऐसा बना लिया गया है कि उन पर उड़िया जीवन का गहरा रंग चढ़ गया है। वे उड़िया के विशाल लोक-साहित्य मे घुल मिल गई हैं।

उड़िया लोक-कथा—१

सोना बेटी, रूपा बेटी

किसी राजा के राज मे एक सौदागर था। सौदागर के बेटे तो नहीं थे पर बेटियाँ दो थीं, सोना बेटी और रूपा बेटी। दिन भर सोना रूपा सोने और रूपे की सुपेलियाँ लिए गलियारे मे खेलती रहती थीं और साँझ होने के पहले ही घर लौट आती थीं। एक दिन सोना रूपा खेलते खेलते जंगल की ओर निकल गई। जंगल मे बंदर राजा का घर था। बंदर राजा ने सोना को काँख मे दबाया और वह उसे ले भागा। रूपा ठहरी छोटी

बहन। वह भी बंदर के पीछे लगी बड़ी बहन के साथ चली गई। बंदर ने दोनों को ले जाकर अपनी पत्तों की झोपड़ी में रखा। बडी बहन को उसने ब्याह लिया। कुछ दिन बीत चुकने पर सोना के पाँव भारी हो गए। उसके एक बंदर बच्चा पैदा हुआ। बडी बहन तो मौरी मे रहती, छोटी बच्चे के पोतडे धोने जाती। वह पोखरे के घाट पर बैठी पोतडे धोती रहती और गाती रहती –

"सोना जने बांदरा रूपा धोये पोतड़ा।

रूपा पोतडे धो रही है।

एक दिन उसके मायके की कुम्हारिन जलावन के लिए लकड़ियाँ बटोरने उधर से जगल जा रही थी। जो देखा, सो आके सौदागर को बताया। पहले तो सौदागर उसकी बात पतियाने का नाम ही नही लेता था। पर बहुत कहने सुनने पर उसने जगल मे अपने आदमी भेजे। उन लोगो ने वहाँ पहुँचकर देखा कि रूपा सचमुच पोतडे धो रही है और वही गीत गा रही है। उन लोगो ने लौटकर सौदागर को यह हाल बताया। सौदागर घडी मुहूर्त देख सुनकर दल बल के साथ जगल मे पहुँचा। बदर घर पर नही था। सौदागर बदर के घर से सोना और रूपा को ले आया। लेकिन सोना अपने बदर बच्चे को छोडकर कैसे आती? वह उसे भी अपने साथ मायके ले आई।

जगल मे घूमने फिरने के बाद बूढा बदर घर आया तो देखता क्या है कि सोना रूपा गायब है। उसकी एँडी मे लगी और चोटी मे बुतानी।

वह कई दिन तक भटकता रहा। फिर उसने सौदागर के घर जाने की ठानी। वहाँ जाके उसने बड़ी धमाचौकड़ी मचाई। बहुत ऊधम मचाया। घर उजाड़ दिए, पेड़ पौधे उखाड़ डाले। आखिर सौदागर के नौकरो ने तंग आकर उसे गुलेल से मार डाला। अब सोना रूपा मायके मे ही रहने लगीं। साथ मे वह बदर बच्चा भी पलता रहा।

बहुत दिन बीत गए। सौदागर बहुत रुपए पैसे लगाकर उस बच्चे के के लिए दुल्हन ले आया। बड़े धूमधाम से उसका व्याह किया। लेकिन बहू पर जब यह भेद खुला तो उसने माथा ठोक लिया। पर नसीब का फेर समझकर चुप रही। जब सभी सो जाते और रात गहरा जाती तो वह बाहरवाली अँगनाई मे जा बैठती और सिर धुन धुन कर विलाप करती, रोती और बिलखती।

एक दिन वह ऐसे ही बैठी रो पीट रही थी कि उधर से शिवजी निकले। वे पार्वती को संग लिए टहलने निकले थे। पार्वती जी ने वह रोना धोना सुना तो बोलीं, "महादेव, यह रुलाई किसकी है?"

महादेव ने कहा, "होगी कोई डाइन जोगिन, या भुतनी चुडैल या डाकिनी पिशाचिनी। कही बैठी ठुनक रही होगी। उससे हमे क्या लेना देना है?"

पर पार्वती भी ठहरी एक हठीली, हठ ठान बैठी। जिधर से रोने की आवाज आ रही थी उधर ही दोनों बढ़ चले। जाकर क्या देखते है कि कोई सोलह बरस की एक अत्यंत सुंदर बहू बैठी रो रही है। उन्हे देखते ही वह दंडवत कर के पैरों मे लेट गई और बोली, "बेमानी जीवन किस काम का? मुझे मारते जाओ।"

महादेव ने अपनी जटा से एक फूल निकालकर उसे दिया और बोले, "वह बंदर नहीं है। उसे तो पिछले जनम का शाप है। अमावस की रात को वह अपने चोले से निकलकर देवलोक जाता है। भोर होने के पहले ही लौटकर फिर अपने चोले में घुस जाता है। तेरे सो जाने पर ही जाता है वह। अगली बार अमावस आए तो रात को जागती रहना। चुपचाप गुड़ीमुड़ी मार कर पड़ी रहना। जैसे ही चोला छोड़कर वह बाहर निकले, वैसे ही क्या करना कि प्रसादी के इस फूल को पानी मे भिगोकर उसके चोले पर छिड़क देना। देवलोक से लौटने पर जब वह अपने चोले में घुसने लगेगा तो सुंदर आदमी बन जायगा। देवताओ के रूप का।"

बहू ने यह बात किसी को नहीं बताई। फूल को पल्ले के छोर से बांधे रही। अमावस की रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। सौदागर की बहू चौकन्नी सो रही थी। सचमुच ही उस बंदर की चमड़ी के भीतर से चिड़िया जैसी कोई चीज़ निकली और फुर से उड़ गई। उस चिड़िया के उड़ते ही बहू ने फूल को पानी में भिगोकर उस बंदर के चोले पर छिड़क दिया। रात बीते वह चिड़िया लौटी। लौट के चोले में घुसी। उसके घुसते ही बहू क्या देखती है कि वह बंदर सचमुच एक अत्यंत सुंदर जवान आदमी बनकर उठ बैठा।

जवान बोला, "हाय तूने यह क्या किया? मेरे चोले को नष्ट कर दिया। अब मै देवलोक नही जा सकूंगा।"

परंतु बहू की खुशी का ठिकाना न रहा। दोनों पास पास बैठकर सुख दुख की बातें करने लगे। बातों ही बातों मे सारी रात बीत गई। सुबह सवेरे लोगो ने उस सुंदर जवान को देखा।

बहू ने सारी कहानी कह सुनाई। सुनकर सभी को बड़ी खुशी हुई। सौदागर के कोई बेटा नहीं था, उसे सहज ही में एक इतना अच्छा बेटा मिल गया। सौदागर ने उसको अपनी सारी धन दौलत दे दी। उसे अपना बेटा बना लिया, पाला पोसा, शहर भर के तमाम लोगों को खिलाया-पिलाया, उस लड़के को राजा के पास ले गया और राजा ने अपने हाथ से उसके सिर पर पगड़ी बाँधी। बुदर बेटे ने बहू को साथ लेकर पूरे युग भर राज किया। दोनो बड़े सुख में रहे। पोते, परपोते, लकड़पोते, न जाने कितनी पीढ़ियाँ अपनी आँखों से देखी। जब दोनों की नाक धरती पर घिसटने लगी, सारे वाल सन की तरह सफ़ेद हो गए, तब कहीं दोनों को 'नारायण' हुआ।

उड़िया लोक-कथा—२

परलोक की आरसी

एक था ठग। उसके घर में ठगी की विद्या पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही थी। वह ठग अब बूढ़ा हो चला था। उसके दो बेटे थे। एक दिन उसने दोनों को अपने पास बुलाकर कहा, "देखो बेटे, मेरा तो बल गया, उमर गई और अब तो माटी चेतने के दिन आ पहुँचे हैं। तुम दोनों ऐसे हो कि अब तक ठगी के लिए कभी निकले ही नहीं। हमारी कुल-विद्या डूबी जा रही है। दिन रात इसी सोच में घुलता रहता हूँ कि मेरे बाद हमारा नाम डूब जाएगा।" बड़ा बेटा उठ खड़ा हुआ। वह बोला, "मुझे सौ रुपए दो, मैं जाता हूँ।"

उसने सौ-एक रुपए लिए और निकल पड़ा। एक दुलकी घोड़ा मोल लिया, अग्गड़ पग्गड़ बाँधा, पाट पटम्बर पहने, फेटा कछनी कसी। पहन ओढ़कर एड़ी चोटी सजा वजा लीं और घोड़े पर सवार होकर चल पड़ा। वह एक राजा के राज मे पहुँचा। उसने जाकर राजा से कहा, "मै घोड़े फेरने वाला आया हूँ।" यह कहकर वह राजा के ही घर में रहने लगा।

एक दिन राजा ने कहा, "मेरे पंछीराज घोड़े को फेर लाओ।" पंछीराज राजा के घोड़ो मे सिरमौर था। ठग वच्चे ने उसकी पीठ पर चढ़ते ही तड़ातड़ कोड़े जड़ दिए। कोड़े खाकर पंछीराज एक ही छलॉग में सौ कोस फॉद गया। राजा वैठे घोड़े की वाट जोहते रहे और ठग घोड़े को लेकर उड़नछू हो गया।

तड़ातड़ कोड़े लगाता वह पंछीराज को एक दूसरे राजा के नगर में ले गया। उस राजा ने जैसे ही पछीराज घोड़े को देखा, उस पर लट्टू हो गया। ठग वच्चा वोला, "मैं घोडे का सौदागर हूँ, सरकार! आपके ही श्री चरणों मे यह घोड़ा भेट करने आया हूँ।" राजा वहुत खुश हुआ। उसने उसे हज़ार रुपए नकद, जोड़े जोड़े पाट पटम्बर, वीरवली कुंडल, कंगन, कंठा और राह खर्च देकर विदा किया। घर पहुँच कर सारी धन दौलत वाप के आगे रखकर उसने वाप के पाँव छुए तो वाप ने सारा हालचाल पूछा। वह वेटे के करतव सुनकर वहुत खुश हुआ।

अव उसने छोटे वेटे से कहा, "अरे पूत, तेरा वडा भाई तो इतना कुछ लाया, अव तू भी तो अपना कोई करतव दिखा। वुढापे मे मेरी परवरिस जैसी तू करेगा, सो तो मै खूव जानता हूँ। तू अपना ही पेट पाल ले और कुल का नाम रख ले तो वहुत है।" छोटा वेटा वोला, "भैया को

चलती वेर आपने सौ रुपए दिए थे। मैं एक पाई भी नहीं माँगता।" यह कहकर वह घड़ी साइत देख के घर से निकल पड़ा। उसने राह वाट से एक लोंदा गोवर उठाया और उसकी एक वड़ी सी पिँड़िया वना ली। पिँड़िया की चोटी पर एक आरसी चिपका दी। फिर उसे रेशम के एक टुकड़े में अच्छी तरह लपेट लिया। ऊपर तहाई हुई पीताम्वरी डाल दी। फिर उस पिँड़िया को कंवे पर उठाकर चल पड़ा। एक राजा के राज में पहुँचा। राजा का दरवार लगा था। वड़ी भीड़ भाड़ थी। दूर से ही चहल पहल सुनाई पड़ रही थी। दरवार में अमीर उमरा का ठट्ट लगा था। कितने ही वज़ीर, सौदागर, कोतवाल, हारी गुहारी, मुद्दई मुद्दालेह, तमाशवीन, फ़ौज फ़ाटे, नायक सामंत, प्यादे सिपाही, सभी जुटे थे। वह सीवे कचहरी में जा पहुँचा। उसने राजा के आगे वह पिँड़िया डाल दी। राजा ने पूछा, "अवे, यह क्या है ?"

जवान वोला, "प्रभो ! यह परलोक की आरसी है। जिसके माँ वाप मर चुके हों, वह इस आरसी में झाँके तो उसे साफ़ दिखाई पड़ जाएगा कि परलोक में उसके माँ वाप सुख में है कि दुख में। सुख है तो कैसा और दुख है तो कैसा?" राजा ने कहा, "हमारे माँ वाप क्या कर रहे है, हम यह देखना चाहते हैं।"

ठग वच्चा वोला, "प्रभो ! यह तो चुटकी वजाते हो जाएगा, पर यह आरसी भी अजीव है। जव तक एक हज़ार रुपये की 'दर्शनी' इसके पास न रखी जाए, तव तक इसमे कुछ सूझता ही नही। सिर्फ़ धुंवला धुंवला जाला सा दिखाई देता है।"

राजा माँ वाप को देखने के लिए वेचैन हो चले थे। और राजा के घर रुपयों की क्या कमी ? भंडारी को हुक्म भर देने की देर थी कि एक

नौजवान ने रुपए लाकर ढेर कर दिए। 'दर्शनी' रख दी गई तो राजा माँ वाप को देखने लपके। ठीक उसी समय ठग वोल उठा, "प्रभो, जान वख्शें तो कहूँ। इस आरसी में एक और वात है। जिसके वाप का कोई ठीक ठिकाना न हो उसको इसमें माँ वाप नहीं दिखाई दे सकते। उसे वस अपना ही चेहरा दिखाई देगा।

राजा ने आरसी में झाँका तो उन्हें वाप वाप कुछ भी नही दिखा, दिखा तो वस अपना ही चेहरा। राजा ने सोचा यह भी अच्छा गड़वड़ झाला हुआ। सच्ची कहूँ कि माँ वाप नही दिखे तो इतने लोग समझेंगे कि मेरे वाप का कोई ठिकाना नही। फिर तो मेरा मोल चवन्नी भर भी नही रह जाएगा।

ठग वच्चे ने राजा के मन की वात भाँप ली। हँस हँसकर पूछने लगा, "प्रभो! सरकार के माँ वाप परलोक में क्या कर रहे हैं? सरकार तो उन्हे देख ही रहे होंगे?"

राजा के दिल में तो खुद ही चोर था। लाजो गड़ते हुए वोले, "हाँ हाँ, देख रहा हूँ। वापू तो देवलोक में वड़े आनन्द से है।"

तव वज़ीर ने सोचा कि राजा ने तो अपने माँ वाप को देख लिया, ज़रा मै भी देखूँ कि मेरे माँ वाप क्या कर रहे हैं? यह सोचकर वे भी एक हज़ार रुपया ले आए और उन्हें ठग के आगे रख दिया। वज़ीर को भी वस अपना ही चेहरा दिखा। वह भी दुविधा मे पड़ गया। सोचने लगा, राजा ने अपने माँ वाप को कैसे देख लिया? मुझे अपने माँ वाप क्यो नहीं दिखते? तो क्या मै अपने माँ वाप का नहीं हूँ? यह वात अगर सव लोग जान गए, तो मेरा वड़प्पन धूल में मिल जाएगा।

तव तक ठग वच्चा पूछ बैठा, "देखा महाराज ?" वज़ीर ने झट कहा, "हाँ, हाँ। आहा, मेरे माँ वाप तो देवलोक में वड़े आनन्द से है, खूव सुख लूट रहे हैं।" इसके वाद वजीर भी अपने आसन पर जा वैठा। उसके वाद एक सौदागर आया। उसने भी हज़ार रुपए की ढेरी लगा दी और आरसी मे झाँकने लगा। उसे भी वस अपना ही चेहरा दिखा। अव अगर इतने लोगों के आगे कुछ कह दे तो शरमिंदा होना पड़े। वोला, "अहा, मेरे माँ वाप भी स्वर्ग मे वड़े मज़े मे हैं।"

वज़ीर ने झट कहा, 'हाँ, हाँ . . .'

उधर राजा सोच रहा था कि "सवने तो देखा, मैं ही रह गया। तो क्या मैं अपने वाप का नहीं हूँ ?" वज़ीर और सौदागर भी ठीक यही सोच रहे थे। चोर की मैया या तो लाजों रोती ही नहीं या रोती है तो किवाड़ लगा के। सो, लाज के मारे कोई भी अपनी वात नहीं वताता था। अपनी अपनी आँखों में सव आप ही चोर वन वैठे थे। फिर कोतवाल ने भी एक हज़ार रुपये की गठरी देकर राजा, वजीर और सौदागर की तरह अपने माँ वाप को देखा। लेकिन जव तक उस ठगी का भेद कोतवाल पर खुले, तव तक ठग वच्चा चार हज़ार की गठरी वाँधकर राजा के दरवार से चम्पत हो चुका था। घर लौटकर उसने वाप के आगे रुपयों की ढेरी लगा दी और सारा हाल कह सुनाया। हाल सुनकर वाप ने कहा, "शावाश रे पूत, शावाश। तू तो मुझसे भी इक्कीस निकला!" फिर वह दोनों वेटों को लेकर शान से ठगी करता हुआ घर गिरस्ती चलाने लगा।

(४)

जापान का लोक-साहित्य

हमारे देश की भाँति जापान मे भी लोक साहित्य बहुत है। वह धर्म और पुराण, देवी देवता और दैत्य दानव, व्रत और त्योहार आदि से सबंध रखनेवाली अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

'कोजीकी' जापान की सबसे पुरानी किताब है। उसमे देवी देवताओ और दुनिया के जन्म के सबंध मे बडी रोचक कहानियाँ दी हुई है। उसमें लिखा है कि ईज़ानागी नामक देवता और उसकी पत्नी ईज़ानामी दोनों को धरती बनाने का काम सौंपा गया। वे अपनी रत्नजटित तलवार लेकर आकाश के झूलते हुए पुल इन्द्रधनुष पर खड़े हुए और जब उन्होने अपनी तलवार समुन्दर के जल मे डुबोकर निकाली तो पानी की एक बूंद टपककर नीचे गिर पडी और उसी से ओनोगोरी टापू बन गया। वे दोनों उसी टापू पर घर बनाकर रहने लगे और इसके बाद उन्होने जापान के आठो मुख्य टापुओं को जन्म दिया। अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य आदि असख्य देवी देवता इन्ही ईज़ानागी और ईज़ानामी की सतान बताए जाते है। जापान की पौराणिक कहानियो मे इन्ही सब की चर्चा है और वे कहानियाँ जापान के लोक-साहित्य का अच्छा नमूना हैं।

भारत और चीन के प्रभाव से जापान मे भी दैत्यों और राक्षसों की कल्पना पैदा हुई। कल्पना के उन दैत्यों को वहाँ 'ओनी' कहा जाता है। जापान की लोक-कथाओं, कहावतों और कहानियों में हर जगह उनका वर्णन मिलता है। जापान की लोक-कथाएँ वड़ी दिलचस्प और अनोखी होती हैं। उनमें से कुछ कहानियाँ तो इतनी लोकप्रिय हैं कि लगभग हर घर में कही और सुनी जाती हैं उनमें से एक 'उराशिमा टारो की कहानी' है।

उराशिमा टारो एक मछुआ था। उसने सागर की राजकुमारी के महल मे तीन सौ साल हँस खेलकर गुज़ार दिए फिर भी वह वरावर यही समझता रहा कि 'अभी तो आया हूँ'। राजकुमारी से विदा होकर जव वह अपने गाँव लौटा तो उसने देखा कि हर चीज़ वदल चुकी थी। न पहले के लोग थे न पहले के मकान। वेचारे उराशिमा टारो की समझ में न आया कि आखिर हुआ क्या? घवराहट और अचरज के मारे उसका वुरा हाल हो गया। राजकुमारी ने चलते समय उसे एक वोतल दी थी और कहा कि 'इसे भूलकर भी न खोलना'। परेशानी में उसने वह वोतल खोल डाली। उराशिमा को क्या पता था कि वोतल में उसके जीवन के तीन सौ साल वंद थे। ज्योंही उसने वोतल की डाट खोली त्योंही उसकी जीवन शक्ति भाप वनकर उड़ गई। नौजवान उराशिमा टारो पर तीन सौ साल का वुढ़ापा फट पड़ा और वह तुरंत मर गया।

इसी प्रकार मोमोटारो की मज़ेदार कहानी भी वहुत लोकप्रिय है। मोमो' (आड़ू) में किसी नन्हें से वच्चे को वैठा पाकर एक वुड्ढा उसे अपने घर ले आया। वुड्ढे और उसकी पत्नी ने वच्चे को पाला पोसा और उसका नाम मोमोटारो रखा। वड़ा होकर मोमोटारो ओनिगाशिमा नाम

के टापू की ओर चल पड़ा। वह राक्षसों का टापू था। राह में उसने एक कुत्ते, एक बन्दर और एक तीतर को अपना दोस्त बनाया। उन तीनों की सहायता से उसने राक्षसों को हराया और उनका सारा खजाना लेकर अपने दोस्तों के साथ घर लौट आया।

इन कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे हम अपने ही देश की कहानियाँ पढ़ रहे हों। इसमें शक नहीं कि हर देश की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। उनके कारण अलग अलग देशों की लोक कथाओं में कुछ अन्तर होता है। पर उनकी आत्मा एक होती है।

आगे के पन्नों में हम चाँद की राजकुमारी और बाँस काटनेवाले बुड्ढे की कहानी दे रहे हैं। यह कहानी जापान की बहुत मशहूर कहानियों में से है।

जापानी लोक-कथा

कागुयाहिमे

प्रशान्त महासागर में एक छोटा सा सुन्दर टापू है जिसे जापान कहते हैं। बहुत पुराने ज़माने में वहाँ एक राजा था। उसकी राजधानी के पास एक गाँव में एक बुड्ढा बँसफोर रहता था। उसका नाम ताकेतोरिनो ओकिना था। उसके साथ उसकी पत्नी भी रहती थी। पत्नी का नाम किकी था। ताकेतोरिनो जंगल से बाँस काट काटकर लाता था और उन्हें बेचकर अपना और अपनी पत्नी का पेट पालता था।

एक दिन ताकेतोरिनो बाँस काट रहा था। सहसा उसे बँसवारी की जड़ों में पड़ी हुई एक नन्ही सी बच्ची दिखाई दी। बच्ची चाँद जैसी सुन्दर थी और हीरे की कनी जैसी उसकी कांति थी। ताकेतोरिनो खुशी के मारे उछल पड़ा। वह बच्ची को अपने घर ले गया। उसको देखकर किकी भी बहुत खुश हुई। उसने कहा, "हमारे कोई आल औलाद तो है नहीं। हम इसे ही अपनी संतान समझेंगे और अपनी संतान की तरह ही इसे पालेंगे।"

पति पत्नी ने मिलकर उस बच्ची का नाम रक्खा, तयौदाकेतो कागुयाहिमे। कागुयाहिमे ज्यों ज्यों बड़ी होती गई, त्यों त्यों चाँद की कला की तरह उसकी सुन्दरता भी बढ़ती गई। और वह समय जल्दी ही आ गया जब उसके रूप की चर्चा घर घर में होने लगी। एक से एक सुन्दर, गुणी और धनी नौजवान उससे शादी करने के लिए बेचैन हो उठे। बेचारा ताकेतोरिनो बहुत दुखी हुआ। वह अपनी बेटी को इतना प्यार करता था कि उसे पल भर के लिए भी आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहता था। एक दिन उसने कागुया से कहा, "बेटी! तू हमें ही अपना माता पिता समझती है। मगर असल में तू देवताओं की कन्या है। मैंने तुझे एक दिन बँसवारी में पड़ी पाया था। तब से इतने दिनों तक तुझे अपनी बच्ची की तरह पाला पोसा। अब तू बड़ी हो गई और देश के एक से एक योग्य लड़के तुझसे शादी करना चाहते हैं। अब तू जल्दी ही पराई हो जाएगी, यह सोच सोच कर मेरा दिल बैठा जाता है।"

कागुया ने उत्तर दिया, "मेरे लिए तो आप ही लोग सब कुछ हैं। न मैं कभी शादी करूँगी और न आपके पास से कहीं जाऊँगी। आप सबने कह दीजिए कि आपकी बेटी शादी नहीं करना चाहती।"

कागुया के विचार सुनकर उससे शादी करने के इच्छुक सभी नौजवान निराश हो गए। लेकिन उनमें से पाँच ने अपना हठ नहीं छोड़ा। उनमें से दो तो राजकुमार थे, जिनके नाम थे ईशिल्सुकुरि नोमिको और कुरामोचि नोमिको। बाकी तीन भी कुछ ऐसे वैसे न थे। वे भी ऊँचे घरानों के लड़के थे। उनके नाम थे अबेनो उदाईजिन, ओतोमोनो दाईनोगोन और इसोनोकामिनो च्यूनागोन। उन पाँचों का कहना था कि "या तो कागुया शादी करने के लिए राजी हो, या फिर यह बताए कि हममें क्या खराबी है।"

लाचार होकर कागुया ने एक दिन उन पाँचों को बुलाकर कहा, "अगर आप लोग सचमुच मुझसे शादी करना चाहते हो तो मेरी एक माँग पूरी करना पड़ेगी। मैं आप में से हर एक को दो साल का समय देती हूं। दो साल में जो मेरी माँग पहले पूरी कर देगा, मैं उससे शादी कर लूंगी।"

पाँचों नौजवान तुरन्त राजी हो गए। उन्होंने कागुयाहिमे से कहा, "तुम हमें जल्दी से अपनी माँग बताओ। हम उसे जरूर पूरा करेंगे।" कागुया ने पाँचों से एक एक माँग की।

उसने कहा, "अच्छा राजकुमार ईशिल्सुकुरि, आप वह कटोरा लाकर मुझे दीजिए, जिसमें भगवान बुद्ध भिक्षा माँगा करते थे।

"और आप, राजकुमार कुरामोचि! आप उस पेड़ की एक डाली तोड़ लाइए, जिसकी जड़ें चाँदी की, तना सोने का और फल चमकदार मणियों के हैं। वह पेड़ आपको होराईसान पहाड़ के ऊपर

"पाँचो नौजवान सहम गए।"

मिलेगा, जो पूर्वी समुद्र मे है।

"महाशय अबेनो उदाईजिन! आप चीन देश में मिलनेवाले आग के चूहे की खाल लाइए।

"और महाशय ओतोमोनो दाइनोगोन! आप हवाई साँप की पँचरंगी मणि लाकर मुझे दीजिए।

"रह गए महाशय इसोनोकामिनो च्यूनागोन, सो आप! अबाबील के पेट से पैदा कोयासुगाई[1] ले आइए।"

कागुया की माँगे सुनते ही पाँचो नौजवान सहम गए। उन्हे पूरा करना लगभग असम्भव ही था। पर वे पाँचों साहसी थे। आसानी से हार मानना नहीं जानते थे। उनमे से हर एक ने तुरत सँभल कर उत्तर दिया, "यह कौन सी बड़ी बात है। मै अभी जाता हूँ और बात की बात मे तुम्हारी मनचाही चीज़ लेकर लौटता हूँ।"

कुछ ही दिन बाद राजकुमार ईशित्सुकुरि भगवान बुद्ध का कटोरा लेकर लौट आया। लेकिन वह कटोरा नक़ली साबित हुआ। फिर राजकुमार कुरामोचि सोने चाँदी के पेड़ की डाली लेकर आया। पर बात चीत मे यह भेद खुल गया कि वह डाली नकली है और सुनारो से बनवाई गई है। इसी तरह उदाईजिन ने एक कपड़ा लाकर पेश किया और बताया कि वह आग के चूहों की खाल का बना हुआ है। पर वह आग मे डालते ही जल गया। दूसरा रईसजादा दाइनोगोन जहाज मे सवार होकर हवाई साँप की पँचरंगी मणि लाने गया था। वह कुछ ही दूर गया था कि समुद्र में बड़े जोरो का

१. कोयासुगाई का जापानी भाषा में लगभग वही अर्थ होता है जो हिन्दी मे गूलर के फूल का होता है।

तूफान आ गया। उसने उस तूफान को नागराज का कोप समझा और डर के मारे घर लौट आया। इस प्रकार चार को कागुआ के सामने लज्जित होना पड़ा। सभी अपना सा मुँह लेकर रह गए।

पाँचवाँ बेचारा च्युनागोन सब में अभागा निकला। उससे किसी ने बताया कि अंडे देते समय अबाबील अपनी कोयासुगाई निकाल कर बाहर रख देती है। इसलिए वह एक दिन सीढ़ी लगाकर अबाबील के घोंसले से कोयासुगाई निकालने की कोशिश करने लगा। एकाएक उसका पैर फिसला और वह गिरकर मर गया। कागुया ने सुना तो बहुत दुखी होकर बोली "आप पाँचों में एक वह ही ऐसा था जिसने असली माँग पूरी करने की सच्ची कोशिश की, और उस कोशिश में बेचारे को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ा।

बात आई गई हो गई। कागुया पहले की ही तरह अपने माता पिता के साथ रहती रही। पर उसके रूप का बखान फैलता रहा और होते होते उसकी सुन्दरता की खबर राजा तक पहुँच गई। राजा ने कागुया से शादी करने की इच्छा प्रगट की। लेकिन कागुया राजी नहीं हुई। राजा को बड़ा ताज्जुब हुआ कि आखिर उसमें कौन से लाल जड़े हैं जो राजमहल की रानी बनने से भी इन्कार करती है। एक दिन राजा चुपके से उसके घर पहुँचा। पर वह ज्योंही कागुया के कमरे में घुसा, वह अन्तर्धान हो गई। बेचारे राजा को बहुत अचंभा हुआ। वह सोचने लगा "हो न हो कागुया देवकन्या है। इसलिए उससे विवाह की बात सोचना उचित नहीं है। ज्योंही राजा के मन में यह बात आई, त्योंही कागुया फिर प्रगट हो गई। राजा बोला "अब मैं तुमसे कभी शादी करने की बात नहीं सोचूंगा। मगर दया करके मेरी एक बात मान लो। मैं पत्र लिखूं तो उसका उत्तर जरूर

देना। मैं उसी से संतोप कर लूँगा।" कागुया ने राजा की वात मान ली।

राजा और कागुया एक दूसरे को तीन साल तक वरावर पत्र लिखते रहे। चौथे साल के वसत मे कागुया वहुत उदास रहने लगी। चॉद को देखते ही उसकी आँखो से आँसू टपकने लगते। उसके माता पिता वहुत चिन्तित हुए। उन्होंने वेटी से कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया, "मैं सचमुच इस दुनिया की नही हूँ। मैं चन्द्रलोक की परी हूँ। मुझे वहाँ लौटकर जाना ही होगा। आज से तीन दिन वाद चन्द्रलोक के दूत आकर मुझे ले जाएँगे। इसीलिए आप लोगों से विछुड़ने की वात सोच कर मेरी आँखों मे आँसू भर आते है।"

कागुया की वात सुनते ही ताकेतोरि और किकी ने भी रोना धोना शुरू कर दिया। फिर उन्होंने सोचा कि किसी न किसी तरह कागुया को चन्द्रलोक जाने से रोकना चाहिए। उन्होने राजा को खवर दी, और राजा ने तुरंत कागुया को वचाने के लिए लाव लश्कर भेज दिए। तीसरे दिन रात होने से पहले ही कागुया को एक कमरे मे वंद करके दरवाज़े मे भारी भारी ताले डाल दिए गए। राजा का लश्कर-चौकसी से पहरा देने लगा। पर ज्योंही रात हुई और चाँद की आभा भीगने लगी कि देवदूत एक उड़नखटोला लेकर आ पहुँचे। वे तुरंत कागुया के कमरे में पहुँच गए, जहाँ वह पड़ी आँसू वहा रही थी। देवदूतों को न राजा का लाव लश्कर रोक पाया और और न भारी भारी ताले।

देवदूत कागुया के सामने अमृत का प्याला और परियों के कपड़े रखकर वोले, "यह अमृत पीकर और ये कपड़े पहनकर उड़न खटोले मे वैठ जाओ।"

कागुया अपने कमरे से वाहर आई। उसने रोकर ताकेतोरि से कहा, "पिता जी, राजा की सेना भी मुझे न रोक सकी। अव मुझे जाना ही पड़ेगा। पर यह अमृत और ये कपड़े ऐसे है कि इन्हे पीने और पहनने के वाद आदमी

"उड़नखटोला चन्द्रलोक की ओर उड़ चला।"
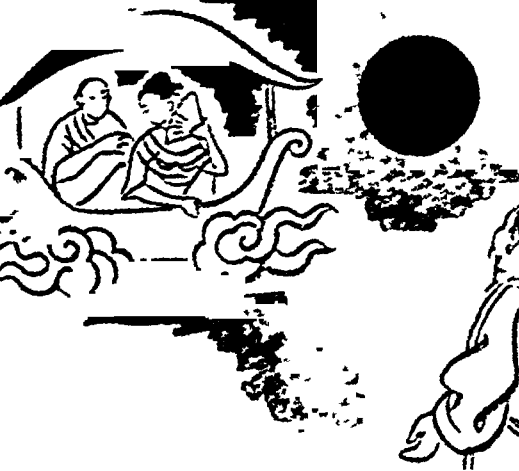
इस दुनिया की सभी बातों को भूल जाता है। इसलिए ये कपड़े आपके लिए और अमृत की शीशी राजा के लिए छोड़े जाती हूँ। मैं कुछ भी भूलना नहीं चाहती। सब कुछ याद रखना चाहती हूँ—आपको और माँ को राजा को, सबको। आप मेरा यह पत्र रख लें। इसके साथ अमृत की शीशी राजा के पास भेज दीजिएगा और कभी कभी मेरी याद करते रहिएगा।

यह कहकर रोती हुई कागुया उड़नखटोले पर बैठ गई। उड़नखटोला चन्द्रलोक की ओर उड़ चला। लोग बुत बने देखते रह गए।

तार्केतोरिनो ने कागुया की चिट्ठी और भेंट राजा के पास भेज दी। राजा ने पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था, "मैं आपकी याद सीने से लगाए हुए चन्द्र-लोक जा रही हूँ। मेरी प्रार्थना है कि आप यह अमृत पीकर मुझे भूल जाएँ।"

राजा कागुया की चिट्ठी पढ़कर बेचैन हो उठा। उसने कहा, "जब कागुया ही नहीं रही तो मैं सुखी होकर क्या करूँगा?"

इतना कहकर उसने आज्ञा दी कि कागुया के सारे पत्र और अमृत का प्याला फूजीयामा पहाड़ की चोटी पर लेजाकर जला दिया जाए।

कहा जाता है कि उन पत्रों के जलने से जो आग पैदा हुई वह अमृत का संयोग पाकर अमर हो गई। आज तक वह आग बुझी नहीं और फूजीयामा¹ की चोटी से धुआँ निकलता रहता है।

आज भी चोटी से धुआँ निकलता रहता

ज्ञान सरोवर

१ फूजीयामा जापान का एक ज्वाला-मुखी पर्वत है। [illegible]

आदमी के शत्रु कीड़े

संसार मे जितने कुल जानवर है, उनमे ७५ फ़ीसदी कीडे मकोड़े है। वैज्ञानिको की छान बीन से पता लगा है कि कीड़े मकोड़े आदमी के पैदा होने से बहुत पहले इस धरती पर पैदा हो चुके थे। वे लगभग ५० करोड़ वर्ष से इस धरती की छाती पर रेंग रहे है।

आदमी को पैदा होते ही कीड़े मकोड़ो से पाला पड़ा। उनके साथ आदमी का गहरा सम्बन्ध कायम हो गया। जिन कीडो को उसने लाभदायक पाया उन्हे पाल पोसकर लाभ उठाया, और जिन कीड़ो को उसने अपने लिए हानिकर पाया उनसे वह लड़ भिड़कर अपनी रक्षा करता रहा। पर हानिकर कीडों की तादाद बहुत अधिक थी। उनसे निपटना जरा कठिन था। वे आदमियो और पालतू पशुओ मे तरह तरह के रोग फैलाते रहते थे। आज भी ६० फ़ीसदी मौते केवल छोटे से मच्छर के कारण होती है। मक्खियो से हैजा, पेचिश और दूसरी अनेक बीमारियाँ फैलती है। आदमी कीड़ो

से बराबर लड़ता आया है, और जैसे जैसे उसका अनुभव और ज्ञान बढ़ता
गया है, वैसे वैसे वह इस लड़ाई में सफल होता गया है। फल यह हुआ
है कि आज बहुत से देशों में कई तरह के हानिकारक कीड़े लगभग बिल्कुल
नष्ट कर दिए गए हैं।

अधिकतर कीड़े मकोड़े अंडों से निकलने के बाद कई कई हालतों से
गुज़रकर अपने असली रूप में आते हैं। कीड़े दो तरह के होते हैं। एक
तो वे हैं जो पैदाइश के समय से ही आकार के सिवा रंग रूप में बिल्कुल अपने
माँ बाप जैसे होते हैं—जैसे टिड्डी, झींगुर आदि। दूसरे वे हैं जिनके
बच्चे अंडों से निकलने के बाद कई अवस्थाओं में से होकर तब माँ बाप की
शक्ल पाते हैं।

बहुत से कीड़े ऐसे होते हैं जो थोड़े दिनों में ही लाखों अंडे दे डालते हैं।
उनकी मादाएँ एक खास स्थान और वातावरण में अंडे देती हैं। पौधों पर
रहने और पलनेवाले कीड़े पत्तों, तनों, फलों या फूलों पर अंडे देते हैं। पशु
पक्षियों के शरीर पर रहनेवाले कीड़ों के अंडे पशु पक्षियों के बाल, खाल या
गोश्त पर पाए जाते हैं। अंडों से बच्चों के निकलने के लिए एक खास तापमान
और नमी की जरूरत होती है। अंडे से ताज़ा निकले हुए कीड़े को अंग्रेज़ी में
'लार्वा' कहते हैं। अंडे से बाहर आते ही लार्वा जी खोलकर खाना पीना शुरू
कर देता है। बरसात के मौसम में पौधों पर ढेरों रंग बिरंगे लार्वे पाए
जाते हैं। उनमें कुछ के शरीर पर लंबे काँटे होते हैं। छूने से उन काँटों की
नोक टूट जाती है, और उनमें से एक तरह का ज़हरीला रस निकलने लगता है।
यह रस अगर आदमी के शरीर में लग जाए तो खुजली पैदा होने लगती है।
हानिकर कीड़े प्रायः लार्वे के रूप में ही सबसे अधिक हानि पहुँचाते हैं।

लार्वा बड़ा होकर 'प्यूपा' कहलाता है। प्यूपा की शक्ल में आने पर उसका खाना पीना बंद हो जाता है, और उस पर एक पतली सी झिल्ली चढ़ जाती है। झिल्ली के फटने पर वह कीड़े के असली रूप में आ जाता है।

घरेलू मक्खी हानिकर कीड़ों की उन अनेक किस्मों में से एक है, जिनमें से हर एक की संख्या दुनिया में बहुत अधिक है। 'भिन भिन' करनेवाली छोटी सी मक्खी आदमी के लिए शायद शेर और चीते से भी ज्यादा खतरनाक है। मक्खी को बीमारियों की सवारी कहना चाहिए। और वह भी हवाई जहाज जैसी तेज सवारी, क्योंकि वह पलक मारते बीमारी के कीड़ों को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा देती है।

घरेलू मक्खी
(कई गुना बड़ा आकार)

गंदगी में ही बीमारी के कीड़े होते हैं, जिनके कारण लोग बीमार पड़ते हैं या मरते हैं। मक्खी को गंदगी ही प्यारी है। वह अदबदाकर गंदी चीज़ों पर बैठती है। फिर अपने परों और पैरों में गंदगी लगाकर खाने पीने की चीज़ों पर जा बैठती है। इस प्रकार उन चीजों के साथ हमारे पेट के अंदर बीमारी के कीड़े पहुँच जाते हैं।

संग्रहणी, हैजा आदि छूत की बीमारियाँ मक्खी के ही कारण फैलती हैं।
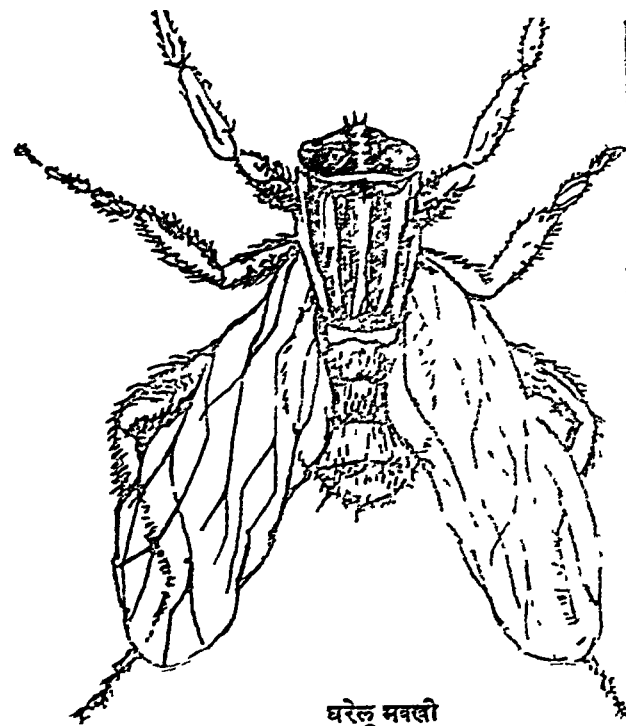
...टाइफाइड, हैजा आदि रोग भी मक्खी ही
कहा जाता है कि प्लेग
फैलाती है। मक्खी के कारण हर साल न जाने कितनी जानें
जाती हैं। यही कारण है कि हर देश और हर जाति के लोग
मक्खी से घृणा करते हैं।

जिन जगहों पर जूठन पाखाना लीद, सड़ा हुआ गोबर बदबूदार
कूड़ा करकट आदि पड़ा होता है, मक्खी उन्हीं जगहों पर अंडे देती है।
उसकी नस्ल इस तेजी से बढ़ती है कि सोचकर हैरत होती है। मादा मक्खी
एक बार में कुछ नहीं तो १००–१५० अंडे देती है। उसके अंडे गोल और
बहुत छोटे छोटे होते हैं। इतने छोटे कि सटाकर रखने पर एक इंच जगह में
करीब ७५ अंडे आ जाएंगे। मक्खी के अंडे में से कम से कम १० और
अधिक से अधिक २४ घंटे में बच्चे निकल आते हैं।

मक्खी के बच्चों को अंग्रेजी में 'लार्वा' कहते हैं। लार्वा ३ से ७ दिन
के भीतर पूरी तरह बढ़ जाता है। इन तीन से सात दिनों के बीच वह
तीन बार केंचुल बदलता है। पूरी तरह बड़ा होकर वह कूड़ा, लीद आदि
में रेंगना और जमीन में बिल बनाना शुरू कर देता है। कुछ ही दिनों में
लार्वा की शक्ल फिर बदलती है। इस नई शक्ल के बच्चे को 'प्यूपा' कहते
हैं। प्यूपा शुरू में पीला होता है। लेकिन थोड़े ही दिनों में उसका
रंग गहरा भूरा हो जाता है। प्यूपा तीन से छै दिन में मक्खी
बन जाता है। उसके ऊपर एक झिल्ली होती है। जब वह झिल्ली फट
जाती है तो उसमें से परदार मक्खी निकल आती है। मादा
मक्खी उड़ना शुरू करने के तीन चार दिन बाद से ही अंडे
देने लगती है। यही कारण है कि मक्खियों की सेना

बहुत ही छोटे लार्वे (ऊपर का चित्र) और प्यूपे (नीचे का चित्र) खुर्दबीन से ऐसे दिखाई देते हैं।
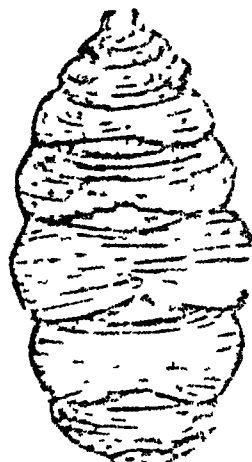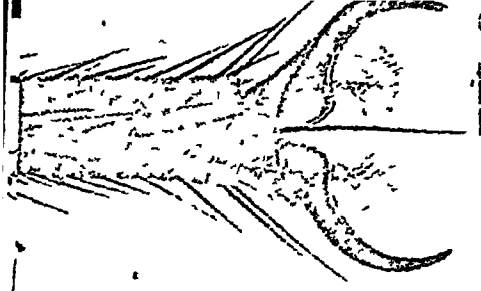
ख़ुर्दबीन से देखने पर मक्खी की नन्ही सी टाग (ऊपर का चित्र) और नन्ही सी जवान (नीचे का चित्र) कैसी डरावनी लगती है।

तेजी से वढ़ती रहती है।

मक्खी डील डौल मे वहुत छोटी होती है। उसके शरीर के तीन हिस्से होते है—सिर, पेट और मुँह। उसकी गर्दन लचकदार होती है, जिससे वह अपने सिर को इधर उधर घुमा सकती है। उसका मुँह चोच की तरह होता है। मक्खी उस चोच से ही खाती पीती है और उसमे ही उसकी लार इकट्ठा होती है। मक्खी के कद को देखते हुए उसकी आँखे वहुत वड़ी होती हं, और उसकी एक आँख मे क़रीव ४,००० छोटी छोटी चित्तियाँ होती है। उसके पख और पैर पेट से जुड़े होते है।

मक्खियो से वचने के कई तरीके निकल आए है। उन तरीकों को अपनाकर हम इस छोटी मगर ख़तरनाक चीज से वच सकते हैं। मक्खी से वचने के खास तरीके दो है। पहला तरीका तो यह है कि मक्खी के परिवार का वढना रोका जाए, और दूसरा तरीक़ा यह है कि उन्हे नष्ट कर दिया जाए। हम वता चुके है कि मक्खी गंदगी मे ही अडे देती है। इसलिए अगर गदगी पैदा ही न होने दी जाए या होते ही उसे साफ कर दिया जाए, तो मक्खियो का पैदा होना वहुत हद तक रुक जाएगा। थोडी वहुत जो कही कोने अँतरे मे पैदा भी होगी, वे अधिक हानि नही पहुँचा सकेगी। कारण यह है कि जव उनके अड्डा जमाने के लिए आस पास सड़ी, गली और गंदी चीजे न होगी, तो वे हमारी खाने पीने की चीजो मे रोग के कीड़े न मिला पाएँगी। मगर इसका मतलव यह
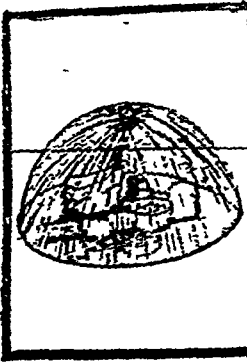
बारीक जाली से ढक कर रखी खान की चीजें
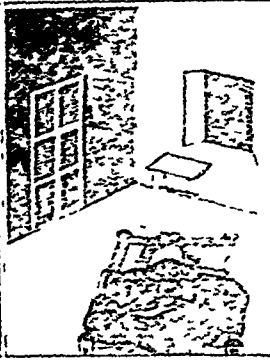
बारीक जाली लगे दर्वाजे और खिडकियाँ

कीडामार दवाएँ छिडककर मक्खी मारने का दृश्य

नही कि जो मक्खियाँ रह जाएँ, उन्हें घर मे घुसने दिया जाए और खाने पीने की चीज़ो पर आजादी से बैठने दिया जाए। दर्वाज़ो और खिड़कियो पर जाली या पर्दे लगाकर उन्हे घर मे आने से रोकना, और खाने पीने की चीज़ों को ढककर रखना ज़रूरी है।

लेकिन मक्खियो से जान बचाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उन्हें नष्ट कर दिया जाए। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। कई देशो मे कामयाबी के साथ ऐसा किया जा चुका है। मक्खियो को नष्ट करने की कुछ दवाएँ अब हमारे देश मे भी प्रचलित हो गई है, जिनका इस्तेमाल बड़े पैमाने पर किया जा सकता है।

गीली चीजो पर बैठना मक्खियो की आदत है। कही भी कोई गीली चीज़ मिली कि मक्खी उसके किनारे बैठकर चाटने लगेगी। इसलिए कुछ जहर मिली गीली दवाएँ घर मे रख दी जाएँ, तो झुंड की झुंड मक्खियाँ मारी जा सकती है।

अगर पानी मे एक फीसदी 'कमर्शियल फार्मलेन' मिलाकर उसमे थोड़ी सी चीनी डाल दी जाए, तो अच्छा मक्खीमार घोल बन जाएगा। उस घोल को थोडा थोड़ा बर्तनो मे डालकर उन्हे घर मे कई जगह रख देने से मक्खियो की तादाद मे काफी कमी हो सकती है। और भी कई कीडेमार दवाएँ है, जिनका इस्तेमाल करके मक्खियो को अडे बच्चे समेत समाप्त किया जा सकता

है। डी० डी० टी० अचूक मक्खीमार दवा है। इसे अच्छी तरह छिड़कने से मक्खियो पर फौरन असर पडता है, और वे तुरंत ढेर हो जाती हैं।

मक्खी मारने के लिए कई पाउडर भी वनाए गए है। घूरो पर या सफ़ाई के वाद नालियो मे उन पाउडरो को छिड़क देने से वहुत लाभ होता है। इधर कुछ दिनो से 'आल्ड्रिन' नाम की एक दवा भी इस्तेमाल की जाने लगी है, और वहुत सफल सावित हुई है। पर हज़ार दवाओ की एक दवा गंदगी से वचना है।

'नोज फ्लाई' या 'नाक की मक्खी' नाम की एक और मक्खी होती है, जो शक्ल सूरत मे लगभग घरेलू मक्खी जैसी ही होती है। वह वड़ी तादाद मे भेड़ो और वकरियों के दल मे घुस जाती है, और उनके मुँह, आँख या नाक के पास अडे दे देती है। उससे वचने के लिए भेड़ वकरियाँ इधर उधर भागती फिरती हैं और जमीन पर पैर पटकती है, पर उन्हे छुटकारा नही मिलता। जिस समय नाक की मक्खी के अंडो से उनके लार्वे निकलकर भेड़ वकरियो की नाक मे घुसने लगते हैं, उस समय उन जानवरों को वहुत कष्ट होता है। लार्वे नथुनों से होते हुए दिमाग़ की हड्डियों मे जाकर वैठ जाते हैं, और एक एक साल तक वहीं रहते है। वे कभी कभी साँस की नली या सींगो की खोल के अदर भी घुस जाते है। कभी कभी नाक की मक्खी आदमी की नाक या आँख के करीव भी अंडे दे देती है, जिससे कभी कभी आदमी अधे तक हो जाते है।

फ़सलों को नष्ट करनेवाले कुछ कीड़े पौधो के पत्तों और तनों को चवा डालते है। कुछ केवल

नाक की मक्खी (कई गुना बड़ा आकार)

पौधो का रस चूसकर ही जीते है। ऐसे कीड़ो की तादाद सबसे अधिक है जो नाज के दाने खाते है, और हर फसल मे हजारो मन गल्ला नष्ट कर डालते है।

टिड्डी चार परो से तेज़ उड़नेवाला एक पतगा है। टिड्डियाँ बडे बड़े झुंड बना कर चलती है। उनके झुड एक

टिड्डी

एक मील तक लम्बे होते है और जहाँ खडी फ़सलो पर टूटते है, वहाँ पूरी की पूरी खेती को चाट जाते है। जिन स्थानो पर औसत बारिश २५ इच से कम होती है, वहाँ टिड्डियो का हमला सबसे अधिक होता है। रेगिस्तानी टिड्डियो के दल लगभग हर साल उत्तर भारत मे आकर हरी भरी फसलो को बर्बाद करके आदमी को करोडों रुपए का नुकसान पहुँचाते है। जाड़ो के दिनो मे एक मादा टिड्डी लगभग १२० अडे देती है। उन अडो को वह एक थैली मे रखकर जमीन मे छेद करके दबा देती है। मई से जुलाई तक अपने आप बच्चे निकल आते है, और कुछ ही दिनो मे बडे हो जाते है। उनके बदन पर काले और नारगी रंग के धब्बे होते है। बच्चे बडे होकर बड़े बडे झुडो मे उडते और फसलो को बर्बाद करते हुए चलते है। टिड्डी की रोकथाम के लिए हमारे
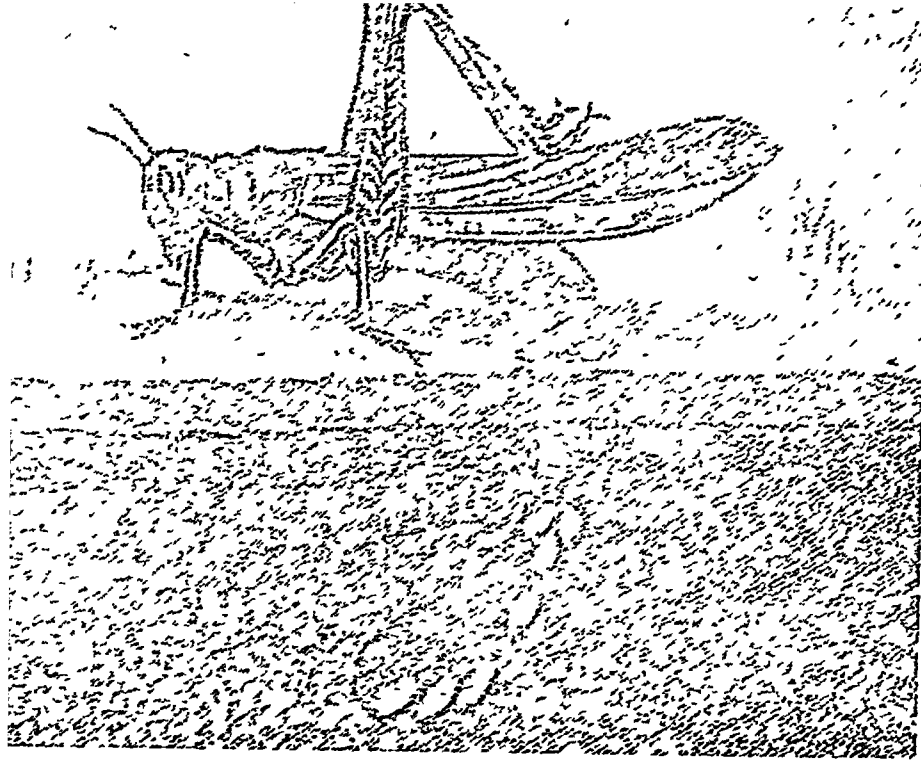
टिड्डी इसी तरह अंडा देती है।

देश में एक बहुत बड़ा सरकारी महकमा कायम है, जो टिड्डी दल के चलने से पहले ही सारे देश में सूचना दे देता है। टिड्डियों की रोक थाम कई तरह से की जाती है। अंडा देने के दिनो मे अंडों की खोज की जाती है और उनको बड़ी संख्या मे जमा करके नष्ट कर दिया जाता है। बच्चों को, अंडों से निकलने के बाद, खाइयों मे जमा करके मार डालते है। परदार पतंगो को मारना आसान काम नहीं होता। पर इंसान ने उनको भी मारने की तरकीबे निकाल ली है। हवाई जहाज के जरिए विषैली गैस छिड़ककर या तरह तरह की दवाएँ मिलाकर बनाया जानेवाला जहरीला चारा ज़मीन पर छिड़ककर टिड्डियों को आसानी से खत्म कर दिया जाता है।

आदमी की सबसे पहली आवश्यकता रोटी है। हमारे देश मे मनुष्यों की बहुत बड़ी संख्या आधे पेट खाकर ही दिन बिताती है। यह समस्या हल

करने के लिए जहाँ हमे खेती, अच्छे अच्छे कानून तथा उचित व्यापारिक नियमों की आवश्यकता है, वहाँ एक बड़ी जरूरत यह भी है कि हम अपनी फसलों को कीड़ों के हमलों से बचाए रक्खें, और नए औजारो, मशीनों और दवाओ से उनका मुकाबला करें।

खटमल एक छोटा सा गेरुए रंग का बेपख का कीड़ा है। जब आदमी आराम करता है तो वह उसको काटकर, उसका खून पीकर और ऊपर से एक असह्य दुर्गंध फैलाकर आदमी की नींद हराम कर देता है। यह दुर्गंध एक तेल जैसे पदार्थ से निकलती है, जो खटमल के जिस्म मे एक विशेष प्रकार की गिल्टियो से रिसता रहता है। ये गिल्टियाँ दूसरे और तीसरे पैरो के बीच दोनो तरफ होती है। दो बारीक छेदो से यह तेल निकलता रहता है। ये गिल्टियाँ बहुत छोटी होती है। इस बात का कोई सबूत नहीं मिलता कि दूसरे कीड़ों की तरह खटमल भी रोग के कीटाणु एक जगह से दूसरी जगह ले जाता है। खटमल के काटने से खाल मे जलन, हल्की सूजन और लाली पैदा हो जाती है।
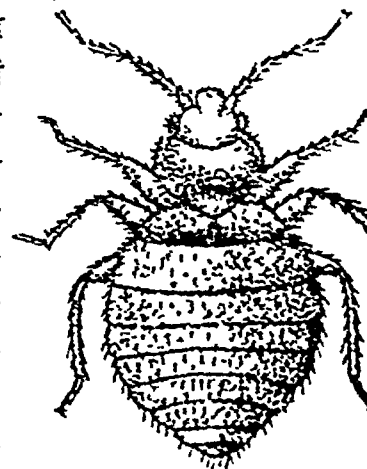
खटमल (कई गुना बड़ा आकार)

खटमल का मुख्य भोजन आदमी का खून है। आसानी से मनुष्य का खून प्राप्त करने के लिए यह कीड़ा मकानो, मुसाफिरखानों और सिनेमा-घरो वगैरह मे बिस्तरों, कुर्सियो, गद्दो और दूसरी लेटने बैठने की चीजो में छिपकर रहता है। खटमल का मुँह एक नली जैसा होता है। खटमल इंसान की खाल मे उस नली का सिरा घुसाकर खून चूस लेता है। खून से पेट

भर जाने के बाद यह नन्हा सा कीड़ा रेंगकर अपने अँधेरे घर में छिप जाता है। चारपाई की चूलें, कुर्सी के जोड़, दीवार के काग़ज़, दीवार और फ़र्श की दरारे भी इनके निवास स्थान है।

यदि कोई बाधा न पड़े तो खटमल को पेट भर भोजन प्राप्त करने में ३ से ५ मिनट तक लगते हैं। एक बार ख़ूराक प्राप्त कर लेने पर खटमल कई महीने तक जीवित रह सकता है। मुर्गियों, कुत्तों, पालतू चौपायों, खरगोश और चूहो जैसे गरम ख़ूनवाले जानवरों से भी खटमल अपनी ख़ूराक हासिल कर लेता है। पर आदमी का ख़ून उसे बहुत पसन्द है।

खटमल अपने सुरक्षित स्थान से आदमी तक आने जाने में बड़ी चतुराई से काम लेता है। इसे एक घर से दूसरे घर जाते हुए कभी नहीं देखा गया। एक स्थान से दूसरे स्थान तक इसके पहुँचने के साधनों में कपड़े, बिस्तर, इस्तेमाल मे आनेवाली मेज, कुर्सी, चारपाई और इसी तरह की दूसरी वस्तुएँ हैं। मादा खटमल अपनी ६ से ८ महीने की जिंदगी मे लगभग ५०० अंडे देती है। एक मादा एक दिन में तीन चार अंडों से अधिक नहीं देती। खटमल के बच्चे अपने माँ बाप की ही तरह होते है लेकिन उन्हे बड़े होने तक चार दफ़ा अपनी खाल बदलना पड़ती है। बड़े होने की अवधि चार से छे सप्ताह तक है।

खटमल का अंडा
(कई गुना बड़ा आकार)

खटमल मनुष्य को तकलीफ पहुँचाते है इसलिए उन्हें मार डालने की सफल रीतियाँ बताना आवश्यक है। चारपाई को पटक पटक कर खटमलों को बाहर निकालना और उन्हे मार डालना या चारपाई को धूप मे रखना या उसमे खौलता पानी डालना वगैरह तो हर आदमी जानता है। मेज़,

कुर्सी, चारपाई और खटमलो के छिपनेवाली दूसरी जगहो पर पानी मे डी० डी० टी० घोलकर छिडक देने से लगभग १२ महीने तक खटमल वहाँ पहुँचने का नाम नही लेते। पानी मे ५ प्रतिशत डी० डी० टी० डालकर छिडकने से पहले उसे पानी मे खूब घोल लेना चाहिए।

जीव, जन्तु और पौधे

खेती के लिए वन का महत्त्व

जिन बड़ी बडी सभ्यताओ का कभी सारे ससार मे बोलबाला था, आज उनका केवल नाम बाकी रह गया है। उनमे से कई इसलिए भी नष्ट हो गई कि उन्होने अपने देश के वनो और पेडो को काटकर अपनी

उपजाऊ धरती को रेगिस्तान बन जाने दिया। बाबुल और अदन के लटकते हुए बाग कभी दुनिया में अचंभे की चीज थे। पर आज उनका केवल नाम ही नाम रह गया है। मेसोपोटामिया में दजला और फ़रात नदियों के बीच की ज़मीन कभी दुनिया में अनाज की खत्ती कहलाती थी, पर आज वहाँ चारों ओर रेत ही रेत है। सीरिया (शाम) की प्राचीन सभ्यता, बालबैक और उसके जगत प्रसिद्ध एक सौ शहर आज रेगिस्तान में दबे पड़े हैं। इसी तरह भारत में राजपूताने के थार रेगिस्तान में सरस्वती की सभ्यता गुम हो चुकी है। थार का रेगिस्तान बढ़ता ही चला जा रहा है, और यदि पूरी कोशिश करके उसकी बाढ़ को न रोका गया, तो वह दिन दूर नहीं है, जब आज की दिल्ली और उसके आसपास का हरा भरा इलाका रेगिस्तान के पेट में चला जाएगा।

वन और खेती का चोली दामन का साथ है। यदि वन उजड़ गए तो समझ लो कि खेती थोड़े ही दिनों की मेहमान है। धरती पर सबसे पहले पेड़ ही पैदा हुए। पेडो ही ने धरती की ऊपरी मिट्टी को उपजाऊ बनाकर उसकी रक्षा की, उसे हवा और पानी के हमलों से बचाया।

जहाँ पेड़ होंगे वहाँ न अधिक सरदी होगी न अधिक गरमी, वहाँ मौसम सदा एकसा रहेगा। खेतों के इर्द गिर्द पेड़ अवश्य होने चाहिए। वे वायुमंडल को नम रखते हैं और फसलों को सूखने से बचाते हैं। इसीलिए रूस, चीन और जापान में आजकल खेती खुले मैदानों में नहीं, बल्कि पेड़ों की पाँतों के बीच बीच में की जाती है।

पहाड़ों पर मैदानों की ओर बहते हुए जल की तेज़ धारा को पेड़ ही रोकते हैं, जिससे धरती का कटाव और नदियों में बाढ का आना रुकता है। मैदानी इलाक़ों में पेड़ ही खेती को हवा के झोकों से बचाते हैं।

पेडो, झाडियो और घास से ढकी घाटी में धीरे धीरे बहता हुआ एक सोता

जहाँ पेड पौधे नही होते वहाँ मेह बरसते ही पानी तेजी से बह जाता है। वहाँ पानी मिट्टी को उपजाऊ बनाने के बजाए, बनी बनाई मिट्टी को बहा ले जाता है। इस तरह जब पानी को रोकनेवाली कोई चीज नही होती, तो नदियो मे बाढ आ जाती है। हमारे देश मे सालो से जगल कटते रहे है। इसीलिए बाढे अधिक आ रही है और उनका जोर बढता जा रहा है।

लोग तो यहाँ तक कहते है कि वन बारिश भी लाते है। चाहे यह बात सच हो या न हो पर इतना तो मानना ही पडेगा कि पेड बारिश के पानी को तुरन्त बह जाने से रोकते है। खेतीबारी के लिए यह आवश्यक नही है कि कितना पानी बरसा, बल्कि यह आवश्यक है कि जमीन मे उस पानी का कितना भाग रुका। पानी आया और बह गया तो किस काम का?

पेडो पर लगी या जमीन पर गिरी पत्तियाँ पानी को सोख्ते की तरह सोख लेती है। पत्तियाँ पेडो पर से झडकर मिट्टी मे मिलती रहती है। वे मिट्टी को उपजाऊ ही नही बनाती, उसे पानी रोकने की शक्ति भी देती है।

कुल्लू घाटी की हरियाली का एक मनोहर दृश्य

बिना सोचे समझे गांवो के इर्द गिर्द के छोटे

मोटे वनो के काटने का एक फल यह भी हुआ कि गाँववालो को जलाने के लिए लकडी नही मिलती। और कीमती गोवर जो खाद वनकर खेती की उपज वढाता है, ईंधन के रूप मे जलाया जाने लगा है। इसलिए जव तक गाँवो की खाली जमीनो मे फिर से पेड़ नहीं लगाए जाएँगे, तव तक न जमीन उपजाऊ वन सकेगी न ईंधन की समस्या ही हल हो सकेगी।

प्यासी ज़मीन का पेड़—झंड

पच्छिमी भारत मे पानी कम वरसता है। वहाँ की ज़मीन अक्सर प्यासी रहती है। इस कारण पजाव, राजस्थान, गुजरात और पच्छिमी उत्तर प्रदेश मे यमुना के वेहड़ों में मामूली पेड़ नहीं पनप सकते। वहाँ केवल झंड का पेड ही पनप सकता है और जगह जगह पाया भी जाता है। सूखे इलाको के लोगो को अपने अधिकतर कामों के लिए झंड का ही सहारा लेना पड़ता है। किसान अपने हल, पाथे, झोंपड़ी की वल्ली, थून्ही और वैलगाड़ी के सामान झंड की लकड़ी से ही वनाते हैं। झंड की लकड़ी सुन्दर, मजवूत और पाएदार होती है। जलाने के लिए उसका ईंधन वहुत अच्छा होता है, और उसका कोयला भी अच्छा माना जाता है। झड पंजाव और गुजरात तक ही नहीं, सिंध, वलोचिस्तान, ईरान आदि दूर दूर के पच्छिमी इलाको मे और दक्खिन के सूखे इलाक़ों मे भी पाया जाता है।

झंड का पेड़ वहुत वड़ा नहीं होता। वह झाड़ जैसा होता है। उसकी अधिक से अधिक ऊँचाई ५० फ़ुट और अच्छी ज़मीन पर झंड के तने का घेरा वहुत से वहुत चार फुट होता है। झंड वहुत धीरे धीरे वढता है। उसके

तने का घेरा कोई पचास वर्ष में चार फुट हो पाता है।

झड का पेड़ काँटेदार होता है, जिससे वह भेड़ बकरियों से बचा रहता है। पर उनमें तभी तक काँटे अधिक होते हैं जब तक पेड़ छोटा रहता है। बड़ा होने पर, जहाँ वह भेड़ बकरियों की पहुँच से ऊँचा हुआ कि काँटे कम होने लगते हैं। पत्ते छोटे छोटे होते हैं, जिनके सहारे वह कड़ी गरमी सहन कर लेता है। जब तक नए पत्ते नहीं निकल आते, तब तक पुराने पत्ते नहीं गिरते। यही कारण है कि झड का पेड दूर से सदा हरा भरा मालूम होता है। झड का बक्कल मोटा और मटमैले रंग का होता है। वह लम्बाई मे फटा होता है। झड का पेड टेढा मेढा होता है। उसका तना कभी सीधा नहीं होता।

झड बबूल का साथी है। बबूल भी झड की तरह सूखे इलाकों में ही उगता है। बहुत सी जमीनों मे झड और बबूल दोनों होते हैं। पर बबूल झड का साथ वहीं तक देता है जहाँ तक मामूली खुश्की होती है। जितना ही अधिक सूखा इलाका होगा, बबूल वहाँ उतने ही कम होंगे। यहा तक कि बेहद सूखे इलाके मे या उन जगहों में जहाँ पाला पडता है, झड अकेला ही रह जाता है।

झड राजस्थान की मटियाली जमीनों मे उगता है, रेतीली जमीनों मे नहीं। वहाँ लगभग हर खेत के किनारे झड के पेड दिखाई देते हैं। रेगिस्तान या रेतीली जमीन मे 'मेसकिट' बहुत अच्छी तरह

झड

उगता है। मेसकिट विदेशी पेड़ है, पर वह झंड की ही विरादरी का है।

झंड को अलग अलग जगहों पर अलग अलग नाम से पुकारा जाता है। उसे गुजराती मे 'सिमरू', या 'सुमरी', सिधी मे 'कँडी', राजस्थानी मे 'खेजड़ा', मराठी मे 'शीमा' या 'सौनदर', कन्नड मे 'वन्नी', तामिल मे 'जम्बू' या 'पाराम्वे', तेलुगू में 'जम्वी', और वैज्ञानिक भाषा मे 'प्रौसोपिस स्पेसीगेरा' कहते है।

जिस जमीन की मिट्टी नदियों की वाढ से हर साल नम होती रहती है, उस जमीन मे झंड वहुत अच्छी तरह उगता है। उसकी मूसल जैसी जड़े वहुत गहरी जाती है, और उनके लिए ५०–६० फुट तक गहरे पहुँचकर पानी की सतह पा लेना वहुत आसान होता है।

झंड के पत्ते जाडों के अंत मे धीरे धीरे कम होने लगते है। और गरमी शुरू होने पर झंड मे नए पत्ते आ जाते है। नए पत्तो के साथ साथ झंड मे वसती रंग के फूलों के ढेरों लटकन निकल पड़ते है। मई जून तक उसमे फलियाँ आ जाती है, जो जुलाई अगस्त तक पक जाती है। वरसात मे झंड की फलियाँ झडकर नीचे गिर जाती है और उसके वीज मिट्टी मे मिलकर सड़ जाते है। झंड के सव वीज नहीं जमते। जो जमते भी है, वे वहुत कठिनाई से।

वारिश मे झड की पौध जगह जगह जम जाती है, और किसान लोग, छोटे पौधो को उखाड़कर खेतो की मेड़ पर लगा लेते है। यदि सिंचाई न की जाए तो छोटे पौधों की वढन वहुत कम होती है।

छोटी पौध को पाले से वचाना जरूरी है। चूहे, वीज और पौध दोनो को ही नुक़सान पहुँचाते है। झड के पेड़ की पत्ती को ढोर, भेड़, वकरी और ऊँट आदि वड़े चाव से खाते है। इसलिए झंड का पेड़ लगाने में उसे जानवरों से वचाने की समस्या ही सवसे वड़ी समस्या है।

गुणकारी और साएदार नीम

हमारे देश में तरह तरह के पेड हैं, पर नीम जैसा उपयोगी और साएदार पेड शायद कोई नहीं। शायद नीम ही एक ऐसा पेड है जो तराई, और बाढ के इलाकों को छोडकर और सब जगह होता है। नीम का पेड ऐसी जगहों पर भी नहीं होता जहाँ पानी भरता हो। इन तीन तरह की जमीनों को छोडकर नीम ककरीली, पथरीली, ऊबड, खाबड़, सूखी, नम, हर तरह की ज़मीन मे पैदा हो सकता है। पर असल में वह पश्चिमी भारत के उन इलाकों का पेड है जहाँ साल मे लगभग ३० इंच बारिश होती है।

नीम हमारे देश मे लगभग हर जगह पाया जाता है। पर वह इक्का दुक्का ही मिलता है, उसके वन देखने में नहीं आते। कुछ लोगों का कहना है कि नीम पहले भारत मे नहीं होता था। उसे ईरानी या अरब अपने साथ भारत लाए। पर इसका कोई सबूत नहीं मिलता। नीम को तेलुगू मे 'वेपा', और तमिल मे 'वेपा' कहते है।

पतझड के मौसम को छोड़कर नीम सदा हरा भरा रहता है। बडा

होने पर उसके तने के ऊपर का हिस्सा छतरीनुमा हो जाता है। उसकी छाल पतली और खुरदरी होती है। उसका ऊपरी रंग कालापन लिए हुए भूरा, और भीतरी रंग लाली लिए हुए कत्थई होता है। नीम के पेड़ मे मोटी मोटी डालियाँ होती है, जिनमे से पतली पतली डालें निकलती हैं। उन्ही पतली पतली डालों के दातुन बनते है। नीम के पेड़ मे मार्च से अप्रैल तक नए पत्ते आ जाते है, और पुराने पत्ते झड़ जाते हैं। पर पेड़ कभी नंगा नही होता। उसके नीचे सदा साया बना रहता है। साए के लिए ही नीम के पेड़ सड़कों के किनारे लगाए जाते है। नीम की डाले अप्रैल से मई तक छोटे छोटे सफ़ेद फूलो से ढक जाती है। उन फूलो से मीठी मीठी सुगन्ध आती है। फूलो के बाद नीम के पेड़ में अनगिनत निबोलियाँ आ जाती है, जो जुलाई से अगस्त तक पककर गिर जाती है। लगभग उसी समय से उसके बीज जमने लगते है, और सितवर के महीने तक नीम के पेड़ो के आस पास की ज़मीन छोटे छोटे पौधों से ढक जाती है। निबोलियो मे आम तौर से एक ही बीज होता है, पर किसी किसी मे दो बीज भी होते है।

अपने आप उगे हुए कुछ ही पौधे बड़े हो पाते है। आम तौर से गाय, बैल, बकरी आदि जानवर उन्हे चर जाते है। पर उन पौधो को मिट्टी समेत खोदकर दूसरी जगह रोपना बहुत आसान होता है, और उसे काँटो से रूँधकर जानवरो से बचाया जा सकता है। जानवरों के अलावा नीम के पौधो को पाले और आग से बचाना ज़रूरी है।

कँटेदार झाड़ियो के बीच नीम का एक

नीम को छोटी उमर में छाँट दिया जाए तो उसमें नए कल्ले फूट आएँगे। पर बाद में मार जाने या जल जाने पर वह मर जाता है। उसमें फिर कल्ले नहीं फूटते।

नीम की लकड़ी बहुत मजबूत और टिकाऊ होती है। खेती के सामान और घर बनाने में उसका काफी उपयोग होता है। नीम के पत्तों को उबालकर या जलाकर उससे साबुन और दाँत के मंजन बनाए जाते हैं। नीम के पत्तों के बराबर बीमारी के कीड़े मारनेवाली चीज शायद ही कोई हो। पत्ते उबालकर उनके पानी से हर तरह के घाव धोए जाते हैं। नीम के सूखे पत्ते कपड़ों को कीड़ों से बचाने के काम आते हैं। नीम ठंडक देता है, खून को साफ करता है, और आँख की रोशनी बढ़ाता है। नीम की छाल, गोंद और निबौली भी दवाएँ बनाने के काम में आती हैं। उसके बीज से तेल निकलता है। नीम की लगभग हर चीज बड़े काम की है। किसी किसी पुराने नीम के पेड़ से सफेद सफेद रस बहने लगता है। वह रस भी अनेक रोगों की दवा है।

घनी छाँहवाला सुन्दर अशोक

अशोक हमारे देश का पेड़ नहीं है। वह भारत को श्रीलंका की भेंट है। कहा जाता है, लंका के राजा रावण ने सीताजी को ले जाकर अशोक वाटिका में ही रखा था।

(२११८

ज्ञान सरोवर
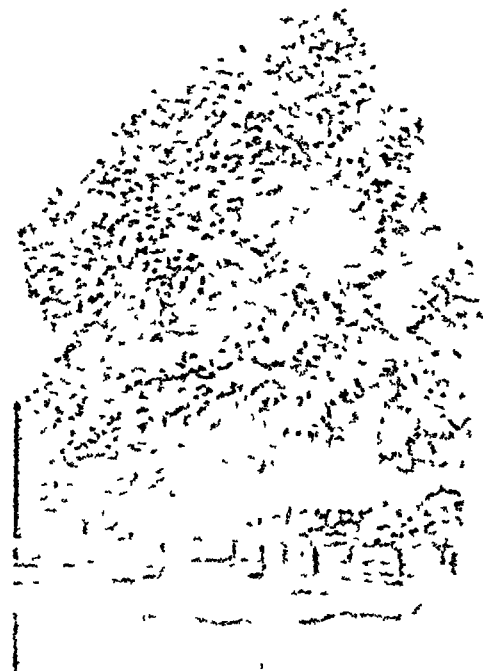
नई दिल्ली की एक सडक के दोनों ओर अशोक की कतार

भारत मे आज अशोक लगभग हर जगह मिलता है। दक्खिन मे मंदिरो के इर्द गिर्द और तालाबो के किनारे वह बहुतायत से लगाया जाता है। यात्री उसकी छाया मे आराम करते है।

अशोक का पेड़ बहुत सुन्दर होता है। वह अपनी हरियाली और घनी छाया के कारण लोकप्रिय है। उसका तना सीधा होता है। अशोक का पेड़ जब बड़ा हो जाता है, तो उसकी डाले तने से बाहर की ओर सीधी निकलती है। पत्ते गहरे हरे रंग के होते है। उन्हे देखकर जान पड़ता है जैसे उन पर गहरे हरे रंग की पालिश की गई हो। पत्ते गावदुम से होते है और उनके किनारे बड़ी खूबसूरती से ऊँचे नीचे होते चले जाते है।

मार्च के महीने मे अशोक मे धानी रंग के फूल आते हैं। वे अपने कोमल लटकनों पर छाए हुए होते है। अशोक के फल अंडे की शक्ल के होते हैं, और हर फल में एक ही बीज होता है।

अशोक का पेड़ बहुत धीरे धीरे उगता और बड़ा होता है। वह उन्ही जगहों मे उगता है जहाँ श्रीलंका जैसा जलवायु हो। अशोक हमारे देश के पच्छिमी भाग मे नहीं उग पाता, क्योकि वहाँ बारिश कम होती है और आए दिन लू आँधियाँ चला करती है।

अगस्त के महीने मे अशोक के फल ज़मीन पर गिरकर बिखर जाते हैं। अशोक की पौध तैयार करने के लिए उसके बीजों को तुरंत बो देना चाहिए, क्योकि वे टिकाऊ नही होते। बीज उगने पर पौध को गमलों या छोटी छोटी टोकरियों मे दो बरस तक पालकर फिर कहीं भी लगाया जा सकता है।

अशोक का पौधा कोमल होता है। उसे पाले और लू दोनों से बचाना जरूरी होता है। उसकी सिंचाई भी जरूर करना चाहिए। सींचे बिना उसका बढ़ना कठिन होता है। थाले के चारों ओर की मिट्टी को गोड़ते रहने से वह जल्दी बढ़ता है।

लोग अशोक को केवल छाया और शोभा के लिए लगाते हैं। स्कूलों, पंचायतघरों, और दूसरी इमारतों के इर्द गिर्द लगाने के लिए अशोक से अच्छा कोई दूसरा पेड़ नहीं समझा जाता। उसकी लकड़ी चाहे किसी काम न आती हो, पर वातावरण को शीतल बनाए रखने में वह बेजोड़ है।

निराली सजधज का पेड़ गुलमोहर

गुलमोहर जैसी सजधज का पेड़ शायद ही कोई और हो। गर्मियों में जब गुलमोहर की डालियों पर लाल लाल फूल छा जाते हैं, तो दूर से देखने में ऐसा लगता है मानो किसी ने ढेरों गुलाल छिड़क कर डालियों को रंग दिया हो।

सजधजा गुलमोहर

गुलमोहर सदा-बहार बारहमासी पेड है। उस पर पतझड कब आया

यह मालूम ही नहीं होता। उसकी डाले और पत्तियाँ छतरी की तरह होती है। इसीलिए उसके नीचे घनी छाँह रहती है। पत्तियो का रंग चटकीला हरा होता है और वे डाले जिन पर पत्ते लदे होते है, दो फुट तक लम्वी होती है। गुलमोहर के लाल लाल फूल वहुत सुन्दर होते है। उनकी लम्वाई चार इच तक होती है। फूलो से फिर फलियाँ निकलती है। फलियाँ भी काफ़ी वड़ी होती है। कोई कोई तो दो फुट तक लम्वी होती है।

गुलमोहर हमारे देश का पेड़ नहीं है। उसे फ्रांसीसी लोग मेडागास्कर के टापू से लाए थे और उन्होंने पहले पहल उसे दक्खिन मे पांडेचेरी जैसी जगहों पर लगाया था। पर अपनी शोभा के कारण वह देश भर मे फैल गया।

गुलमोहर का वैज्ञानिक नाम 'प्वाइन्सियाना रेगिया' है। अंग्रेज़ी मे उसे 'गोल्ड मोहर' कहते है, जिससे हिन्दी मे 'गुलमोहर' वना है।

सौराष्ट्र मे गुलमोहर की एक और नस्ल होती है जिसे 'वरदे पहाडियाँ' कहते है। उसके फूल वसती और सफेद होते है। उसका पेड़ गुलमोहर के पेड़ से छोटा होता है, और उन जगहों मे उगता है जहाँ वारिश कम होती है। अच्छी और नम ज़मीन मे वह वहुत तेजी से वढ़ता है।

गुलमोहर की पौध लगाना कठिन नही होता। अगर फली मे से वीज को निकालकर उसे चौवीस घंटे गरम पानी मे भिगोने के वाद वोया जाए तो जल्दी अंकुर फूट आते है। वीज का छिलका इतना सख्त होता है कि विना भिगोए वोने से अँखुआ छिलके को आसानी से फोड़ कर वाहर नही निकल पाता। अँखुए फूटने के वाद पेड़ तैयार होने मे वस एक ही वाधा रह जाती है, और वह है पाले का ख़तरा। पौधे को पाले से वचाना कोई कठिन काम नही है। उसे घास से ढक देने से पाले का ख़तरा दूर हो जाता है।

गुलमोहर का पेड़ बहुत दिनों तक नहीं रहता क्योंकि इसकी जड़ें ज़मीन में बहुत गहरी नहीं जाती। वह आंधी या तेज़ हवा में उखड़ सकता है।

गुलमोहर बस देखने में ही भड़कीला होता है। इसकी लकड़ी किसी काम में नहीं आती। यहाँ तक कि इसका ईंधन भी अच्छा नहीं होता। फिर भी अपनी सुन्दरता के बल पर वह लोकप्रिय बना हुआ है।

देसी कौआ या काग

भारत पाकिस्तान श्रीलंका और बर्मा में कौए बहुत होते हैं। भारत में तो कौओं से अधिक तादाद शायद ही किसी और पक्षी की हो। शायद ही कोई घर गांव या शहर होगा जहां दिन में अनेक बार कांव कांव की आवाज सुनने को न मिलती हो। चाहे जंगल हो या समुन्दर का किनारा, होटल हो या तालाब, घर हो या खेत, रेलवे स्टेशन हो या नदी का घाट हर कहीं कौआ अवश्य विराजता मिलेगा, चाहे दूसरा कोई पक्षी मिले या

...मुंडेर पर से कौआ उड़ाने का एक दृश्य
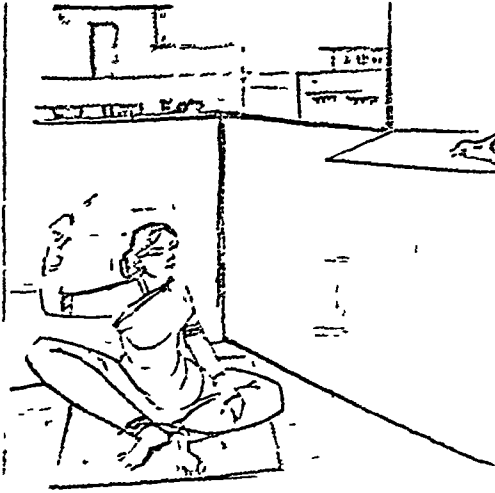
न मिले। यहाँ तक कि जो जगहें समुन्दर की सतह से ४ हज़ार फुट की ऊँचाई पर हैं, वहाँ भी उसकी पहुँच है।

पर एक शर्त है। कौए वहीं रहेंगे, जहाँ आदमी हों। आदमी अगर जंगल या रेगिस्तान मे पहुँच जाए, तो पीछे पीछे कौआ भी ज़रूर पहुँचेगा और अगर सुन्दर से सुन्दर राजमहल में भी किसी आदमी का वासा न हो, तो कौआ वहाँ पर भी न मारेगा। इसीलिए पुराने लोग कहा करते हैं कि जहाँ भी कौए दिखाई दे जाँय, समझ लो कि आदमी वहाँ जरूर होगा या आनेवाला होगा। शायद काग के इसी गुण पर रीझकर भारत की स्त्रियों ने यह मान लिया है कि घर की मुँड़ेर पर कौए का बैठना किसी परदेसी मेहमान के आने का लक्षण है। देहातों में यह बात इस तरह मान ली गई है कि कहीं कहीं तो घर की मुँड़ेर पर से कौए को उड़ाने का रिवाज पड़ गया है। लोगों का, खास तौर से औरतों का, ख्याल है कि हो सकता है, कौआ मुँड़ेर पर एक बार यों ही बैठ गया हो। इसलिए उड़ाकर देख लो कि वह फिर मुँड़ेर पर बैठता है कि नहीं। अगर वह दूसरी बार भी बैठ जाए तो निश्चित समझो कि कोई पाहुना आ रहा है। जिस समाज मे ऐसी धारणा मौजूद हो उस समाज के कवि भला कैसे पीछे रह सकते थे? हिन्दी के अनेक कवियों की विरहिणी नायिकाएँ कौए को 'पिय का संदेसा लानेवाला' कहती हुई मिलेंगी। प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत की नायिका,

नागमती, कहती है—
"पिय सों कह्यो सदेसडा,
हे भौंरा ! हे काग !"

चोंच से लेकर दुम तक कौए की लंबाई लगभग डेढ फुट होती है। गर्दन और छाती को छोड़कर उसका बाकी शरीर काला और चमकीला होता है । गर्दन और छाती का रग मटमैला भूरा होता है। छाती से नीचे के अग काले तो होते है, पर चमकदार नही होते। उसी तरह पख भी काले होते है, पर उन पखो के किनारो पर नीली, हरी या बैंगनी चमक होती है। कौओ की कई जातियाँ होती है, लेकिन उनमे बहुत कम फर्क होता है । काले पखो पर चमकने वाले रगो के फर्क से ही उनकी जाति पहचानी जाती है।

देसी कौआ

कौए आम तौर से मैदानो मे रहते है । कभी कभी वे आदमी के पीछे पीछे नीलगिरि और हिमालय पहाड के ६–७ हजार फुट ऊँचे स्थानो पर भी पहुँच जाते है । पर वे वहाँ टिकते कम है, क्योकि एक तो वहाँ की सर्दी उनसे नही सही जाती, दूसरे उन्हे अपने पहाडी भाई बदो से खतरा रहता है ।

कौए को मनुष्य की तरह सगठन का यानी मिलकर रहने का शौक है । वे झुड के झुड एक साथ रहते है । इतना ही नही वे अक्सर हजारो की तादाद मे एक ही पेड पर या आसपास के कुछ पेडो पर बसेरा करते है, और दूसरे दिन सवेरे साथ साथ ही अपने दिन के धधे पर रवाना हो जाते है ।

सवेरे झुंड के झुंड कौओं का किसी जगह से गुजरना और शाम को उसी तरह झुंड के झुंड लौटना किसने न देखा होगा ? सुबह को कौए तेजी से गुजर जाते हैं, क्योंकि वे भूखे होते हैं, और उन्हें चारा चुगने की जल्दी होती है। पर शाम को बसेरे की जगह पहुँचने के लिए उनकी वापसी दिन ढलने से घंटे दो घंटे पहले से शुरू होकर अंधेरा होने तक जारी रहती है। शाम को किसी गाँव के बाहर खड़े हो जाइए तो आसमान में जहाँ तक नजर पहुँचेगी, वहाँ तक पाँति की पाँति कौए ही दिखाई देंगे।

आदमी की संगत में रहते रहते कौए ढीठ और चोर हो गए हैं। इतना ही नहीं वे बटमारी भी करते हैं। उनका चुपचाप आँगन या कमरे में घुसना, बराबर चौकन्ना रहना और देखते देखते झट हाथ से रोटी छीनकर उड़नछू हो जाना आए दिन की बातें हैं। दूकानों से खाने की चीजों को ले भागना, उनके लिए मामूली सी बात है। बेचारे खोंचेवालों को तो कौओं से पनाह माँगते ही बीतता है। यहाँ तक कि वे रेल के डिब्बों में से भी मुसाफिरों के हाथ से खाने की चीजें झपट ले जाते हैं। और तो और कौए भगवान श्रीकृष्ण के साथ भी शरारत करने से नहीं चूके। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रसखान ने लिखा है -

"काग के भाग कहा कहिए
हरि हाथ सों ले गयो माखन रोटी।"

श्रीकृष्ण के साथ तो कौए ने शरारत भर की, पर भगवान राम के साथ तो उसने बदतमीज़ी भी की। रामायण में एक कथा है कि जब श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण और सीता के साथ वन में घूम रहे थे, तब जयंत नाम के एक ढीठ कौए ने सीताजी के शरीर में चोंच मारकर घाव कर दिया था, जिसके लिए श्रीराम ने उसकी एक आँख फोड़कर उसको सजा दी थी। यह कथा

पुराणो मे भी आती है। जयंत नाम के उस कौए को 'शक्रज' यानी इंद्र का बेटा बताया गया है, और वैसे भी शक्रज का अर्थ कौआ होता है। शायद इंद्र का बेटा कहकर प्रतीक रूप से यह बताया गया है कि कौए मे बिगडे हुए राजकुमारों के भी गुण होते है।

शायद राम द्वारा जयत की एक आँख फोडी जाने के बाद मे ही यह लोकोक्ति शुरू हुई कि कौए एक आँख के होते है। आम लोगो का ऐसा विश्वास है कि कौए की दोनो आँखो मे एक ही पुतली होती है, और उसी पुतली के जरिए वह कभी एक आँख से देखता है तो कभी दूसरी आँख से। इस प्रकार दोनो आँखो से देखता हुआ मालूम होते हुए भी वह किसी एक ओर देखता होता है। यह बात कौए के शरीर की बनावट को देखते हुए सच नही है। मगर उसके चौकन्ने रहने की इससे अच्छी और तारीफ नही हो सकती।

कौआ स्वभाव से ही सदा चौकन्ना रहकर अपनी ताक मे लगा रहनेवाला पक्षी है। इसीलिए कुछ पुराने कवियो ने अच्छे विद्यार्थी के पाँच लक्षणो मे से एक को 'काक-चेष्टा' कहा है। 'काक-चेष्टा का अर्थ है, चौकन्ना रहकर अपने काम मे ध्यान लगाए रहना।

ढीठ और निडर कौए से सिर्फ मनुष्य ही नही जानवर भी परेशान रहते है। गृद्धराज को तो देखकर दया आती है। बेचारे कौओ के गिरोह मे मन मारे बैठे रहते है और कौए उनकी पीठ पर फुदक फुदक कर उनके नाक मे दम कर देते है। बैलो और घोडो की पीठ पर भी कई कई कौए इकट्ठे बैठ जाते है, और कभी कभी काठी या जुए के कारण नर्म पडी हुई खाल को खोद खोद कर घाव " नर्म पडी खाल को खोद कर घाव " कर देते है। पर कभी कभी कौओ का आना
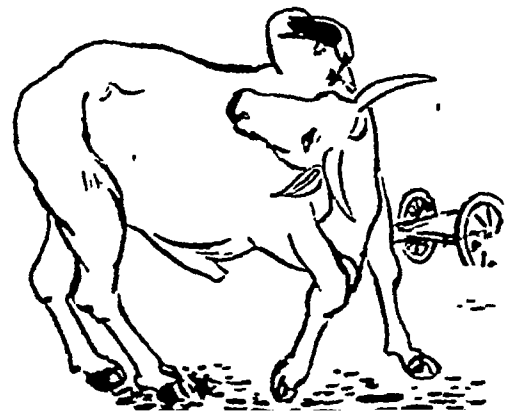
जानवर पसंद भी करते है। घोड़ो और वैलो की पीठ, गर्दन तथा पेट पर वहुत से कीड़े और मक्खियाँ अड्डा जमा लेती है और उन्हे वुरी तरह काटती है। ऐसे समय जव कौए पहुँच कर मक्खियो और कीड़ो को एक एक करके चट करने लगते है तो वैल, घोडे आदि जानवर वहुत सुख मानते है।

कौआ चोरी वटमारी करके स्वय तो लाभ उठाता ही है, पर कभी कभी आदमी को भी लाभ पहुँचाता है। इतना ही नही आदमी को लाभ पहुँचाने मे कभी कभी वह खुद हानि भी उठाता है। कौआ आदमी के रहने की जगह के ऐसे ऐसे कोनो की गंदगी साफ कर देता है, जहाँ कभी कोई भगी झाँके भी नही। यहाँ तक कि छोटे मोटे मरे हुए जानवर भी सड़कर वीमारियाँ फैलाने के लिए उससे नही वचते। कौए उन्हें भी साफ कर देते है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने कौए को 'चाडाल पक्षी' यानी 'डोम का काम करने-वाला पक्षी' कहा है। इस तरह वह अनेक वीमारियो से आदमी की रक्षा करता आया है। पर शायद इसी काम मे वह खुद तरह तरह की वीमारियो का शिकार हो जाता है। यो तो आम तौर से कौए की उम्र लगभग ४० साल की होती है, पर वे लगातार वड़ी संख्या मे मरते रहते है। जिन वाग-वगीचो मे रात के समय कौए वसेरा लेते है, वहाँ पेड़ो के नीचे और डालियों पर वहुतेरे मुर्दा कौए पाए जाते है। कारण यही है कि उन्हे तरह तरह की वीमारियाँ लगती रहती है। दूसरा कारण यह भी है कि वाज, गरुड़, उल्लू आदि वहुत से पक्षी कौओं की जान के गाहक होते है।

कौओं से आदमी और जानवर सभी परेशान रहते है। पर चिडियों की एक जाति कौओ को सदा से वेवकूफ़ वनाती आई है और वनाती रहेगी। वह है कोयल। कोयल का वंश कौए को वेवकूफ़ वनाकर ही वढ़ता है।

कौए का पीछा करते हुए वाज, गरुड और उल्लू

कौआ का घोंसला

कोयल अपने अंडे घोंसले में नहीं जमीन पर देती है, और उन अंडों को फौरन ही दूसरे पक्षियों के घोंसलों में पहुंचा देती है, ताकि सेने का झंझट दूसरों के सिर रहे। कोयल की इस चालाकी के शिकार सबसे अधिक कौए ही होते हैं। वे कोयल के अंडों को अपना समझकर सेते हैं। अंडे फूटने पर बच्चों को पालते पोसते रहते हैं, और बच्चे बड़े होकर उन्हें धता बताकर चल देते हैं। इसीलिए कोयल और कौए में पुश्तैनी दुश्मनी चली आती है, और कौओं के झुंड अक्सर कोयल का पीछा करते हुए देखे जाते हैं।

कौए और कोयल के अंडे लगभग एक जैसे होते हैं। मादा कौआ सिर्फ एक बरस की हो जाने पर अंडे देना शुरू करती है, और एक एक बार में ढेरों अंडे देती है। कौए के अंडे आकार में १.४५×१.०५ इंच के होते हैं। भारत के उत्तरी और पश्चिमी भागों में मादाएँ १५ जून से १५ जुलाई तक अंडे देती हैं। दूसरी जगहों पर वे अप्रैल या मई में भी अंडे देती हैं।

नर कौए अंडों को पालने के लिए पेड़ों की फुनगियों के पास घोंसले बनाते हैं। तरह तरह की लकड़ियों को जोड़ गाँठकर वे कटोरे की शक्ल के घोंसले तैयार कर लेते हैं। कोई कोई घोंसला तो इतना खूबसूरत होता है कि जैसे किसी कारीगर ने उसे गढ़कर बनाया हो। कौए घोंसले के अन्दर चारों ओर ऊन, रुई, गूदड़, घास, तिनके आदि लगाकर उन्हें बहुत गुलगुला और आरामदेह बना लेते हैं। कहीं कहीं कौओं के घोंसले तारों से बने हुए भी मिलते हैं।

हनुमान लंगूर

हमारे देश मे वंदरो की संख्या वहुत है। वंदर कई तरह के होते हैं। कुछ ऐसे होते हैं, जिनकी दुम आम वन्दरो की दुम से कहीं अधिक लम्वी होती है। ऐसे वदरो को लगूर कहते हैं। लंगूर की शारीरिक वनावट दूसरे वदरों से अधिक नाजुक होती है। लगूर भी कई तरह के होते हैं। पर उनमें हनुमान लगूर सवसे अधिक प्रसिद्ध है। इस तरह के लगूर केवल भारत और श्रीलका के कुछ भागो मे ही पाए जाते हैं। हमारे देश मे हनुमान लगूर हिमालय की तराई, वम्वई, गुजरात, पश्चिमी वंगाल और उड़ीसा मे पाए जाते हैं।

हनुमान लंगूर के माथे पर उल्टे वालों की एक तह होती है, जो छज्जे की तरह माथे को ढके रहती है। दूसरे लंगूरों की तरह उसके सिर पर वालों से उभरी हुई कोई रेखा नही होती। गालो पर के वाल इतने लम्वे नही होते कि कानों को ढक ले। उसके कान भी कुछ वडे होते हैं। उसके शरीर का रंग हल्का भूरा होता है, पर चेहरे, कान, हाथ और पैर का रंग कोयले की तरह काला होता है। उसकी दुम की लम्वाई शरीर की लम्वाई से भी अधिक होती है। किसी किसी नर हनुमान की लम्वाई सिर से लेकर दुम की जड़ तक तीस इंच तक होती हैं। औसत दर्जे के लंगूर की लम्वाई

२५ इच तक होती है। हनुमान लगूर की दुम की लम्बाई कहीं कहीं ३८ इच तक पाई गई है। किसी समय भारत में हनुमान लगूरों की संख्या बहुत

अधिक थी। वे जंगलों मे रहते थे, पर अक्सर आस पास की वस्तियों में भी पहुँच जाते थे। और वाजारों मे मनमाना खाते पीते थे। इस तरह जव लोगों को उनसे वहुत हानि पहुँचने लगी, तव वस्तियों मे उनकी रोक थाम होने लगी। यहाँ तक कि उनके उत्पात को रोकने के लिए उन्हें पकड़कर भारत से वाहर गैरआवाद देशो मे भेजा जाने लगा। इस प्रकार धीरे धीरे भारत में उनकी सख्या कम होती गई। पर आज भी आम तौर से लोग हनुमान लंगूर को वहुत पवित्र मानते है और कोई उन्हे कप्ट नही पहुँचाता।

अधिकतर हनुमान लंगूर झुड वनाकर रहते है, जिनमें नर, मादा, वच्चे, वूढ़े हर प्रकार के हनुमान होते है। छोटे छोटे वच्चे माँ के साथ ही रहते है। उनमे जो वहुत छोटे छोटे होते है, वे माँ के पेट से चिपके रहते हैं, और उनका चलना फिरना माँ की इच्छा पर होता है। झुंड का वुड्ढा नर प्राय: एकान्त जीवन विताता है। हनुमानों के झुड मे कभी कभी एक अनोखी घटना होती है। कुछ मादाएँ अपने वच्चो के साथ एक अलग टोली वनाकर रहने लगती है। शायद इसीलिए आम लोगों का ख्याल है कि नर और मादा हनुमानों की

अलग अलग टोलियाँ होती है। पर असल मे ऐसा है नही।

जंगलो मे रहनेवाले हनुमान पेड़ो की मुलायम टहनियाँ और पत्तियाँ खाते है। परंतु बाज़ारो और बस्तियो मे वे हर तरह के अनाज खाते है। वे स्वभाव से सीधे होते है और छेड़े जाने पर ही किसी पर हमला करते है।

हनुमान लगूर की आवाज़ बहुत तेज़ होती है। अक्सर जगलो मे उसकी चीख पुकार सुबह शाम सुनाई देती है। खुशी और खेल कूद की मस्ती मे वह एक पेड से दूसरे पेड पर ज़ोर ज़ोर से चीखता हुआ उछलता, कूदता और कुलाचें भरता है। क्रोध मे होने पर या किसी शत्रु को देख लेने पर वह बडी भद्दी आवाज मे चीखता है, जिसमे घृणा और भय दोनो प्रकट होते है। शेर के शिकारी इस आवाज को अच्छी तरह पहचानते है। शिकारियो को देखते ही हनुमान लगूर एक पेड से दूसरे पेड पर कूदता, फांदता और चिल्लाता हुआ उस ओर चल पडता है जिधर शेर गया होता है। इस प्रकार शेर का पता लगाने मे वह शिकारियो का सहायक सिद्ध होता है।

हनुमान लगूरो की टोलियो मे अक्सर लडाई हुआ करती है। उनकी लडाई का ढग बडा मनोरजक होता है। लडाइयाँ अधिकतर रहने की जगह या भोजन के स्थान के लिए होती है। एक अग्रेज लेखक ने उनके युद्ध का बडा मनोरजक वर्णन किया है। उसका कहना है कि दो टोलियो मे लडाई शुरु होने पर सबसे पहले एक टोली का सरदार दूसरी टोली के सरदार से कुश्ती लडता है। कुश्ती काफी देर तक होती रहती है, और दोनो टोलियो के लगूर आमने सामने जमीन पर बैठे हुए चुपचाप देखा करते है। जब किसी टोली का सरदार बहुत घायल होकर हारने लगता है तब जीतनेवाले सरदार की टोली दूसरी टोली पर टूट पडती है। फिर दोनो टोलियो मे गुरिल्ला
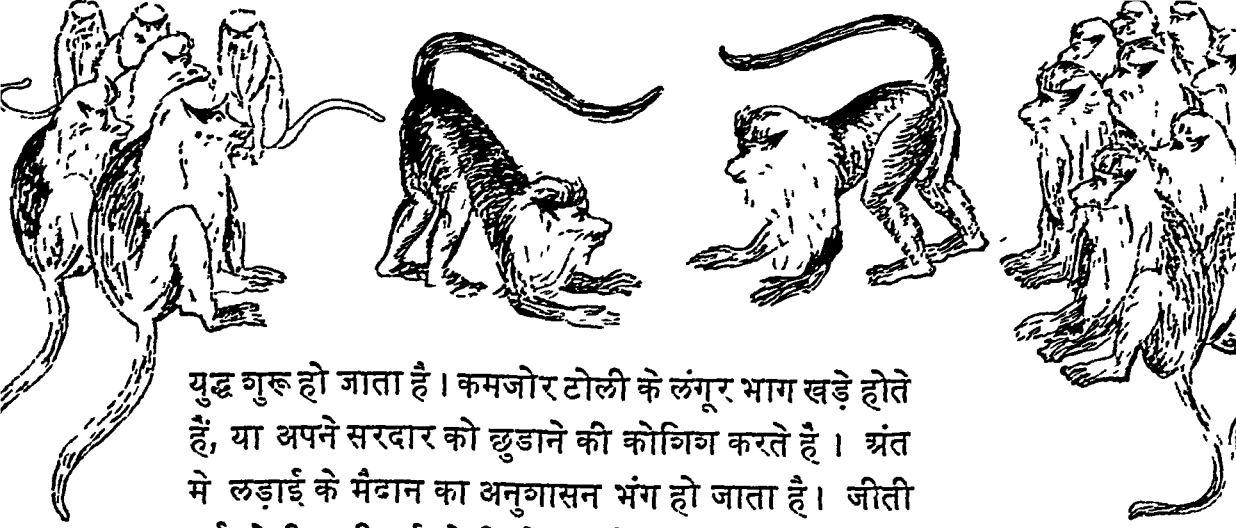
युद्ध शुरू हो जाता है। कमजोर टोली के लंगूर भाग खड़े होते हैं, या अपने सरदार को छुडाने की कोशिश करते है। अंत मे लड़ाई के मैदान का अनुशासन भंग हो जाता है। जीती हुई टोली हारी हुई टोली के लंगूरों को हिरासत मे लेने की कोशिश करती है, और जिन्हे पकड़ पाती है उन्हे अपनी कैद मे ले लेती है।

जिराफ़

जिराफ़ एक चौपाया है जो केवल अफ़्रीका में पाया जाता है। वह खुरवाले चौपायो की जाति का है, पर रूप रंग मे दूसरे चौपायों से बिल्कुल भिन्न होता है। उसकी गर्दन और अगले पैर बहुत लम्बे होते हैं। अपने बच्चों को दूध पिलानेवाले चौपायों मे जिराफ का कद सबसे ऊँचा होता है। शरीर का अगला भाग पिछले भाग से काफी ऊँचा और उठा हुआ होता है। सिर कोमल और लम्बा होता है। आँखे बडी बड़ी होती हैं, जिसकी वजह से वह दूर तक देख सकता है। उसके दो सींग होते हैं और दोनों आँखों के बीच माथे के नीचे सींग की तरह उभरी हुई एक हड्डी होती है। उस हड्डी को कुछ लोग तीसरा सींग भी कहते है। आँखों से ऊपर का भाग काफी उभरा हुआ

होता है। कान नुकीले और नथुने बड़े बड़े होते है। अपने नथुनों को वह इच्छानुसार बंद कर सकता है। उसकी जीभ काफी लम्बी होती है, जो दूर तक मुंह से बाहर निकल आती है। वह अपनी जीभ से खुराक को अच्छी तरह पकड सकता है। उसकी गर्दन पर काफी दूर तक बाल होते है। उसकी पूंछ काफी लम्बी होती है। दुम के सिरे पर बालो का एक गुच्छा होता है। अपनी शक्ल सूरत की वजह से उसे अर्द्ध रेगिस्तानी इलाको मे रहने मे बडी आसानी होती है।

जिराफ दो तरह के पाए जाते है। दक्खिनी अफ्रीका के जिराफ का रग हलका भूरा होता है। उसके पूरे शरीर मे जगह जगह पर गहरे बादामी या गहरे भूरे रग के धब्बे होते है। चेहरा बिल्कुल भूरे रग का होता है। शरीर और पैरो के निचले भाग का रग लगभग सफेद होता है। उस भाग मे धब्बे नही होते है। उत्तरी और मध्य अफ्रीका मे बादामी रग का जिराफ पाया जाता है। नर जिराफ की ऊँचाई सिर से पैर तक १८-१९ फुट होती है। मादा नर से एक आध फुट छोटी होती है।

जिराफ टोलियो मे रहते है। यह आवश्यक नही कि किसी टोली के सब जिराफ एक ही परिवार के हो। कम से कम आठ जिराफो की एक टोली होती है।

वड़ी टोलियों मे उनकी संख्या कहीं कही सोलह से भी अधिक होती है। हर टोली मे नर, मादा और सभी आयु के जिराफ होते हैं। इन जानवरो मे एक विशेपता यह है कि ऊँचे ऊँचे पेड़ो के वीच मे खड़े हुए जिराफ को वग़ैर अच्छी तरह देखे पहचानना और पेड़ो से अलग कर सकना कठिन होता है। सूरज की किरणे खास तरह से पड़ने और जंगल मे अँधेरा होने की वजह से यह धोखा और भी अधिक होता है। जव वे अपने को पेड़ पत्तों के वीच इस तरह छिपा लेते है, तो कोई अनुभवी शिकारी ही उनका पता लगा सकता है।

जिराफ़ की ख़ुराक पेड़ों की पत्तियाँ है। उन्हे वह अपनी लम्वी जीभ से नोच नोच कर खाता है। गर्दन लम्वी होने और शरीर की अनोखी वनावट के कारण उसे पानी पीने मे काफी मुश्किल का सामना करना पड़ता है। इसीलिए एक वार पानी पीकर ७–८ महीने तक जिराफ को पानी पीने की आवश्यकता नहीं होती। गर्दन से मिला हुआ शरीर का अगला भाग ऊपर को उठा होने की वजह से उसकी गर्दन आसानी से पानी तक नही झुक पाती। इसलिए जिराफ़ को पानी पीने से पहले खास तैयारी करना पड़ती है। उसको झटके दे देकर अपनी अगली टाँगे आगे की ओर, और पिछली टाँगें पीछे की ओर फैलाकर उनके वीच काफी फासला पैदा करना पड़ता है। जव उसकी टाँगे इस तरह आगे पीछे हो जाती हैं, तो उसकी गर्दन आसानी से नीचे आ जाती है। पैरों के वीच जितना अधिक अंतर होगा उतना ही गर्दन

झुकाने में आसानी होगी। पानी पीने के लिए कभी कभी वह एक दूसरा तरीका भी इस्तेमाल करता है। वह केवल अगली दोनों टाँगों को इधर उधर चीर देता है और अपनी लम्बी गर्दन को झुकाकर पानी तक पहुँचा देता है।

इस विचित्र पशु की देखने सुनने की शक्ति बहुत तेज होती है और दुश्मन से बचने के लिए वह एक-लत्ती झाड़ता है। दुलत्ती यों नहीं कि वह घोड़े गधे की तरह दोनों लात नहीं चला सकता। एक समय में एक ही लात से दुश्मन की खबर लेता है। जिराफ के जोड़ खाने का समय आम तौर से मार्च या अप्रैल का महीना होता है, और बच्चे की पैदाइश लगभग साढ़े चौदह महीने बाद होती है। पैदा होने के तीन दिन बाद बच्चा चलने फिरने लगता है। जिराफ की उमर लगभग २०–२१ साल होती है।

जिराफ़ का शिकार खेलना अफ़्रीका के वाज शिकारियों का खास मनोरंजन है। वे उसके लिए तेज दौड़नेवाले घोड़े पालते हैं। जिराफ घोड़े से वहुत तेज दौड़ता है। मामूली घोड़े तो उसकी गर्द भी नही पा सकते। उसकी खाल वड़ी सुन्दर और कीमती होती है।

लाखों वरस पहले जव दूध पिलाने वाले पशु विकास की शुरू की अवस्था मे थे, तव संसार के वहुत से भागों में जिराफ़ पाए जाते थे। उस समय युरोप, यूनान, एशिया, दक्खिनी अरव, ईरान, उत्तरी भारत में हिमालय की तराई, और चीन मे मिलते थे। ज्यों ज्यों पृथ्वी पर और आस पास के वातावरण मे परिवर्तन होते गए, त्यों त्यो हालात उनके ख़िलाफ होते गए। उनकी नस्ल वढ़ने के वजाय घटती गई। आज से हज़ारों साल पहले उनकी नस्ल एशिया और युरोप से मिट गई। उनकी हड्डियाँ मनों मिट्टी के नीचे दव गई, जो जमीन की खुदाई के दौरान मे कही कही निकल आती हैं। लेकिन अफ़्रीका मे जिराफ की नस्ल अव तक वाकी है। अफ़्रीका मे भी उनकी आवादी पहले पूरे महाद्वीप मे फैली हुई थी। परंतु अव वे मध्य, पूर्वी और दक्खिनी अफ़्रीका के कुछ भागों में ही पाए जाते है। अनुमान है कि दिन पर दिन गिरती संख्या के कारण किसी दिन ये सुन्दर पशु दुनिया से विल्कुल ही मिट जाएँगे। उनकी कमी का एक कारण यह भी है कि उनकी कीमती खाल की लालच मे अफ़्रीका के शिकारी उनका शिकार खेलते रहे है, और उनके वचाव या उनकी नस्ल के वढ़ाने का कोई उपाय नही किया गया। अव पूर्वी अफ़्रीका की कीनिया सरकार ने अपने देश मे जिराफ के शिकार पर पावंदी लगा दी है। इस राष्ट्रीय पूंजी को सुरक्षित रखने के लिए एक राष्ट्रीय पार्क वनाया गया है। अफ़्रीका मे पाए जाने

वाले सभी जानवर उस पार्क में रक्खे गए हैं। वह पार्क मीलों लम्बा चौड़ा एक सँकरा जंगल है, जो कीनिया से ६ मील की दूरी से शुरु होता है। आशा की जाती है कि कीनिया सरकार की इस योजना से जिराफ की नस्ल दुनिया में बनी रहेगी।

बिना रीढ़वाले समुद्री जीव

समुद्र के अथाह जल में भी एक दुनिया आबाद है जिसमें शायद समुद्र के बाहर की दुनिया से भी अधिक जीव रहते हैं। इस दुनिया में कहीं ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं, तो कहीं लम्बे चौड़े समतल स्थान, और कहीं बहुत गहरे बड़े बड़े खड्ड। उसमें हज़ारों तरह के जीव पाए जाते हैं। झुंड के झुंड, रंग बिरंगे और चित्र विचित्र। वे कहीं समुद्री पौधों के जंगल से लगते हैं, तो कहीं घास के तैरते हुए मैदान जैसे, और कहीं फल फूल की तरह एक जगह

ये वाग़ में खिले फूल नहीं हैं, वल्कि जानलेवा समुद्री जीव (एनीमोन) है।

उगे विस्तृत वाग़ जैसे। समुद्री जीव दो तरह के होते है, रेंगने और तैरनेवाले।

हजारो छोटे छोटे पौधों और मरे हुए जीवों के सड़ने गलने से समुद्र की तली मे कीचड़ की तहे वन जाती है, जो कही कहीं १०० फ़ुट तक मोटी होती है। जिन वहुत ही नन्हे अणु जैसे जीवों के सड़ने गलने से कीचड़ वनता है, उन जीवों के हाथ, पाँव वगैरह नहीं होते। उनका शरीर वस एक गोल जर्रे जैसी जानदार चीज होता है, जिसे खुर्दवीन से ही देखा जा सकता है। उस जाति के वहुत से जीवों के शरीर से प्रकाश निकला करता है। उनमे से कुछ सुन्दर फूल जैसे होते हैं, और कुछ की खाल पर चाँदी के सिक्कों जैसी गोल गोल चित्तियाँ होती है। उन्ही जर्रो जैसे कीटाणुओं की जाति के कुछ वड़े जीव भी होते है, जो एक कोठ के समुद्री जीव कहलाते है।

समुद्र की तली में जमकर बैठे हुए कीटाणु खुर्दवीन मे देखने पर अलग अलग नमूने की कढाई वुनाई जैसे दिखाई देते हैं।
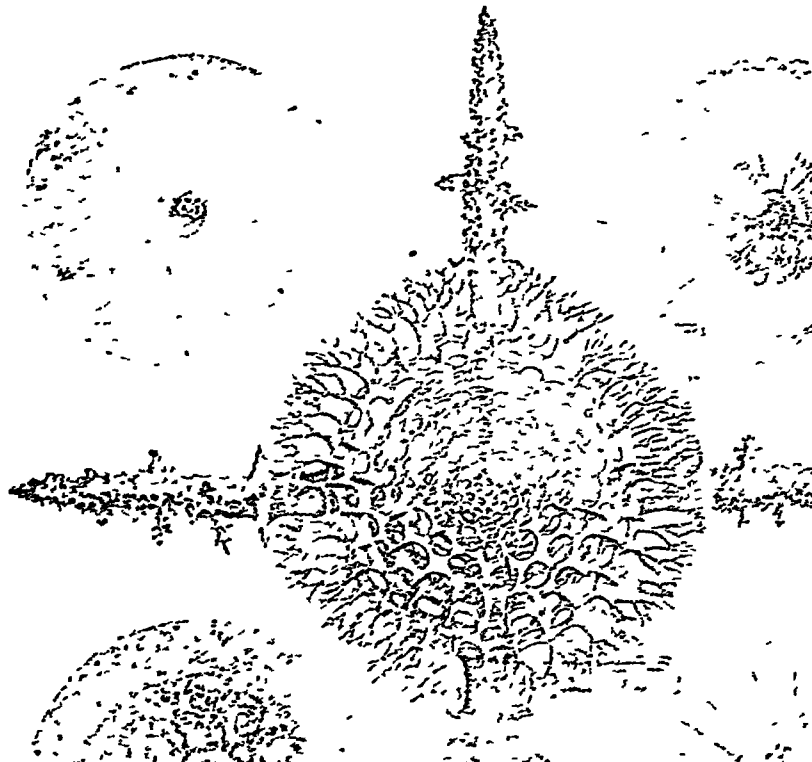
मूंगा जाति के विभिन्न जीव

एक कोठ के जीवों के अलावा समुद्र में अनेक कोठ के जीव भी बहुत पाए जाते हैं। मूंगे की जाति का स्पंज उन जीवों का सबसे सादा रूप है। कुछ स्पंजों का ढाँचा काफी कड़ा होता है, और कुछ मुलायम। स्पंज के शरीर में कई हिस्से होते हैं। उन सब हिस्सों के अलग अलग काम हैं। उन पर अक्सर चमकीले रंगों (लाल, बैंगनी, नारंगी, पीले और हरे) की धारियाँ होती हैं। स्पंज पैदा होने के बाद कुछ ही घंटे तक चलता फिरता है। उसके बाद पौधों की तरह किसी एक जगह पर जम जाता है।
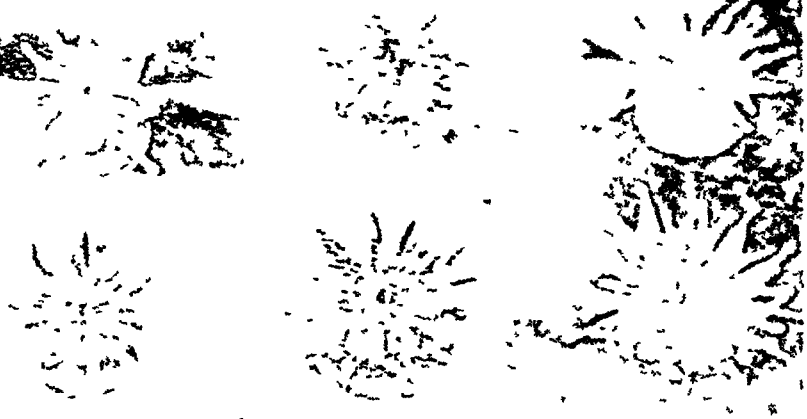
एक तरह का स्पंज समुद्र के बहुत गहरे जल में रहता है। यह बहुत रंग बिरंगा होता है। इसलिए उसे 'पुष्प बैंडल' (अनेक दलोंवाला फूल) कह सकते हैं। उसका खूबसूरत ढाँचा चमकीले रेशों से गुंथा होता है।

समुद्री जीवों की एक जाति 'आन्तरगुही' कहलाती है। आन्तरगुही का अर्थ होता है जो किसी चीज के अन्दर रहता हो। इस जाति के प्राणियों का ढाँचा कोमल और थैलीनुमा खोखला होता है, जिसमें रेशों

स ढका हुआ एक मोहरा होता है। उन जीवो मे स्पंज से अधिक हरकत होती है। वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकते है। आन्तरगुही जाति के कुछ जीव काफी कडा खोल बनाकर रहते है। 'कुसुमाभ' और मूँगों को 'पुष्पजीव' कहा जाता है, क्योकि वे फूलो की तरह रंगीन और खूबसूरत होते है। कुसुमाभ का अर्थ है, जिसकी आभा फूलो की तरह हो। भडकीले रंगोवाले उन जीवो की बनावट 'डैजी' नाम के फूल की तरह होती है, और वे उथले जल मे जमीन पर फैलते है। पुष्प जीव के मुँह पर बहुत से नुकीले रेशे होते है। उन रेशो से पुष्पजीव अपनी खुराक हासिल करता है। कुसुमाभ अलग अलग रहते है। किन्तु मूँगे बस्तियाँ सी बनाकर एक साथ रहते है। छोटे मूँगे कई रंग के होते है। लम्बे गुब्बारेनुमा लाल, और बैगनी मूँगे एक दूसरे से बराबर दूरी पर सीधी कतारो मे फैलते जाते है। दूसरी तरह के मूँगे पेड़ की शाखाओं की तरह फैलते है। जेली मछली भी उसी प्रकार का एक मूँगा होती है। उनके अलावा कुछ मूँगे पंखे की तरह, कुछ पुराने ढंग के पाँखदार कलम की तरह और कुछ अँगुलियो की तरह, फैलते है। कुछ मूँगे ऐसे भी पाए जाते है, जो चट्टानों और टापुओ को जन्म देते है। समुद्र मे एक

जेली मछली

...र जैसा मूँगा

यह वात दूसरी है कि कुछ जीवो की वनावट मे वह रूप साफ साफ दिखाई नहीं देता। उस जाति के वहुत से जीवो के शरीर मे न तो अगले पिछले भाग होते है, और न दाएँ वाएँ भाग ही होते है। पाँच कोनोवाले तारे जैसी वनावट-वाले उन जीवो के शरीर के निचले हिस्से मे छोटी छोटी नलियो की क़तारे होती है। उन नलियों के छोर पर वारीक रेशे होते है, जिनसे वे अपनी ख़ुराक हासिल करते है। तारक मछली उन नलियो के सहारे ही चलती फिरती है। शरीर के निचले भाग के वीचोंवीच उसका मुँह होता है। तारक मछली के शरीर के चारो ओर एक ख़ोल सा मढा रहता है। शरीर के अन्दर हड्डियो का ढाँचा नही होता है। लिली समुद्र मे रेंगती भी है और तैर भी सकती है। लिली जाति के वहुत से जीव वड़े वड़े घोंघो और पत्थरो पर चिपक जाते है। उनमे से कुछ अपने छोटे छोटे रेशो के कारण पौधो की तरह मालूम पड़ते है। समुद्री साही की वनावट सतरो, अडो या मोटे विस्कुटो से मिलती जुलती है, क्योंकि शरीर की पाँचों हड्डियो से मिलकर वना हुआ उसका खोखला शरीर सतरे की तरह गोल भी होता है और कोई कोई विस्कुट की तरह चपटा भी। उसी मे से काँटे और नलियोनुमा पैर निकले होते है। समुद्री खीरा एक ऐसा जीव है, जो वनावट मे सुअर के मांस के लम्वे टुकड़े की तरह होता है। उसकी खाल चमड़े की तरह होती है। शरीर के एक ओर उसका मुँह होता है, जो नलियो और ऐसे रेशो से ढका रहता है, जिनसे उसे वाहरी चीजो का अनुभव होता रहता है।

कोमल शरीरवाली जाति के प्राणियों के शरीर पर एक कड़ा ग़िलाफ़ सा चढा होता है। दूसरे जीवों के मुकावले मे उनके शरीर के भिन्न भिन्न हिस्से अधिक विकसित होते है। दूसरे जीवों को देखते हुए उनके शरीर मे भोजन

भागती हुई एक स्क्विड मछली छिपन के लिए स्याह धुआ उगल रही है।

स्क्विड की चोंच और आँख

का एक काला पदार्थ छोड़कर अपने आस पास के पानी को रंग देती है, और अपने को उसमे छिपाकर शत्रुओ को धोखे मे डाल देती है। आठ भुजाओंवाली जाति के दैत्याकार जीव ३० से ५० फुट तक लम्बे होते है। वे अष्ठभुजी दैत्य विना रीढ़वाले प्राणियो में सवसे वड़े जीव है। वे जीव अपने ताकतवर पैरों से नावो और जहाजों को नुकसान पहुँचा सकते है। उनके अलावा, समुद्र मे 'संधिपाद' जाति के जीव भी अधिक पाए जाते है। संधिपाद उन जीवों को कहते है, जिनके शरीर के हिस्से जुड़वाँ होते है। उन जीवों के कोमल शरीर की रक्षा के लिए उस पर हड्डियों का कड़ा ढाँचा चढ़ा रहता है।

समुद्र के अष्ठभुजी दैत्य
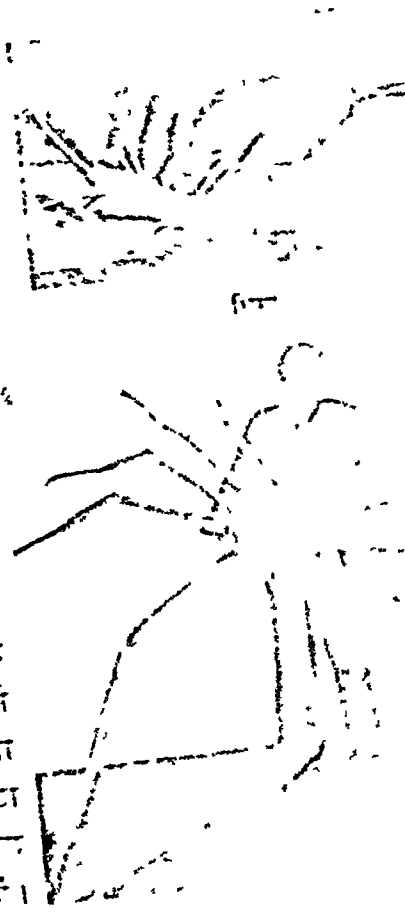
नाटिलस

वे झींगा मछली से मिलते जुलते होते हैं, लेकिन उनके कोमल शरीर पर सख्त ढक्कन नहीं होता। अपने शरीर की रक्षा के लिए वे केकड़े दूसरे जीवों की खोलो मे घुस जाते हैं। नाटिलस भी एक प्रकार का केकड़ा ही होता है। उसकी खोल सख्त होती है, और उसके शरीर के निचले भाग मे बहुत बारीक तारो जैसे ढेरों हाथ पैर होते हैं, जिनसे वह अपने शिकार पकड़ता है। कुछ केकड़े दूसरे जीवो और पौधों द्वारा अपना बचाव करते हैं। दस्यु केकड़ा अपना ज्यादातर समय किनारे की जमीन पर ही बिताता है, और ताड़ के ऊँचे ऊँचे पेड़ों पर चढकर उनके फल खा जाता है। स्पंज केकड़ा अपनी टाँगों से स्पज के टुकड़ो को पकडकर अपनी पीठ पर इस तरह रख लेता है कि उसका अपना रूप ही बदल जाता है। मकड़ीनुमा केकड़ा अपने खोल पर समुद्री पौधों और ज़िंदा स्पजो को इस तरह रख लेता है कि वे वही पर बढने लगते हैं, और केकडे को पूरी तरह ढक लेते हैं।

हमले के लिए तैयार एक लाब्स्टर
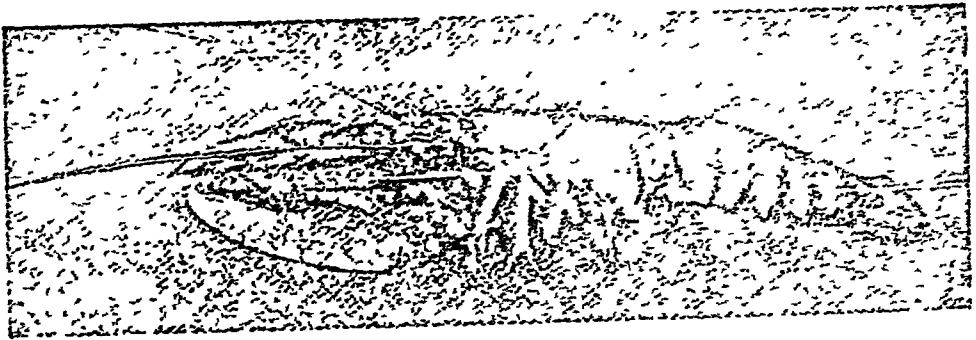
मिट्टी की रचना और उसके गुण

मनुष्य का जीवन बहुत कुछ खेती पर निर्भर है। पर हर मिट्टी में खेती नहीं हो सकती। मिसाल के लिए रेत में खेती होना कठिन है। खेती के लिए मिट्टी की कुछ खास किस्में होती हैं। पेड़ पौधे उन्हीं में अपनी खुराक हासिल करते हैं।

जिन चट्टानों से पृथ्वी का चप्पड़, यानी ऊपर का छिलका बना है, उसके पिसने, घिसने और कुटने से जो पदार्थ निकलते हैं उन्हीं से मिट्टी बनती है। पृथ्वी का चप्पड़ तीन तरह की चट्टानों से बना है।

ज्ञान सरोवर के पहले भाग में बताया जा चुका है कि शुरू में पृथ्वी की सतह पिघले हुए सीसे की तरह बेहद गरम थी

ग्रौर उसके भीतरी भाग से आग की ज्वालाएँ निकलती रहती थी। वहुत दिन वीतने पर पृथ्वी ठढी होती गई ग्रौर उसकी ऊपरी सतह जमकर कडी चट्टान वन गई। इस प्रकार जो चट्टाने वनी, वे मोटे तौर से दो तरह की थीं। पर आगे चलकर उनकी एक तीसरी किस्म भी वन गई।

जिन स्थानो पर आग की ज्वालाएँ निकलती थी, वहाँ पर जो चट्टाने वनीं उनको 'आग्नेय (आग से वनी) चट्टाने' कहते है। पर जिन स्थानो पर ग्रदर से ज्वालाएँ नहीं निकलती थी, वहाँ भी पृथ्वी की सतह के ऊपर गले हुए सीसे जैसा तरल पदार्थ गर्मी से वजवजाया करता था। जैसे जैसे पृथ्वी की ग्रंदरुनी गर्मी कम होती गई वैसे वैसे वह तरल पदार्थ जमने लगा, ग्रौर हवा के साथ उड़कर आई हुई रेत ग्रौर दूसरी चीजे उस पर जमा होने लगी। धीरे धीरे उस तरल पदार्थ ग्रौर उसके साथ दूसरी चीजों ने मिलकर चट्टानो का रूप धारण कर लिया। इस तरह जो चट्टाने वनी उन्हे 'अवसाद (तरल पदार्थ पर दूसरी चीजों के जमने से वनी) चट्टाने' कहते है।

इन दो किस्म की चट्टानों के अलावा एक तीसरी किस्म की चट्टान भी वनी। उसे 'रूपान्तरित (वदली हुई शक्ल की) चट्टाने' कहते हैं। वे चट्टाने ऊपर वताई हुई दो तरह की चट्टानों की ही वदली हुई शक्ल है। आग्नेय या अवसाद चट्टानो के ऊपर जो वहते हुए गरम या ठढे तरल पदार्थ होते है, उ के दवाव से उन चट्टानो के रूप वदल जाते है। इसलिए उन्हे 'रूपान्तरित चट्टाने' कहते हैं।

आँधी, वर्षा, तूफ़ान आदि के कारण चट्टाने टूटती, फूटती, घिसती ग्रौर खुदरती रहती हैं। ऐसा होने पर जिन पदार्थो से मिलकर चट्टाने वनी है, वे पदार्थ इधर उधर विखरते रहते हैं। उन्ही पदार्थो से खेती

योग्य मिट्टी बनती है। उन मूल पदार्थों को 'मिट्टी का कर्ता' कहते हैं।

जिस चट्टान के पिसे कुटे पदार्थों से किसी जगह की मिट्टी बनती है उस चट्टान का मिट्टी पर काफी असर होता है। फिर भी किसी मिट्टी को देखकर यह आसानी से अनुमान नहीं किया जा सकता कि वह किस किस्म की चट्टान से बनी होगी। कारण यह है कि मिट्टी एक दिन मे नहीं बनती। चट्टान से निकले पदार्थों के ऊपर कितने ही साल तक सूरज, हवा, पानी और पेड पौधे अपना काम करते है, तब जाकर उनसे मिट्टी बनती है।

मिट्टी हमे पृथ्वी की सतह की उन परतो से मिलती है, जो मौसम के उलट फेर से प्रभावित होती है, और जो खनिज पदार्थों, लसदार (जीवधारी या आर्गेनिक) तत्वो, पानी, घुलनेवाले नमको और हवा से बनी होती है। मौसम के उलट फेर के कारण धरती पर इन पदार्थों की परते एक पर एक जमती जाती है। हर मिट्टी मे इन पाँचो पदार्थों का होना जरूरी नहीं है। पर हर मिट्टी मे इनमे से कुछ पदार्थ अवश्य होते है। वैज्ञानिको ने इन पाँचो पदार्थों का सामूहिक नाम 'मिट्टी का ढाँचा' रखा है।

मिट्टी मे खनिज पदार्थों के कण भिन्न भिन्न आकार के होते है। उनकी मिलावट के अनुपात के अनुसार हर मिट्टी मे कुछ विशेषताएँ पैदा हो जाती है, जो लगभग सदा कायम रहती है।

मिट्टी के कण चार आकार के माने गए है। सबसे बडे कणो को 'ककड़', उनसे छोटे कणो को 'बालू' और बालू से भी छोटे कणो को 'रवदा' कहते है। 'रवदा' के कण तलछट के रूप मे पानी के अदर बैठ जाते है।

सबसे छोटे कणों को 'छुह' कहते है, जिनसे छुही या चिकनी मिट्टी बनती है।

मिट्टी की किस्म को जानने के लिए यह देखा जाता है कि उसमे किस तरह के कण अधिक है। जिस मिट्टी मे लगभग सारे कण बालू के होते है, उसको 'बलुई', और जिसमे छुह के कण बहुत अधिक होते है, उसको 'छुही' मिट्टी कहते है। बालू खुरदरी और ढीली होती है। उसके दाने अलग अलग होते है जो आपस मे चिपकते नहीं है। इसलिए बलुई मिट्टी पानी को तुरंत सोख लेती है और फिर भी सूखी की सूखी बनी रहती है। बलुई मिट्टी मे हवा की पहुँच आसानी से हो जाती है, इसलिए उसमे रहे सहे लसदार पदार्थ भी सूख जाते है। मगर बलुई जमीन की जोताई बहुत आसान होती है। इसलिए तौल मे भारी होने पर भी किसान बलुई मिट्टी को हल्की मिट्टी कहते है।

'रवदा' के कण मझोले आकार के होते है। उनके आपसी गुँथाव मे केवल इतनी ही साँस होती है कि उनमे काम भर को हवा और पानी घुसता रहे, पर लसदार पदार्थ सूखने न पाएँ। इसीलिए रवदा कणो से बनी मिट्टी खेती के लिए अच्छी होती है।

'छुह' के कण और सब कणों से अच्छे होते है, और उनका आपसी गुँथाव बहुत ठोस होता है। इसीलिए छुही या चिकनी मिट्टी के पिंड कड़े होते है, पर गीले होने पर लोचदार और लसदार हो जाते हैं।

मिट्टी मे खनिज तत्वो के अलावा जीव जंतुओं के सड़ने और गलने के कारण कुछ और तत्व भी होते है। उनमे एक को बेजान और दूसरे को जानदार तत्व कहते है। वे दोनों ही 'छुह' के कणों मे एक तरह के लसदार पदार्थ के रूप मे मौजूद होते हैं। इसलिए 'छुह' के कण न पानी मे घुलते है न तलहटी मे बैठते है। वे बीच मे मंडल बनाकर थमे रहते है। पेड़

पौधो को खुराक और पानी पहुँचाने मे वे बहुत सहायक होते है। यही कारण है कि 'ह्यूमस' को मिट्टी का प्राण कहा जाता है।

धरती के नीचे कहाँ क्या है और क्या हो रहा है, इस बात की जानकारी भूगर्भ विज्ञान से होती है। पहले मिट्टी की क़िस्में भूगर्भ विज्ञान के आधार पर ही तै की जाती थीं। इसलिए चट्टानो की किस्म के अनुसार ही मिट्टी की किस्में मानी जाती थीं। यह तरीका उपयोगी अवश्य था, पर सही नही था। मिट्टी की रचना मे धरती के ऊपर काम करने-वाली शक्तियो का भी बहुत बडा हाथ होता है। मिट्टी मे ऐसे गुण भी पाए जाते है, जो उन चट्टानो मे नही होते, जिनसे वे बनी होती है। इसलिए अब मिट्टी की किस्में प्राकृतिक शक्तियो के प्रभाव के अनुसार तै की जाती है।

यो तो मिट्टी की अनगिनत किस्में हो सकती है। पर मोटे तौर से जलवायु और स्थान के अनुसार कुछ मोटी मोटी किस्में मान ली गई है। इस हिसाब से भारत मे मिलनेवाली मिट्टी की ये किस्में है—दुमट, काली, पीली, लाल, रेतीली आदि। पर इन बड़ी किस्मो के भीतर अलग अलग खेतों की मिट्टी की अलग अलग बहुतेरी किस्में होती है। इन किस्मो को तै करने मे कई बातो का ध्यान रखा जाता है। जैसे यह कि जिस चट्टान से मिट्टी बनी है वह चट्टान किस तरह की थी, मिट्टी के कण किस आकार के है, उस पर मौसम का क्या प्रभाव पडा है, और ढाल, धसन या कटाव के विचार से ज़मीन की हालत क्या है?

अच्छी फसल उगाने के लिए इन सब बातो की जानकारी जरूरी है। इसके बाद सिंचाई, खाद, हवा, धूप आदि का उचित प्रबंध होना चाहिए।

जमीन में कुछ ऐसी चीजे भी है या पैदा हो सकती है,जो पौधों को हानि पहुँचाती है। उन्हे नष्ट कर लिया जाए तो खेत लहलहा उठेगे।

वनस्पति के और मरे जानवरो के सड़ने गलने से बने जो जानदार तत्व मिट्टी मे मिल जाते है, वे खेती के लिए बहुत लाभदायक और आवश्यक होते है। इसी जानदार या लसदार तत्व के सहारे पौधे मिट्टी मे से अपनी खुराक खीचते है, और मिट्टी अपनी खुराक हवा मे से खीचती है। यही लसदार तत्व मिट्टी को धसकने से रोकते है।

अधिक ठढे देशों के मुकावले मे भारत की भूमि मे यह जानदार तत्व या लस बहुत कम होता है। इसलिए हमे खाद मिलाकर मिट्टी मे लस बढ़ाने की कोशिश करना पड़ती है।

मिट्टी में लस बढाने के लिए गोवर, पाखाना, खली, हरी खाद, चरी आदि डाले जाते है। पर भारत मे दो तिहाई गोवर जला दिया जाता है। खेत मे पाखाना फेकना कहीं कही बुरा माना जाता है, और खली मँहगी पड़ती है। इस तरह एक फसल मिट्टी से जो खुराक खीच लेती है, वह फिर जमीन मे वापस नही पहुँचती। इसी कमी को पूरा करने के लिए फ़सलों को हेर फेर कर बोने का ढंग काम मे लाया जाता है।

अच्छी फसल पैदा करने के लिए १५ चीजें चाहिए। कार्वन और ऑक्सीजन जो हवा से मिल जाते है, हाइड्रोजन जो पानी से मिलता है, वाकी १२ चीजे ये है—नाइट्रोज़न, फास्फोरस, गंवक, पोटाश, कैल्शियम, मैगनीशियम, लोहा, मंगानीज़, ताँवा, जस्ता, सोहागा, और मोलीवडेनम। ये चीज़े मिट्टी से ही मिलती है। कार्वन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन पौध उगाने मे मदद

करते हैं। नाइट्रोजन, फ़ास्फ़ोरस और गंधक पौधे को जानदार बनाते हैं। पोटाश, कैल्शियम और मैगनीशियम की मदद से पौधे बढ़ते हैं। अंतिम ६ चीज़ें थोड़ी ही काफी होती हैं।

यदि मिट्टी में कैल्शियम और मैगनीशियम की कमी हो, यानी पौधे ठीक से न बढ़ते हों, तो इस कमी को मिट्टी में चूना मिलाकर दूर किया जा सकता है। अधिकतर 'वैज्ञानिक खादों में गंधक होती है। वह मिट्टी में नाइट्रोजन फास्फोरस और पोटाश पहुँचाती है। नाइट्रोजन से पौधे जानदार होते हैं। लेकिन वह जरूरत से ज्यादा हो तो पौधे की बाढ़ मारी जाती है। फास्फोरस के असर से पौधे जल्दी बढ़ते हैं, और उनकी जड़ें मज़बूत होती हैं। पर खारवाली मिट्टी में फास्फोरस के नमक का असर लाभ नहीं पहुँचाता। पोटाश, नाइट्रोजन और फास्फोरस के असर को ठीक रखता है। तने और जड़ को इसकी आवश्यकता होती है। पोटाश से ही अनाज में सत बनता है। चिकनी मिट्टी में वह बहुत होता है।

खारवाला पदार्थ चट्टान से पैदा होता है। वह वर्षा पर निर्भर है। वर्षा अधिक होने पर तेज खारवाली मिट्टी बनती है। अगर वर्षा नाम मात्र की हो तो कम खारवाली मिट्टी बनेगी।

बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान आदि के कुछ भागों में वर्षा कम होती है। इसलिए इन इलाकों में सफेद, पपड़ीदार, नमकीन और खारवाली मिट्टी पैदा हो जाती है। इसे रेह, कल्लर और ऊसर मिट्टी कहते हैं। ये पदार्थ जिस मिट्टी में घुस जाते हैं, वह मिट्टी फसल के लिए बेकार हो जाती है। नहर से

इलाको और नदी के किनारो की मिट्टी मे भी खार वनता है। खारवाली मिट्टी को काम लायक वनाने के लिए उसमे से फालतू नमक और सोडा निकाल देना जरूरी है। खार को मारने के लिए पानी की निकासी, ठीक फसल का चुनाव, लसदार खाद का उपयोग आदि लाभदायक है। दक्खिनी और पूर्वी इलाकों मे अधिक वर्षा के कारण अधिक खारवाली मिट्टी पैदा हो जाती है। उसे ठीक करने के लिए मिट्टी मे चूना मिलाना पडता है।

भारत मे अच्छी फसल न होने का मुख्य कारण यह है कि हम अच्छी खाद डालने के आदी नहीं है। दूसरे देशों के किसान मुनासिव खाद डालकर अपने खेत से अच्छी फसले पैदा करते है।

वर्षा से भूमि का कटाव होता है, जिसे पौधे रोकते है। पर आदमी पेड़ पौधो को काटता रहता है, जिससे ज़मीन नंगी हो जाती है। भूमि कटाव से नदियाँ उथली हो जाती हैं और उनका वहाव कम हो जाता है, जिससे सिंचाई के लिए पानी नही रह जाता और वाढ़ ज़्यादा आने लगती है।

भारत भर मे भूमि के कटाव का सकट है। सव जगह कारण अलग अलग होते हुए भी मुख्य कारण एक से ही है। यानी, खेती के गलत तरीके, हद से ज्यादा चराई, और ढाल के जंगलों की कटाई। मनुष्य लालच मे आकर मिट्टी की दौलत को गँवाता जा रहा है, जवकि इस दौलत की हिफाजत उसको अपने वच्चों की तरह करनी चाहिए।

हिफाजत के सिद्धान्त ये है कि जमीन का उचित इस्तेमाल हो; ज़मीन पर घास, झाड़ियों और पेड़ो की ढाल वनी रहे; और मिट्टी मे खाद के जरिए जानदार लस पहुँचता रहे। मिट्टी को भी एक वैंक मानना चाहिए। उसमे कुछ जमा करने के वाद ही उसमे से कुछ निकालना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा

नई खोजे आम तौर से विद्वान या विज्ञान जाननेवाले करते हैं। लेकिन एक खोज ऐसी भी है जिसे बीमार और जीवन से निराश लोगों ने की है। इस खोज का नाम "प्राकृतिक चिकित्सा" है। हवा पानी, मिट्टी, धूप, नींद, आराम और उचित भोजन प्राण के साथ शरीर के सम्बन्ध को कायम ही नहीं रखते उसको मजबूत भी करते हैं। इसलिए बीमार और जीवन से निराश लोग जब डाक्टर, हकीम और वैद्य से निराश हो गए, तो उन्होंने प्रकृति की शक्तियों और प्राकृतिक रहन सहन का सहारा लिया। उन्होंने तरह तरह के तजर्बे किए और जब उन्हें प्रकृति की शक्तियों और प्राकृतिक रहन सहन के कारण नीरोग होने में सफलता मिल गई, तब उन्होंने दुनिया के सामने इलाज का यह नया ढंग पेश किया, जिसे 'प्राकृतिक चिकित्सा' कहते

जे० स्काथ
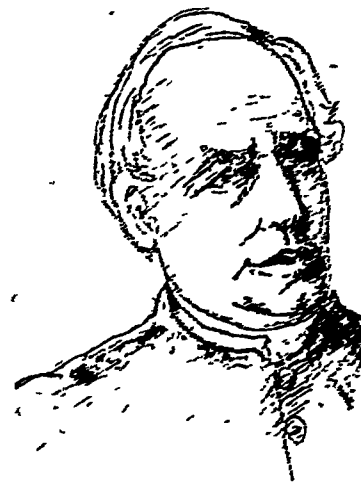
है जिन लोगों ने युरोप मे इस नए ढंग को चलाया, उनमें से कुछ के नाम ये हैं—विसेंट प्रिस्निज, जे० स्काथ, क्नाइप और आरनॉल्ड रिक्ली।

फादर क्ना प

प्राकृतिक चिकित्सा के माननेवालों का कहना है कि हर जीव के अन्दर एक शक्ति होती है जो उसे ज़िदा रखती है। उसे 'जीवन शक्ति' कहते हैं। जब हमारे शरीर में कोई रोग लग जाता है तो वह शक्ति उससे टक्कर लेती है। जैसे कि जब नाक में कोई चीज़ पड़ जाती है तो छींकें आने लगती है, जिससे नाक में पड़ी चीज़ निकल जाती है। इसलिए अगर हम उस जीवनी शक्ति को बढ़ा ले तो वह खुद ही रोगो को नष्ट कर सकती है।

आरनॉल्ड रिक्ली

नींद हज़ार बीमारियों का इलाज है, और पूरी नींद न सोना हज़ार बीमारियो को न्यौता देना है। नींद से शरीर को आराम तो मिलता ही है, इसके अलावा और भी बहुत से फ़ायदे है। बहुत से लोग कहते है कि नींद खुद ही सबसे बड़ी दवा है। दुधमुंहे बच्चे २४ घंटे मे २२–२३ घंटे सोते है और ४-५ वर्ष की आयु होने तक १०–१२ घंटे सोते हैं। इसीलिए वे तेज़ी से बढ़ते हैं।

पर बड़े होने के बाद आदमी दूसरे धधों मे फँसकर नींद की ओर से

आँखें मूंद लेता है। उसे काम काज की इतनी चिन्ता हो जाती है कि रात को सुख की नींद सोने के बजाए वह बड़बड़ाता रहता है। ऐसी हालत में नींद से वह पूरा लाभ नहीं उठा पाता। कायदे से एक तन्दुरुस्त आदमी को कम से कम रोज ८ घंटे सोना चाहिए। जो कमजोर हैं उन्हें ९ घंटे सोना चाहिए। नींद आए तो उन्हें दिन में भी घंटे आध घंटे आराम कर लेना चाहिए।

ताकत का ही दूसरा नाम जिन्दगी है। मुर्दे में ताकत नहीं होती। मनुष्य का शरीर भी एक मशीन की तरह है। जागने में उस मशीन के सभी कल पुर्जे काम करते रहते हैं। सोते समय बहुत से पुर्जे थम जाते हैं। लेकिन वे धूप, हवा आदि से उस समय भी शक्ति लेते रहते हैं। वह शक्ति हर अंग में आसानी से पहुँचती रहती है। कोई भी मशीन बराबर काम नहीं कर सकती। हर मशीन को थोड़ी देर के लिए रोककर उसे ठंडा किया जाता है, और उसमें तेल पानी दिया जाता है। यह काम मनुष्य के शरीर में सोते समय होता है। सोते समय मस्तिष्क को भी शान्त रहना चाहिए। इसलिए दिमाग पर चिन्ताओं का बोझ लेकर नहीं सोना चाहिए।

कुछ लोग रात में जागकर काम करते हैं। वह स्वास्थ्य के लिए बहुत बुरा है। जल्दी सो जाने और सवेरे तड़के उठकर काम करने की आदत स्वास्थ्य के लिए अच्छी है। स्वास्थ्य की दृष्टि से आधी रात से पहले एक घंटे की नींद, आधी रात के बाद के दो घंटों की नींद के बराबर होती है।
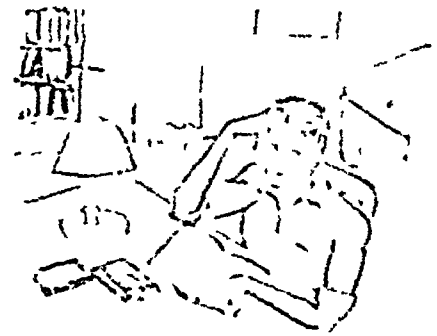
धूप स्वास्थ्य के लिए दूसरी ज़रूरी चीज है। संसार की सभी जानदार चीज़ों की ज़िन्दगी के लिए सूरज का प्रकाश आवश्यक है। वहुत से पौवे वूप से हटाते ही कुम्हलाने लगते हैं, और अगर उन्हें जल्दी धूप मे फिर न रखा जाए तो वे सूखने लगते हैं। पौवों के पत्तों मे हरियाली की चमक वूप के प्रकाश से ही आती है। इसी तरह मनुष्य के शरीर में खून की लाली भी सूरज के प्रकाश से ही आती है। इसीलिए वूप न पानेवालों के चेहरे पीले और कुम्हलाए हुए दिखाई देते हैं।

इंगलैंड की घनी वस्तियों के रहनेवालों ने एक वार एक जलूस निकाला था। जलूस के लोगों के मुरझाए चेहरों का जिक्र करते हुए अंग्रेज़ी के एक लेखक जान गाल्सवर्दी ने एक वड़ा सुन्दर लेख लिखा था। उस ज़माने मे कहा जाता था कि अंग्रेज़ राज में सूरज कभी नहीं डूवता। लेखक ने इसी कहावत पर फवती कसते हुए लिखा —"लेकिन ग़रीव अंग्रेज़ों के आँगन मे सूरज कभी नहीं निकलता।" वात ठीक थी। जिसे वूप मुयस्सर न हो उसका अपनी दौलत पर अभिमान करना व्यर्थ है।

जीवन शक्ति को वढ़ाने के लिए अविक से अविक समय वूप मे विताना चाहिए। नंगे वदन या कम से कम कपड़े पहनकर हल्की वूप में काफ़ी समय वैठना वहुत लाभदायक होता है। कुछ देर विल्कुल नंगे वदन होकर वूप खाई जाए तो वह वहुत लाभदायक होता है। इसी को 'वूप स्नान' कहते हैं।

हवा ज़िदगी के लिए कितनी ज़रूरी है यह सभी जानते हैं। आदमी विना भोजन कई सप्ताह और विना पानी कई दिन तक जीवित रह

सकता है। पर बिना हवा कुछ मिनट में ही उसकी हालत बिगड़ने लगती है। संस्कृत में कहा गया है कि वायु में प्राण-तत्त्व होता है। इसी प्राण-तत्त्व को विज्ञान में ऑक्सीजन कहते हैं। सांस के ज़रिए जब हवा अन्दर जाती है तब हमारे फेफड़े उसमें से वही ऑक्सीजन ले लेते हैं और खून की गंदगी को बाहर फेंक देते हैं। इसीलिए वह हवा जो सांस द्वारा बाहर निकलती है गंदी होती है। उस हवा के गंदे अंश को कार्बन कहते हैं। फेफड़े ऑक्सीजन से ही खून की सफ़ाई करते हैं। साफ़ हवा में अधिक ऑक्सीजन होती है। अगर हम गंदी हवा में सांस लें तो उससे फेफड़े को उतना आक्सीजन या जीवन शक्ति नहीं मिल सकती जितने की शरीर को ज़रूरत होती है।

इसीलिए गंदी, धूलभरी और कार्बनभरी हवा में दिन रात रहनेवालों के चेहरे मुरझाए हुए दिखाई देते हैं। लोग अक्सर साफ़ हवा का महत्त्व नहीं पहचानते। कुछ लोग तो जाड़ों में सरदी और गरमी में लू के डर से कमरों के सभी खिड़की दरवाज़े बंदकर लेते हैं, या अपने पूरे शरीर को एड़ी से चोटी तक कपड़ों से ढक लेते हैं। उससे शरीर को न सूरज की धूप मिल पाती है और न हवा।

नाक से सांस लेने पर हवा आम तौर से पूरे फेफड़े में नहीं पहुँचती। इसलिए फेफड़े का ऊपर का हिस्सा काम करता है और नीचे का बेकाम पड़ा रहता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पूरे फेफड़े से काम लेना चाहिए। इसलिए साफ हवा में लम्बे सांस लेना ज़रूरी है। साफ़ हवा में फेफड़ों को धीरे धीरे हवा से खाली करना और फिर धीरे धीरे हवा भरना बहुत से रोगों का इलाज है। योगी लोग इसी को प्राणायाम कहते हैं। कसरत करते समय भी गहरी और लम्बी सांस लेना पड़ती है। इसलिए कसरत साफ़ और

खुली हवा म ही करनी चाहिए। साफ हवा मे टहलना और टहलते समय गहरे साँस लेना नीरोग रहने के लिए वहुत जरूरी है।

पानी पीने से शरीर भीतर से और नहाने से शरीर वाहर से साफ़ होता है। लेकिन गदा पानी पीने से शरीर के भीतर सफ़ाई के वजाय गदगी वढती है। इसलिए पीने का पानी खास तौर से साफ़ होना चाहिए। शरीर के अंदर की सफाई उस समय वेहतर हो सकती है, जव आदमी खाली पेट ही पानी पिए। इसलिए सवेरे उठने पर, सोते समय, भोजन के एक घटे पहले और २–३ घटे वाद पानी पीना वड़ा गुणकारी है। भोजन के साथ भी थोड़ा पानी पी लेने मे कोई हर्ज नहीं है।

शरीर के वाहर की सफाई के लिए नहाने को सभी लोग जरूरी मानते है। ठंडे पानी से नहाना अधिक गुणकारी है। उससे पूरे वदन मे ताजगी आ जाती है, और खून पूरे वदन मे तेजी से दौडने लगता है। इसका एक कारण है। वदन हमेशा कुछ न कुछ गर्म होता है। खाल पर ठंढा पानी पड़ते ही नज़दीक की नसे (शिराएँ) सिकुड़ती है और उनका खून शरीर के भीतर की ओर दौड़ता है। लेकिन नसे खाली नहीं रह सकतीं, इसलिए शरीर के अंदर से साफ़ खून खाली जगह को भरने के लिए दुगुनी तेजी से आता है। इसी कारण ठंढे पानी से नहाते समय पहले सरदी फिर एकाएक गरमी मालूम पड़ती है। इसके विपरीत गरम पानी से नहाने से खाल के पास की नसे फैलती है, और खून की चाल धीमी पड़ जाती है। इसलिए गरम पानी से नहाने पर ताजगी के वजाय सुस्ती आती है। ठढे पानी से स्नान का लाभ दूसरे तरीको से वढाया जा सकता है। अगर नहाने के पहले हाथ से या तौलिये से पूरे वदन को रगड़ा जाय, तो खाल काफी गरम हो जाएगी।

जाएगा। इसी तरह किसी से कहिये कि आप काफी तन्दुरुस्त, फुर्तीले और खुश नज़र आते है तो आपसे आप उसके चेहरे पर लाली, ओठों पर मुस्कान और वदन मे फुर्ती आ जाएगी। वहुत से लोग सिर्फ इसलिए वीमार और कमजोर रहते हैं कि उनके मन मे यह वात वैठ जाती है कि वे वीमार और कमज़ोर है। इधर हाल मे डाक्टरी की कुछ नई खोजों ने यह सावित कर दिया है कि स्वस्थ वही है जो अपने को स्वस्थ माने। अव डाक्टरो ने भी शरीर के इलाज के साथ मन के इलाज की जरूरत मान ली है। अगर कोई यह सोचता रहे कि 'मै वरावर स्वस्थ होता जा रहा हूँ' तो उसका स्वास्थ्य सुधरता जायगा। चिताओं में पड़े रहने से स्वास्थ्य विगडता ही जाता है। इसीलिए चिता को चिता की सगी वहन कहा जाता है।

जीवन शक्ति को वढ़ाने के साथ साथ यह भी ज़रूरी है कि उन कुटेवों से भी वचा जाए जिनसे जीवन-शक्ति के घटने का भय हो। ऊपर के तरीको का उल्टा करने से जीवन शक्ति घटती है। चिता, क्रोध, आदि से जीवन शक्ति घटती है। कम सोने, धूप और हवा न मिलने, न नहाने या गंदा पानी पीने से भी जीवन शक्ति घटती है। वक़्त वे वक़्त भोजन भी हानिकर है। इनके अलावा जीवन शक्ति घटाने वाली कई और भी कुटेवे है। वीडी, सिगरेट, चाय, गाँजा, तम्वाकू, भाँग, ताड़ी या शराव से और तेज दवा या इंजेक्शन से भी जीवन शक्ति घटती है। हमारे वुरे विचार भी जीवन शक्ति को घटाते है। हर आदमी को चाहिए कि वह अपनी आदतो के वारे मे सोचे और जीवन शक्ति घटानेवाली कुटेवों को छोड़ दे।

१- नीचे के चित्र मे यह दिखाया गया है कि राकेटो द्वारा नकली चांद को शून्य मे कैसे छोडते है।
२- बीच के चित्र मे राकेटो की गति दिखाई गई है
३- ऊपर के चित्र मे एक टैंक के उतरने पर चाद की तह की धूल को उडते दिखाया गया है।
३
२
१
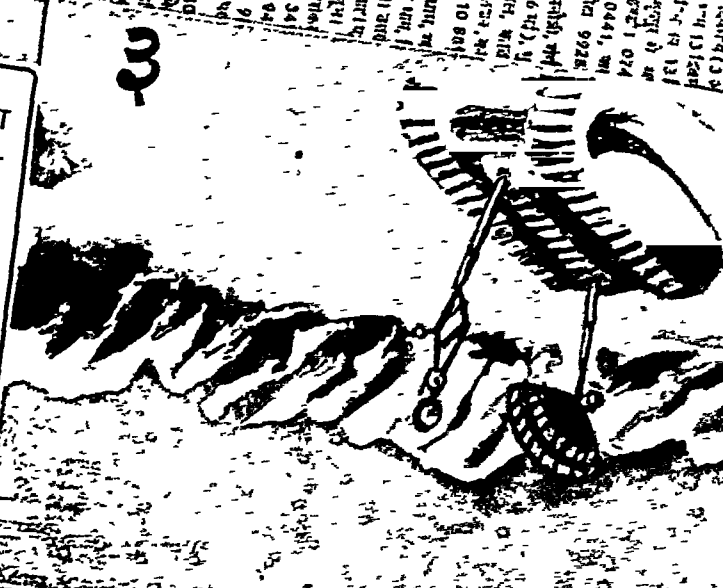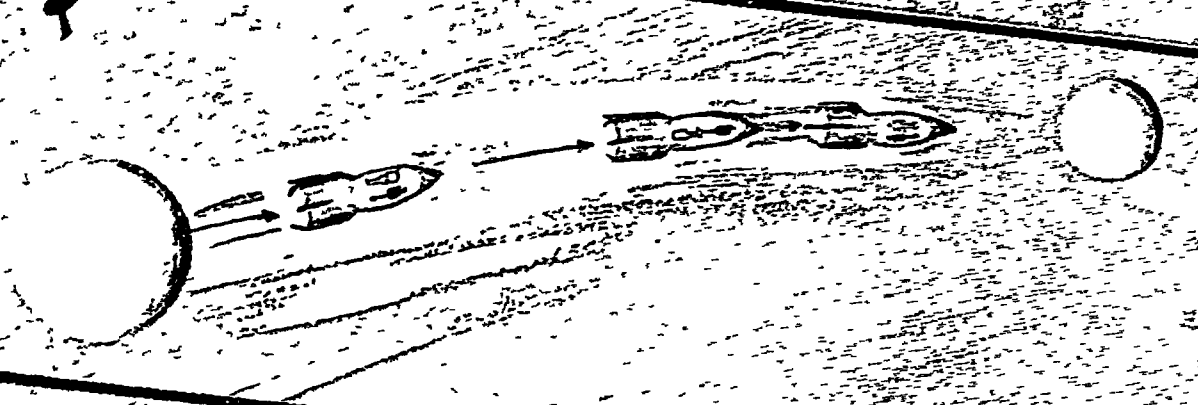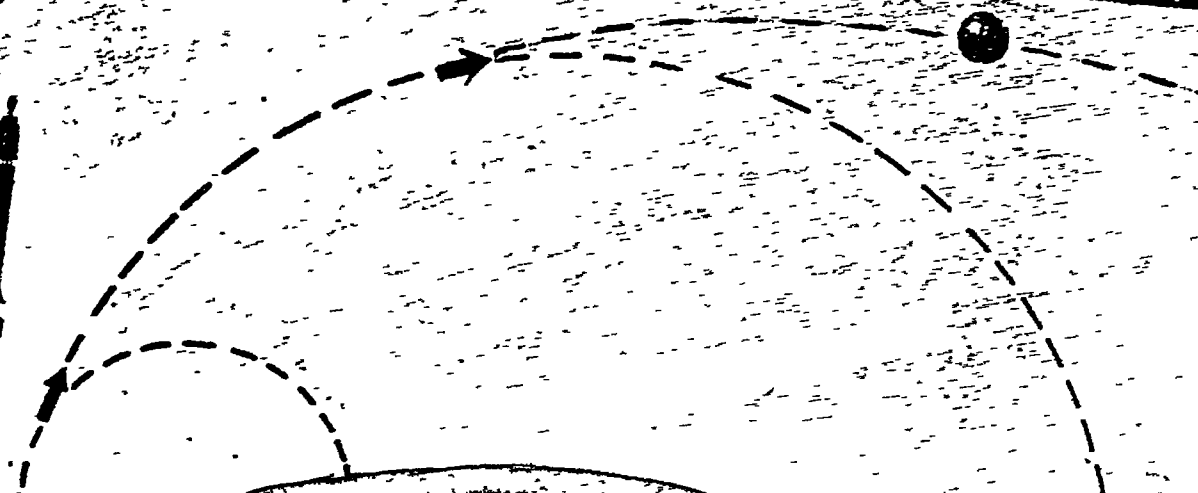
कई प्रोपेलरवाला दुनिया का सबसे बड़ा हवाई जहाज
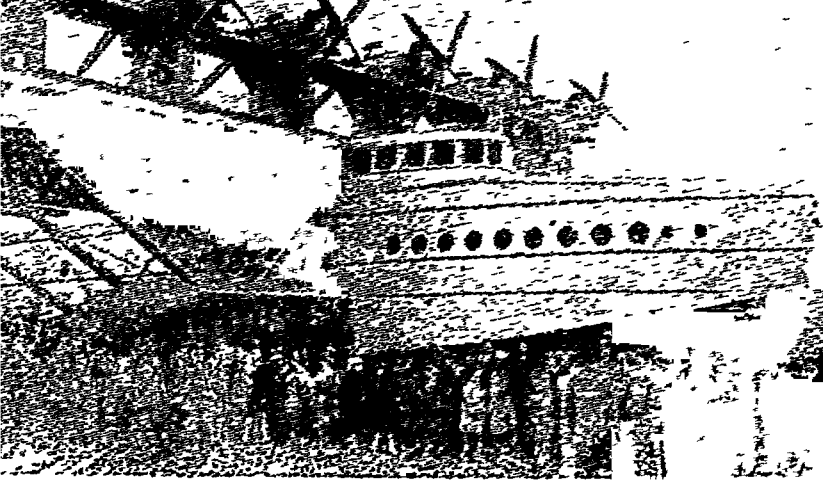
आम हवाई जहाज की शक्ल सामने से पीछे की ओर गावदुम होती है। उसके ढाँचे पर दाँए और बाँए दोनो ओर चिड़ियों के डैने की तरह दो बड़े बडे पंख लगे रहते हैं। वे पंख ही हवाई जहाज को हवा मे पतंग की तरह सँभाले रहते है, जिससे हवाई जहाज जमीन पर गिरने नहीं पाता। हवाई जहाज के सामने बिजली के पखे की शक्ल की एक चीज लगी होती है जिसे 'प्रोपेलर' कहते है। यह प्रोपेलर इंजिन की ताकत से तेजी से घूमता और हवा को पीछे ढकेलता रहता है, जिससे हवाई जहाज आगे बढ़ता रहता है।

धीरे धीरे अनुभव से यह भी मालूम हुआ कि आकाश मे नीचे हवा का दबाव अधिक होता है और ऊपर कम। इसका मतलब यह हुआ कि हवाई जहाज जितनी ही नीचाई पर उड़ेगा, हवा के दबाव के कारण उसकी रफ्तार उतनी ही सुस्त होगी और वह जितनी ही ऊँचाई पर उड़ेगा, उसकी रफ़्तार उतनी ही तेज होगी, क्योकि वहाँ हवा का दबाव कम होगा। इसलिए ऐसे हवाई जहाज बनाए गए जो बहुत ऊँचाई पर उड़ सके।

लेकिन ऊँची उड़ान मे एक और कठिनाई का सामना करना पड़ा। चूँकि ऊपर की हवा हल्की होती है, इसलिए वहाँ प्रोपेलर की पकड़ झूठी पड़
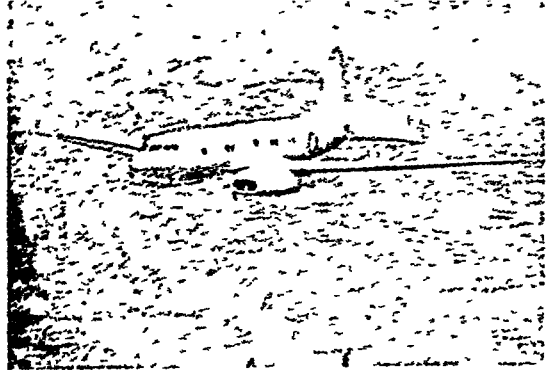
चार जेटवाला दुनिया का सबसे पहला हवाई जहाज

जाती है। ऐसी हालत में हवाई जहाज को आगे बढ़ाने के लिए पूरा जोर नहीं मिल पाता।

ऊँचे आकाश की हल्की हवा में उड़ने के लिए ऐसे हवाई जहाज बनाए गए है, जिनमे प्रोपेलर लगाने की जरूरत नही होती है। लेकिन मामूली हवाई जहाज़ की तरह पंख उसमे भी लगे होते है। वे 'जेट हवाई जहाज़' कहलाते है। वे आतिशबाजी के 'बान' के सिद्धान्त पर उड़ते है। बान की शक्ल एक गावदुम बेलन जैसी होती है। उसकी पूछ मे बारूद भरी होती है, जिसमे पलीता दागने पर धडाका होता है। इस धडाके से गैस पैदा होती है, जो बान को एक जोर का धक्का देकर खुद तेजी के साथ पीछे को भागती है। उस धक्के से बान आगे बढ़ता है।

इसी तरह जेट हवाई जहाज के ढाँचे मे भी पीछे की तरफ धडाका करने वाले पदार्थ भरे रहते है। उन पदार्थों मे धडाका पैदा करने के लिए ऑक्सीजन की जरूरत होती है। वह ऑक्सीजन जेट हवाई जहाज के ढाँचे के सामनेवाले हिस्से मे बनी एक झिरीदार खिडकी के रास्ते से भीतर आती है। उस खिड़की की झिरी अपने आप थोड़ी थोडी देर पर खुलती और बंद होती रहती है।

इस तरह जेट हवाई जहाज के ढाँचे के पिछले हिस्से मे जब ऑक्सीजन पहुँचकर उसमे भरे हुए पदार्थों मे धडाका पैदा करती है, तब धडाके से उत्पन्न हुई गैसे पीछे की ओर तेज रफ्तार से भागती है, और उनके धक्के से जेट हवाई जहाज़ सामने की ओर भागता है।
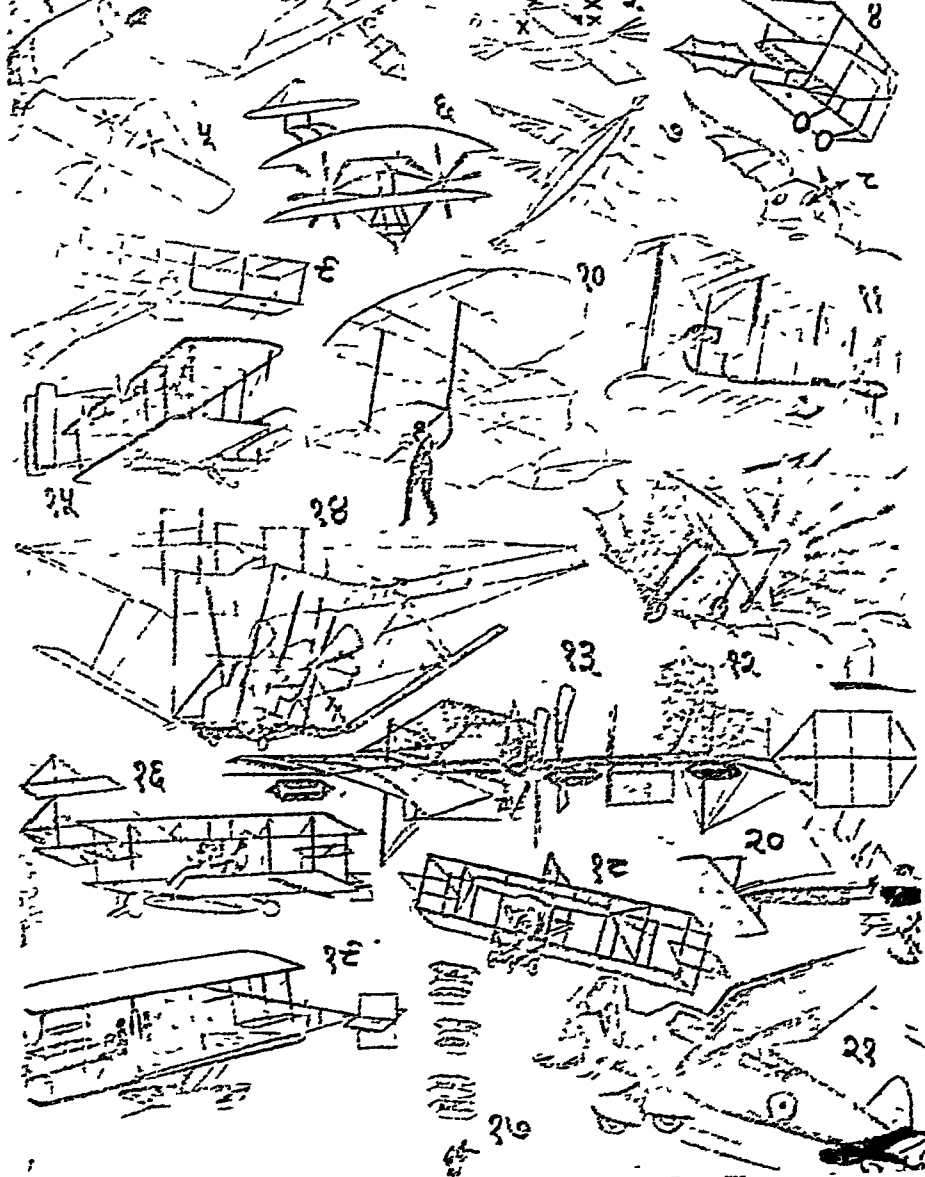
आजकल के जेट हवाई जहाज़ नौ दस मील की ऊँचाई पर आसमान में तेज़ रफ़्तार से उड़ सकते है। उनकी रफ़्तार प्रति घंटा ७०० मील तक पहुँच चुकी है। आजकल तो नियमित तरीके पर जेट वायुयान काम मे लाए जा रहे है।

जेट हवाई जहाज़ के बारे मे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि धड़ाका पैदा करने के लिए जेट हवाई जहाज़ आकाश की हवा से ही ऑक्सीजन लेते है।

आसमान मे बहुत ही अधिक ऊँचाई पर हवा करीब करीब नही के बराबर है। इसलिए उस ऊँचाई पर जेट हवाई जहाज़ बिल्कुल ही नही उड सकते है। आसमान के उस हिस्से मे केवल राकेट ही उड सकते है।

राकेट के इंजिन भी बान के सिद्धान्त पर काम करते है। जेट हवाई जहाज और राकेट मे अन्तर यह है कि जेट हवाई जहाज़ मे बाहर की हवा की ऑक्सीजन भीतर जाकर धड़ाका पैदा करती है, जबकि राकेट के इंजिन मे ईंधन को धड़ाका कराने के लिए राकेट मे ही रखे पीपे माल ढोने की ऑक्सीजन काम आती है।

राकेट के ढाँचे मे भी पीछे की तरफ़ धडाका करनेवाले पदार्थ भरे

साधारण बान एक खोखली नली होती है। ऊपरी सि[illegible] पर टोपी सी होती है जिसमें रंगीन अभ्रक औ[illegible] बारूद भरी होती है। नली में भरी बारूद में आ[illegible] लगाने पर गैसें तेजी से पीछे की ओर भागती है औ[illegible] बान ऊपर या सामने की ओर भागता है। उस[illegible] लगी लम्बी खरपच्ची उसे सीधा रखती है।
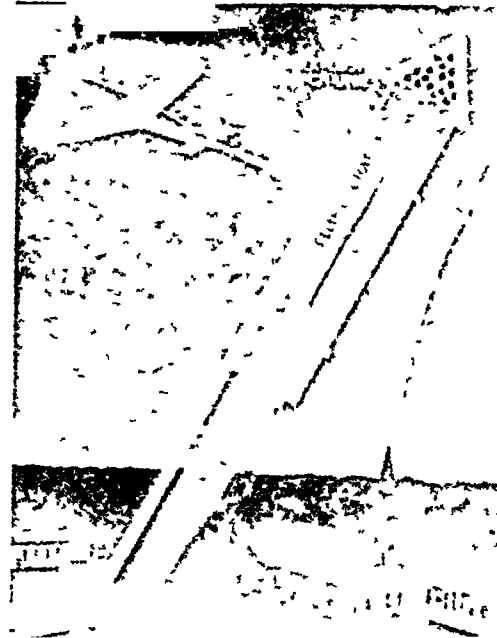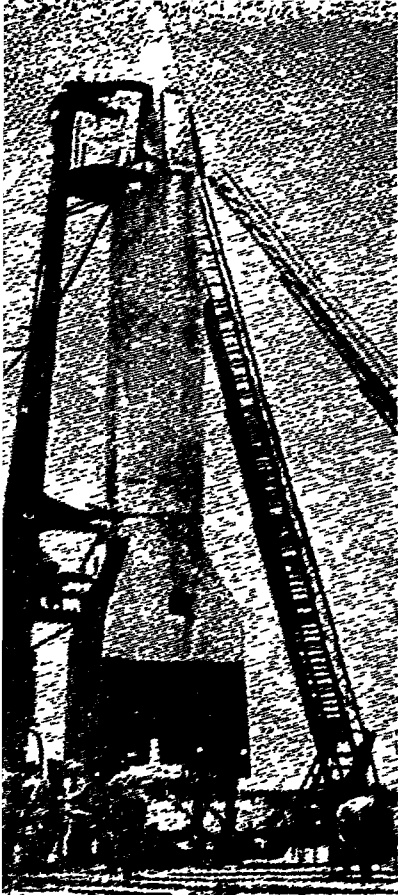
२' नाम के राकेट को आकाश में भेजने के लिए इसमें ईंधन भरा जा रहा है।

रहते हैं। और अलग पीपे में ऑक्सीजन भरी रहती है। उनको दागने पर भारी धड़ाका होता है, जिससे गैसें पैदा होती हैं। वे गैसें भी राकेट को ज़ोरदार धक्का मारकर खुद तेज़ी से पीछे की ओर भागती हैं। उस धक्के से ही राकेट आगे बढ़ता है। दूसरे महायुद्ध में जर्मनी ने राकेट द्वारा ही इंग्लैंड पर बम बरसाए थे। जर्मनी के उन बम बरसानेवाले राकेटों को 'वी—२' नाम दिया गया था।

राकेट आसमान में बहुत अधिक ऊँचाई पर ऐसी जगह भी तेजी से उड़ सकते हैं, जहाँ हवा बिल्कुल न हो। जर्मनी के राकेट ६० मील की ऊँचाई तक पहुँचते थे। उड़ने की रफ्तार में तो वे आवाज़ की चाल को भी मात करते थे। उनकी चाल फी घंटे तीन हज़ार मील से भी ज़्यादा थी, जबकि आवाज़ की चाल केवल ७०० मील के लगभग है। इन दिनों अमरीका और रूस में और भी तेज़ उड़नेवाले राकेट बन चुके हैं। उनकी चाल हज़ारों मील फ़ी घंटे होती है।

राकेट के इंजिन की बनावट बड़ी सीधी सादी होती है। उसमें हरकत करनेवाले कल पुर्ज़े नहीं लगते। राकेट की जिस नली में धड़ाका पैदा किया जाता है, वह ऐसी धातु की बनी होती है, जो बहुत गर्मी पाकर भी नहीं पिघलती। चूँकि राकेट में ईंधन बहुत तेजी से जलता है, इसलिए

इसमें ईंधन बहुत लगता है। उदाहरण के लिए जर्मनी के राकेट के इंजिन का वजन तो केवल ७ मन था लेकिन उसके अंदर धड़ाका पैदा करने के लिए ५९ मन ईंधन लादना पड़ता था। इतना ही नहीं वह समूचा ईंधन कुल चार मिनट की उड़ान के लिए ही काफी होता था। यही कारण है कि राकेट हवाई जहाज वजन में बहुत भारी भरकम होते हैं।

आकाश में लगभग २६ मील की ऊँचाई तक तो गुब्बारे भी भेजे जा चुके थे। उन गुब्बारों में भी तरह तरह के यंत्र रखकर उनकी मदद से ऊपर की हवा के बारे में तरह तरह की जानकारी की गई थी। लेकिन हवा आकाश में सैकड़ों मील की ऊँचाई तक फैली हुई है। इसलिए हवा की ऊपरी तहों तक तरह तरह के वैज्ञानिक यंत्र पहुँचा कर वहाँ की हालत जानने की बराबर कोशिश की जा रही है।

पृथ्वी सूरज के चारों ओर घूमती है। इसलिए धरती की आकर्षण शक्ति के कारण उससे लिपटी हुई हवा का घेरा भी उसके साथ साथ घूमता रहता है। उस घेरे से ऊपर आसमान में महाशून्य है जो लगभग बिल्कुल खाली जगह है। उस महाशून्य के बारे में पूरी जानकारी हासिल करना बहुत जरूरी है। सूरज से आनेवाले विद्युत-कणों (एलेक्ट्रोन) की बौछार उसी महाशून्य में से होकर धरती की ओर आती है। सूरज से निकलकर और भी कई प्रकार की किरणें महाशून्य में फैलती रहती हैं। उनमें से कुछ किरणें तो ऐसी हैं जो कई फुट मोटी दीवार को भी पार कर सकती हैं। महाशून्य में ऐसी ही और अनेक चीजें हैं, जिनकी ठोस जानकारी मनुष्य को अभी तक नहीं है। उन्हें जानने के लिए आवश्यक है कि वैज्ञानिक यंत्रों से लैस राकेट आकाश में ३००–४०० मील की ऊँचाई तक भेजे जाएँ। इस

ग्रौर अमरीका के राकेट आकाश में लगभग ४०० मील की ऊँचाई तक पहुँच चुके है । उनकी सहायता से पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का भी ठीक ठीक पता लगाया जा रहा है ।

महाशून्य के वातावरण के अलावा ग्रौर उससे वहुत ऊपर ब्रह्मांड में दूर दूर तक ऐसे अनगिनत तारे है, जिनके वारे मे सही सही जानकारी प्राप्त करना अभी वाक़ी है । धरती पर से जव उन तारों के फ़ोटो लिए जाते है, तो वीच की हवा की तहों की गर्द ग्रौर कुहरे के कारण फोटो साफ़ नही आते । इस वाधा को दूर करने के लिए भी राकेट से मदद लेने की कोशिश की जा रही है । राकेट में कैमरे लगे होंगे जो वायुमंडल की तहों से ऊपर पहुँचकर तारों ग्रौर ग्रहो के साफ़ फ़ोटो खुद वखुद उतार सकेंगे ।

राकेट द्वारा उन अनेक कठिनाइयों को भी मालूम किया जा रहा है, जिनका ऊँचे आकाश की यात्रा मे मनुष्य को सामना करना पड़ सकता है । अभी हाल मे ही रूस के वैज्ञानिकों ने एक राकेट के ग्रंदर चारों ग्रोर से वंद पिंजरे में दो कुत्तों को वैठाकर राकेट को ऊँचे आकाश में भेजा था ग्रौर राकेट में लगे रेडियो की मदद से राकेट मे वंद कुत्तो के दिल की धड़कन, उनके शरीर के तापमान आदि का हाल वे मालूम करते रहे । निस्संदेह इस तरह की जानकारी आकाश मे वहुत ऊँचे उड़ने के लिए अत्यंत उपयोगी सावित होगी ।

धरती के गिर्द नकली चन्द्रमा

राकेट ऊपर जाकर फिर तुरंत ही नीचे वापस आ जाते हैं । इसलिए वे अनन्त आकाश के किसी छोटे से कोने में जितनी देर उड़ते रहेंगे, केवल उतनी ही देर की जानकारी हमे मिल पाएगी ।

इसलिए वैज्ञानिकों ने ऐसे राकेट वनाने की कोशिश शुरू की,

जो आकाश मे ऊँचे से ऊँचे जाकर धरती के गिर्द अधिक दिनों तक चक्कर लगाते रहे। ऐसे राकेट ही वायुमंडल के हर भाग के बारे में लम्बे समय तक रेडियो द्वारा आवश्यक जानकारी हमे दे सकेंगे। इसलिए पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले एक 'नक़ली चाँद' के बनाने की कोशिशें शुरू हुई।

हम जानते है कि चाँद एक निश्चित गति से पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाता रहता है। आकाश मे जितनी ऊँचाई पर चाँद है, उतनी ऊँचाई पर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति केवल इतनी ही रह जाती है कि वह चाँद को अपनी पकड़ मे रखकर उसे इधर उधर भटकने न दे। पर उस ऊँचाई पर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति इतनी नही रह जाती कि वह किसी चीज़ को खींचकर नीचे उतार ले। यदि हम यह चाहे कि कोई चीज़ जाकर फिर नीचे न आए या बहुत दिनो तक ऊपर टिकी रहे तो हमको उसे धरती की आकर्षण शक्ति के बाहर करने के लिए कम से कम ७ मील फी सेकेंड की रफ़्तार से ऊपर फेंकना होगा। वैज्ञानिको ने हिसाब लगाया है कि धरती से छोड़े हुए राकेट की रफ़्तार ५ मील फी सेकेंड हो तो वह राकेट आकाश में ५०० मील से भी ऊपर पहुँच जाएगा। अगर राकेट उतनी ऊँचाई पर पहुँचकर पृथ्वी के समानान्तर हो जाए तो वह पृथ्वी के इर्द गिर्द बहुत दिनो तक चक्कर लगाता रहेगा।

लेकिन अकेले एक राकेट की रफ्तार उतनी तेज़ नहीं हो सकती। इसलिए वैज्ञानिको ने हिसाब लगाकर देखा कि तीन राकेटो को एक के पीछे एक जोड़कर उड़ाया जाए तो उनकी रफ्तार उतनी तेज हो सकेगी। इस तरह जुड़े हुए तीनो राकेटो की कुल लम्बाई लगभग ७५

फ़ुट होगी। उनमे सबसे ऊपरवाला राकेट सबसे भारी होगा। ऊपरवाले राकेट के ऊपरी सिरे पर एक गोला रखा होगा। उसके अन्दर वैज्ञानिक यंत्र होंगे जिनमे आकाश के वातावरण का हाल दर्ज होता रहेगा और उसकी खबर हमे धरती पर रेडियो द्वारा मिलती रहेगी।

उड़ान शुरू करने के लिए सबसे पहले नीचे का राकेट दाग़ा जाएगा, जो लगभग ५०–६० मील की ऊँचाई पर पहुँच कर बाक़ी दोनो से अलग हो जाएगा। ठीक उसी समय दूसरा राकेट अपने आप दग़ेगा, और लगभग ५०० मील की ऊँचाई पर पहुँचकर वह भी अलग हो जाएगा। उसी क्षण तीसरा राकेट अपने आप दग जाएगा, जो गोले को और ऊँचा चढ़ाएगा और उसकी दिशा को मोड़कर उसे धरती के समानान्तर कर देगा। उस समय उसकी चाल करीब १८ हज़ार मील फ़ी घंटा या ५ मील फ़ी सेकेंड होगी। ठीक उसी समय वह गोले से अलग हो जाएगा। तब वह गोला एक छोटे चाँद के रूप में पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाने लगेगा। लगभग डेढ़ घंटे मे वह नकली चाँद पृथ्वी के गिर्द एक चक्कर पूरा कर लेगा, और कई महीने तक धरती के चारो ओर चक्कर लगाता रहेगा।

आदमी सदियों से चाँद मे पहुँचकर वहाँ बसने का सपना देखता रहा है। रूस के वैज्ञानिकों ने ४ अक्तूबर १९५७ को राकेट की सहायता से लगभग २३ इंच व्यास का स्पुतनिक नाम का एक गोला आकाश में पहुँचा दिया। वह गोला एक नक़ली चाँद की तरह आकाश मे ५६० मील की ऊँचाई पर पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता रहा। उसका नाम 'स्पुतनिक–१' रखा गया। उसका वज़न लगभग सवा दो

मन था। उस गोले के अन्दर बैटरी और रेडियो ट्रांसमीटर लगे हुए
थे और वह ऊँचे आकाश से दुनिया मे संदेश भेजता रहा। रूस के
वैज्ञानिको ने उन संदेशो से आकाश के बारे मे अनेक नई बातें
मालूम की हैं।

उस पहले नकली चाँद को आकाश मे भेजने के लगभग महीने भर
बाद ही रूस ने एक दूसरा नकली चाँद भी आकाश मे भेजा, जिसे 'स्पुतनिक-
२ का नाम दिया गया। उसका वजन १३ मन था, यानी पहले स्पुतनिक
के वजन का लगभग ६ गुना। दूसरे नकली चाँद के अन्दर चारो
तरफ से बंद एक पिंजरे मे 'लाइका' नाम के एक कुत्ते को भी रख दिया गया
था। उस पिंजरे मे उसके खाने पीने और साँस लेने के लिए उचित
प्रबंध कर दिया गया था। स्पुतनिक-२ को ऊपर भेजने के लिए बहुत
शक्तिशाली राकेट का प्रयोग किया गया था। इसीलिए वह धरती
से लगभग १,००० मील की ऊँचाई पर पहुँचकर पृथ्वी के चारो ओर
चक्कर लगाने लगा। वह लगभग १०२ मिनट मे पृथ्वी का एक
चक्कर पूरा कर लेता था। उससे भेजे हुए रेडियो संदेश पूरे एक सप्ताह
तक पृथ्वी पर सुनाई देते रहे। इसका भी पूरा प्रबंध किया गया था
कि कुत्ते के हृदय की धड़कन, उसके खून का दबाव और उसके शरीर का
तापमान ठीक ठीक बना रहे। पिंजरे के अन्दर एक नली द्वारा
कुत्ते के पेट मे भोजन पहुँचाते रहने का प्रबंध था। इसका भी
प्रबंध किया गया था कि रूस की राजधानी मास्को मे रेडियो का बटन
दबाया जाए तो कुत्ता अपने पिंजरे समेत नकली चाँद से बाहर निकल
कर तेजी से धरती की ओर खिंच आवे। उसके नीचे गिरने की चाल

वहुत तेज़ होती, सलिए हवा की रगड़ से वहुत ही गर्म होकर पिंजरे के जल जाने का डर था। इस वजह से उस पिंजरे की उल्टी दिशा मे ऐसे पंख आदि लगा दिए गए थे, जो गिरने की चाल को कम करते है। जव पिंजरा धरती के निकट आता, तो उसमे लगा हुआ पैराशूट आप से आप खुलकर पिंजरे की रफ़्तार को क़ावू मे कर लेता। इस प्रकार कुत्ता सही सलामत पृथ्वी पर उतर आता। किंतु इतना कुछ करने के वाद भी लगभग ८ दिन के वाद ऑक्सीजन की कमी के कारण कुत्ता मर गया। उसके वाद अमरीका भी 'एक्सप्लोरर' नाम का एक छोटा नकली चाँद छोड़ने में सफल हुआ। फिर १५ मई सन् १९५८ को रूस ने तीसरा स्पुतनिक आकाश मे छोड़ा है। वह पृथ्वी से लगभग ११६८ मील की दूरी पर चक्कर लगा रहा है। एक चक्कर पूरा करने मे उसे १०८ मिनट लगते है। उसका वजन क़रीव साढ़े पैंतीस मन है।

अनुमान किया जाता है कि स्पुतनिकों से प्राप्त जानकारी के आधार पर रूस और अमरीका के वैज्ञानिक ऐसे राकेट तैयार कर सकेंगे, जिनमे वैठकर मनुष्य भी हज़ार डेढ़ हजार मील की ऊँचाई पर पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगा सकेगा, और फिर धरती पर सकुशल वापस भी आ सकेगा।

शायद वह दिन दूर नहीं जव रूस के वैज्ञानिक आकाश मे ऐसे राकेट भी छोड़ सकेंगे जो धरती से वहुत दूर पहुँचकर चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति की पकड़ में आ जाएँगे, और तव चन्द्रमा के चारों ओर चक्कर लगाएँगे। उन राकेटों से हमें चन्द्रमा के वारे में नई जानकारी मिलने की आशा है।

१००० मील फ़ी घंटे की रफ्तार से चाँद तक पहुँचने में १० दिन लगेंगे, इसलिए राकेट का रुख उधर को रखना पड़ेगा जिधर १० दिन में चाँद पहुँचने वाला होगा और लौटने में उसका रुख उधर रखना होगा जहाँ २० दिन वाद पृथ्वी की स्थिति होगी।
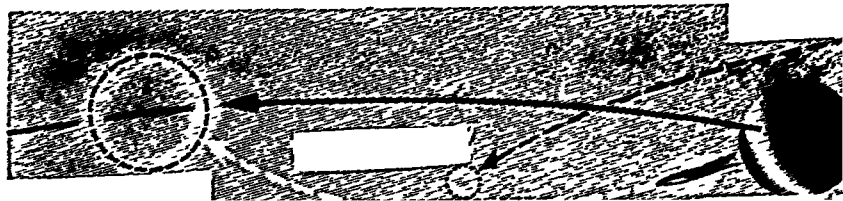
चन्द्रमा तक पहुँचने की कोशिश

राकेट और नकली चाँद की ईजाद ने मनुष्य के मन में यह आशा जगाई है कि वह जल्दी ही एक दिन राकेट में बैठकर चन्द्रमा की सैर कर सकेगा। विज्ञान के बड़े बड़े पंडित इस कोशिश में लगे हुए हैं कि वे ऐसे राकेट जल्द तैयार कर ले जो इंसान को चन्द्रमा तक पहुँचा सके।

धरती से चन्द्रमा की दूरी लगभग ढाई लाख मील है। इसलिए धरती से चला हुआ राकेट अपनी ताकत से वहाँ नही पहुँच सकेगा। चन्द्रमा तक पहुँचने के लिए ज़रूरी है कि आकाश मे करीब करीब १,००० मील की ऊँचाई पर नकली चाँद की तरह एक बनावटी प्लेटफार्म बनाया जाए। वहाँ तीन राकेटो को एक साथ एक के पीछे एक जोडकर 'हवाई राकेट' बनाया जाए। इस प्लेटफार्म से दागने पर वे राकेट, बारी बारी से धडाका करके, हवाई राकेट को चन्द्रमा तक पहुँचा सकेगे। ऐसे राकेटो की चाल शुरु मे लगभग २५ हज़ार मील फी घंटा होगी। काफी ऊँचाई पर पहुँचने के बाद हवाई राकेट के इंजिन को बंद कर दिया जाएगा। और तब उसके आगे चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति से खिचकर ही वह चन्द्रमा तक पहुँच जाएगा। चन्द्रमा के करीब पहुँच कर उसकी चाल इतनी कम कर दी जाएगी कि चन्द्रमा पर उतरते समय उसे धक्का न लगे। फिर इंजिन को चालू करके उसी तरह वापसी भी सम्भव होगी। इस प्रकार हमे चन्द्रमा तक आने जाने मे कुल १० दिन लगेगे। चन्द्रलोक की यात्रा का यह सपना शायद दस बरस मे ही पूरा हो जाए।

(२) संदेशा भेजने के नए साधन

बहुत पुराने जमाने मे दूर तक संदेशा भेजने के लिए लोग नगाड़े की आवाज, धुँए और सूरज की किरणो आदि से मदद लेते थे। बाद मे लम्बे फ़ासले तक संदेशा पहुँचाने के लिए घुडसवार हरकारों से काम लिया जाने लगा। सड़कें बन जाने के बाद घोड़ागाड़ी, रेलगाड़ी और फिर मोटरें भी इस काम के लिए इस्तेमाल होने लगीं। हाल मे हवाई जहाज भी इस काम मे आने लगे हैं। पर बिजली के आविष्कार के बाद इस काम के लिए बिजली ही सबसे उत्तम और उपयोगी साधन साबित हुआ।

यदि किसी लोहे के टुकड़े पर ऐसा तार लपेट दिया जाए जो धागे से ढका हो और तार के दोनों सिरो को बैटरी से जोड़ दें, तब उस तार मे बिजली की धारा तेज़ी से बहेगी और लोहे का टुकड़ा चुम्बक बन जाएगा। नजदीक रखे लोहे के दूसरे नन्हे टुकड़ो को वह अपनी ओर खींच लेगा। धारा के बन्द होने पर वह चुम्बक अपना गुण खो देगा और लोहे के टुकड़े को अपनी ओर नहीं खींच सकेगा। इस तरह के चुम्बक को बिजली का चुम्बक कहते हैं। तार के यंत्र मे बिजली का ही चुम्बक इस्तेमाल होता है।

तार के यन्त्र के खास हिस्से ये होते हैं. (१) मोर्स कुंजी, (२) साउण्डर, जो आवाज पैदा करता है, (३) तार की लाइन, और (४) बैटरी।

तार की ईजाद करनेवाले चार्ल्स मारिसन पहला तार भेज रहे हैं
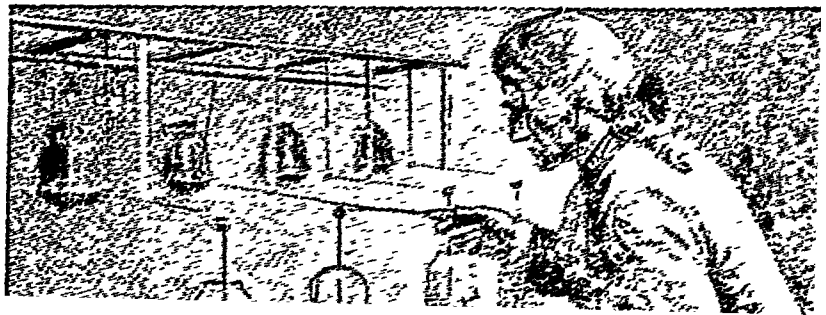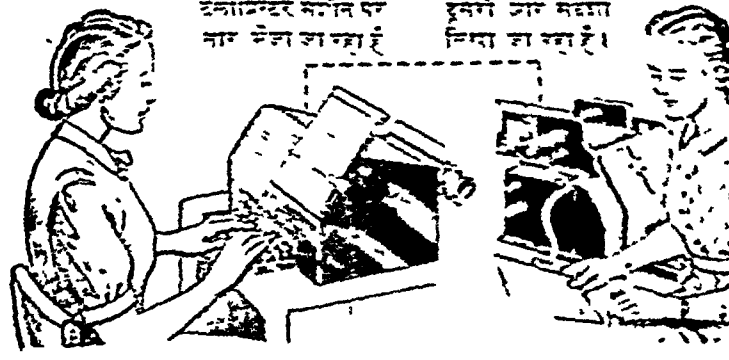
टेलीप्रिंटर मशीन पर तार भेजा जा रहा है

दूसरी ओर संदेश लिया जा रहा है।

संदेश भेजने-वाले स्थान से मोर्स कुंजी के सिरे को दबाने से बैटरी का सम्बन्ध दूसरे स्थान के साउण्डर से जुड़ जाता है। सम्बन्ध जुड़ते ही साउण्डर का बिजलीवाला चुम्बक लोहे की एक पट्टी को नीचे की ओर खींचता है, जो एक पेच से टकराकर 'गट्ट' की आवाज पैदा करती है। कुंजी के सिरे को छोड़ देने से सिरा ऊपर उठ जाता है, बैटरी का सम्बन्ध साउण्डर से टूट जाता है और साउण्डर के चुम्बक की खींचने की शक्ति के खत्म होते ही लोहे की पट्टी ऊपर उठती है और एक पेच से टकराकर फिर 'गट्ट' की आवाज पैदा करती है। मोर्स नाम के वैज्ञानिक ने अंग्रेजी के हर अक्षर के लिए इशारे बना दिए हैं। जिन्हें 'मोर्स इशारे' कहते हैं। इन इशारों के सहारे 'गट्ट गट्ट' की आवाजों को अक्षरों में लिख लिया जाता है।

तार भेजने के लिए तारों की एक लाइन खम्भों के सहारे खींची जाती है। बिजली की धारा बैटरी में से निकल कर तार में से होकर जाती है, लेकिन वापस वह धरती में से होकर लौटती है। इस तरह तार की इकहरी लाइन से ही काम चल जाता है।

तार से भेजी हुई खबरों को केवल वही समझ सकता है जो मोर्स के इशारों को जानता हो। लेकिन टेलीफोन पर की गई बात को हर कोई समझ सकता है और हर कोई टेलीफोन पर बात कर सकता है। पर टेलीफोन द्वारा बात करने में एक जगह से दूसरी जगह खुद हमारी आवाज नहीं जाती, बल्कि पहले हमारी आवाज बिजली की लहरों में बदल

टेलीफोन यन्त्र का एक भाग

जाती है। फिर वे लहरे टेलीफ़ोन के तार पर होकर दूसरे छोर पर पहुँचती हैं और वहाँ के पुर्जे उन लहरों को फिर आवाज़ मे वदल देते है।

टेलीफ़ोन का आविष्कार ग्राहम वेल नाम के एक अमरीकी वैज्ञानिक ने किया था। इसीलिए ग्राहम वैल को टेलीफ़ोन का जन्मदाता कहते है। टेलीफ़ोन यंत्र के खास पुर्जे ये होते हैं : (१) माइक्रोफोन, (२) वैटरी, (३) लाइन और (४) रिसीवर।

माइक्रोफोन एक छोटी डिविया की शक्ल का होता है। उसमे कार्वन के कण भरे होते है और उसके सामने कार्वन का एक चकरीनुमा पर्दा लगा होता है। माइक्रोफ़ोन के सामने वोलने पर हवा में आवाज़ की लहरें पैदा होती है। ये लहरें माइक्रोफ़ोन के पर्दे पर थरथराहट पैदा करती है। कार्वन के पर्दे की थरथराहट की वजह से माइक्रोफ़ोन में वहनेवाली विजली की धारा में चढ़ाव उतार पैदा होता है। वही धारा टेलीफ़ोन के तार की लाइन पर से होकर टेलीफ़ोन के रिसीवर तक पहुँचती है। तार का सिरा रिसीवर में रखे एक चुम्वक से जुड़ा होता है।

टेलीफ़ोन के तार न केवल धरती पर ही विछे हैं, वल्कि उनके जाल समुद्र की तह मे भी फैले हुए है। उन्हीं तारों की मदद से समुद्र पार देश के लोगों से भी टेलीफ़ोन पर वात कर सकते हैं।

तार और टेलीफ़ोन द्वारा हम उन्ही जगहों को संदेशा भेज सकते है, जहाँ तार या टेलीफ़ोन की लाइन खिची हुई हों। संदेशा भेजने की यह मजवूरी लोगों को खलने लगी। इसलिए वैज्ञानिक इस कोशिश मे लगे कि

वाली रेडियो-लहरे होती हैं।

दूर से आने के कारण रेडियो-लहरे कमज़ोर पड़ जाती है। इसलिए रेडियो सेट मे इस वात का प्रवन्ध रहता है कि उन लहरो की शक्ति वढ़ा ली जाए। जिस पुर्ज़े के कारण रेडियो सेट से जोर की आवाज़ निकलती है, उसे लाउडस्पीकर कहते है। रेडियो-लहरों को सीधे 'लाउडस्पीकर' मे नहीं ले जा सकते, क्योंकि रेडियो-लहरों की थरथराहट की रफ़्तार वहुत तेज़ होती है, यानी एक सेकेंड मे करीव एक लाख वार। लाउडस्पीकर की वनावट टेलीफोन के रिसीवर जैसी होती है, और उसका पर्दा उतनी तेज़ी से थरथराहट नहीं पैदा कर सकता जितनी तेज़ी से रेडियो-लहरे पैदा कर सकती है। इसलिए रेडियो-लहरो से विजली की धारा के चढ़ाव उतार को अलग करना ज़रूरी होता है। यह काम रेडियो सेट मे लगा हुआ 'डिटेक्टर वाल्व' करता है। अन्त मे चढाव उतार की वह धारा लाउडस्पीकर के चुम्वक पर लिपटे तारों मे वहने लगती है। उस लहर के उतार चढ़ाव के साथ साथ चुम्वक का खिचाव भी घटता वढ़ता रहता है। खिंचाव के घटने वढ़ने से उसके सामने लगे लोहे के पर्दे में भी थरथराहट पैदा होती है, और पर्दे के सामने ठीक उसी तरह की आवाज पैदा होती है, जैसी दूसरी तरफ़ स्टूडियो में माइक्रोफ़ोन के सामने पैदा की जाती है।

दूर की खवरे सुनने के लिए तार आदि विछाने का झंझट जव रेडियो ने ख़त्म कर दिया, तव दूर से वोलनेवाले की शक्ल देखने की कोशिश होने लगी। इसी से टेलीविज़न का आविष्कार हुआ। टेलीविज़न में भी रेडियो की लहरे काम में लाई जाती है। जिसकी शक्ल देखना होती है उसके चेहरे पर तेज रोशनी की किरणे डाली जाती है। फिर फ़ोटो कैमरे

द्वारा उसके चेहरे की परछाईं एक फोटो-एलेक्ट्रिक सेल पर डाली जाती है। इस तरह चेहरे पर जो रोशनी पड़ती है, उसके चढाव उतार के अनुसार फोटो-एलेक्ट्रिक सेल मे विजली की एक धारा पैदा होती है, और उनमे भी चढाव उतार होता है। उसी धारा को रेडियो-लहरो पर चढा दिया जाता है। वे लहरे आकाश मे चारो ओर तेज़ी से फैलकर टेलीविज़न के रिसीविंग सेट मे पहुँच जाती है। वहाँ कुछ वाल्व की मदद से विजली की धारा को रेडियो-लहरों से अलग कर लिया जाता है, और रिसीविंग सेट मे विजली के ज़र्रे पैदा किए जाते हैं। रेडियो-लहरो से अलग होने के वाद विजली की धारा उन ज़र्रों की रफ्तार को घटाती वढ़ाती है। तव वे ज़र्रे एक ऐसे कॉच के पर्दे पर गिरते है, जिस पर एक खास किस्म का मसाला पुता होता है। जहाँ जहाँ ज़र्रे गिरेंगे, वहाँ वहाँ का मसाला चमक उठेगा और रिसीविंग सेट के पर्दे पर दूर से वोलनेवाले की तस्वीर नज़र आने लगेगी।

टेलीविज़न की ईजाद सवसे पहले इंग्लैंड के एक वैज्ञानिक जान वेयर्ड ने १९२६ मे की थी। इसमे शक नहीं कि टेलीविज़न वीसवीं सदी की एक आश्चर्यजनक ईजाद है। अभी करीव सौ डेढ़ सौ मील की दूरी तक ही टेलीविज़न द्वारा किसी की शक्ल देखी जा सकती है।

लेकिन कोशिश की जा रही है कि हज़ारो मील दूर की चीज़ों को भी देखा जा सके।

रात के अँधेरे मे वर्षा, तूफान या घने कुहरे मे भी राडर द्वारा दूर की चीज़ो की टोह लगा ली जाती है। राडर से काम लेने के लिए भी रेडियो की शक्तिशाली लहरे ही काम मे लाई जाती हैं। राडर यंत्र से रेडियो लहरे चलती हैं और दूर की चीजो से टकराकर फिर उसी यंत्र मे वापस आ जाती है। वह यंत्र उन्हे ग्रहण करके फौरन उस चीज़ की दिशा का भी पता दे देता है। जिस तरह तेज चोर-वत्ती की रोशनी जब किसी चीज से टकरा कर दोबारा हमारी आँखों तक पहुँचती है, तो वह चीज हमे दीख जाती हैं; उसी तरह राडर से जानेवाली लहरें अँधेरे और कुहरे को चीरती हुई जब दूर की चीजो से टकराकर वापस लौटती है, तो हमे पता लग जाता है कि वह चीज किस दिशा मे है।

यह हम जानते ही हैं कि रेडियो लहरे एक सेकंड मे १ लाख ८६ हजार मील का फ़ासला तै करती है। इसलिए उनके आने जाने का समय

नापकर हम तुरन्त ही यह मालूम कर सकते है कि जिस चीज़ से लहरें टकराकर वापस आई है, वह चीज कितनी दूर है। राडर के कांच के पर्दे पर एक पैमाना लगा रहता है। जब लहरें किसी चीज़ से टकराकर वापस आती है, तो उस पर्दे पर रोशनी की एक लकीर प्रकट होती है और पैमाना तुरंत उस चीज़ की दूरी बता देता है।

राडर की ही मदद से मनुष्य पहली बार चन्द्रमा से अपना सम्बन्ध जोड सका है। सन् १९४६ मे राडर से रेडियो-लहरे चन्द्रमा की ओर भेजी गई। ठीक ढाई सेकेंड बाद वे चन्द्रमा से टकराकर राडर पर वापस आई और तुरंत पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी नापी जा सकी।

राडर से ही अँधेरी रात मे भी दुश्मन के हवाई जहाज़ का पता आसानी से लगा लिया जाता है। शांति के दिनो में राडर की मदद से घने कुहरे मे भी हवाई जहाज बिना किसी ख़तरे के उडते है। हवाई जहाज का पाइलट या ड्राइवर राडर से यह पता लगा लेता है कि वह कितनी ऊँचाई पर है और किस दिशा मे उड रहा है। हवाई जहाज को हवाई अड्डे पर सही सलामत उतारने मे भी राडर की मदद ली जाती है। पानी का जहाज भी अँधेरी रातो मे हिमशिलाओ की दूरी और दिशा का राडर से पता लगा लेते है, और उनसे बचकर निकल जाते है।
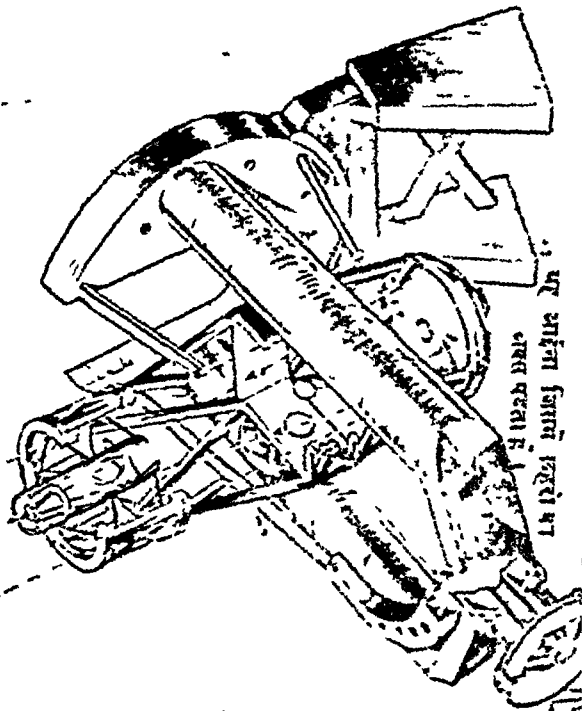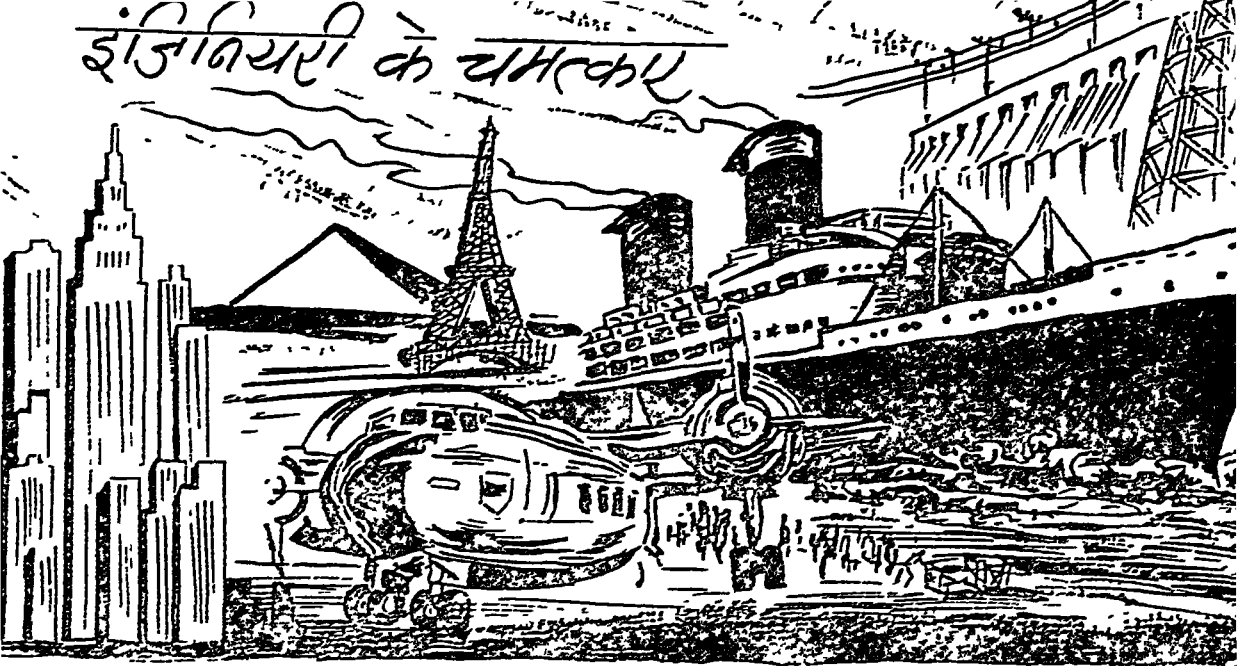
वोल्गा नदी के बाँध, नहरें और पनबिजलीघर

वोल्गा युरोप की सबसे बड़ी नदी है। उसकी लम्बाई २,३०० मील है। वह सोवियत यूनियन के युरोपीय हिस्से के एक बड़े इलाके से गुजरती हुई कैस्पियन सागर मे गिरती है। सोवियत यूनियन की लगभग एक चौथाई आबादी वोल्गा की घाटी मे ही बसती है। वोल्गा का उत्तरी इलाक़ा जंगलों से ढका हुआ है, और दक्खिन में बड़े बड़े स्तेपी के मैदान है, जो आगे चलकर कैस्पियन सागर के पास कुछ रेतीले हो जाते हैं।

पहले समझा जाता था कि वोल्गा इलाक़े की धरती बाँझ है। उसमे न कुछ पैदा हो सकता है और न उसके अंदर कोई धातु है।

लेकिन हाल की खोजों में वहाँ बड़े काम की धातुएँ मिली हैं।

पहले वोल्गा और उसकी सहायक नदियों का अथाह पानी या तो बेकार समुद्र का पेट भरता था या बाढ़ के दिनों में हजारों गाँवों की खेतियाँ नष्ट कर देता था और वोल्गा की घाटी के दक्खिनी इलाके सूखे पड़े रहते थे। उधर मध्य एशिया की सूखी हवाएँ स्तालिनग्राद के इलाके के पेड़ पौधों को झुलसा देती थीं।

अन्त में सोवियत शासन कायम होने पर वोल्गा और उसकी सहायक नदियों पर क़ाबू पाने की योजना बनी। इस योजना के अनुसार काम करके सन् १९३७ और १९४१ के बीच वोल्गा के ऊपरी हिस्से में, इवानकोवो, उग्लिच और रवेर्बाकोव के पास तीन बड़े बड़े जलागार और तीन बिजलीघर बनाए गए। उनमें रवेर्बाकोव का जलागार सबसे बड़ा है। उसका रकबा १७५५ वर्ग मील है, उसमें ३१½ अरब घन गज़ पानी आता है। वोल्गा के किनारे किनारे जलागार और पनबिजलीघर बनाने के साथ साथ ८० मील लम्बी एक नहर भी बनाई गई। वह नहर वोल्गा को मास्कवा नदी से जोड़ती है। मास्कवा नदी मास्को शहर के बीच से होकर बहती है।

इस तरह ऊपरी वोल्गा को बस में कर लेने का नतीजा यह हुआ कि वोल्गा के किनारे की सब बस्तियों और शहरों का व्यापार नदी के रास्ते मास्को नगर के साथ होने लगा। पूरा इलाका चमक उठा। बिजली से रोशन इस समूचे इलाके में नए नए उद्योग धंधे चल पड़े और बड़े बड़े शहर बस गए।

दूसरा महायुद्ध छिड़ जाने से काम रुक गया था। लेकिन लड़ाई बंद होते ही फिर पूरे ज़ोर शोर से काम शुरू हो गया, और एक बहुत बड़ी नई नहर बनाकर वोल्गा को दोन नदी से मिला दिया गया।

इस नहर को 'वोल्गा-दोन-नहर' कहते हैं, जो इंजीनियरी का अनोखा चमत्कार है, और जिसने सोवियत रूस की जहाज़रानी में एक इनक़लाव पैदा कर दिया है। कारण यह है कि उस नहर की वदौलत वोल्गा और दोन नदियों का ही गठवधन नहीं हुआ, वल्कि पाँच सागर भी एक दूसरे से जुड़ गए। उन सागरों के नाम हैं—श्वेत सागर, वाल्टिक सागर, कैस्पियन सागर, अज़ोव सागर और काला सागर। इस तरह रूस की सवसे वड़ी नदी वोल्गा का सारी दुनिया के साथ सम्वन्ध जुड़ गया।

वोल्गा-दोन-नहर की ख़ास चीज़ें त्सिम्लियांस्कोये का जलागार और विजलीघर हैं। रूसवाले उस जलागार को कृत्रिम सागर कहते हैं। सचमुच वह इतना वड़ा है कि सागर कहना ग़लत नहीं है। दोन नदी पर वाँध वनाकर उस कृत्रिम सागर में लगभग १६½ अरव घन गज़ पानी भर दिया गया है। वहाँ जो विजलीघर वनाया गया है, उससे १,६०,००० किलोवाट से अधिक विजली फ़ी घंटे तैयार हो सकती है।

वोल्गा-दोन-नहर का वनना एक इनक़लावी वात है। दक्खिन के सूखे मैदानों के लिए भी, जिन्हें स्तेपी कहते हैं, वह नहर आगे चलकर वरदान सिद्ध होगी, क्योंकि उससे स्तालिनग्राद के दक्खिन और पच्छिमी इलाक़ों और रोस्तोव के पूरे इलाक़े की लगभग ४९¾ लाख एकड़ ज़मीन की सिंचाई हो जायगी। रूस के दक्षिण पूर्वी हिस्से के किसान अव सूखे और अकाल के शिकार न होंगे। विज्ञान के जानकार लोगों का कहना है कि अव वहाँ कपास और धान जैसी चीज़ें भी पैदा की जा सकती हैं, जिनका वहाँ होना पहले असम्भव माना जाता था।

वोल्गा को वस मे करके उससे अधिक से अधिक फायदा उठाने का काम इधर और बढा है। गोर्की शहर मे बाँध बनाकर वोल्गा के पानी की सतह को लगभग २० गज ऊँचा किया गया है और वहाँ एक बडा पनबिजलीघर बनाया गया है। इसी तरह जिगुली पहाडी के पास कुइविशेव नगर मे भी वोल्गा पर बाँध बनाकर उसके पानी की सतह को २७गज १फुट ऊँचा किया गया है, और वहाँ एक बहुत बडा जलागार बनाया गया है, जिसे 'जिगुलेवु के ये सागर' भी कहते है। उसकी लम्बाई ३१२½ मील है और चौडाई करीब २५ मील। उसमे ६७½ अरब घन गज पानी आता है, और उससे २४½ लाख एकड जमीन सींची जा सकती है। कुइविशेव का पनबिजलीघर फी घटा २१ लाख किलोवाट बिजली तैयार कर सकता है। वहाँ तैयार होनेवाली बिजली को मास्को तक पहुँचाने के लिए ५६२½ मील तार और हजारो खम्भ लगाए गए है।
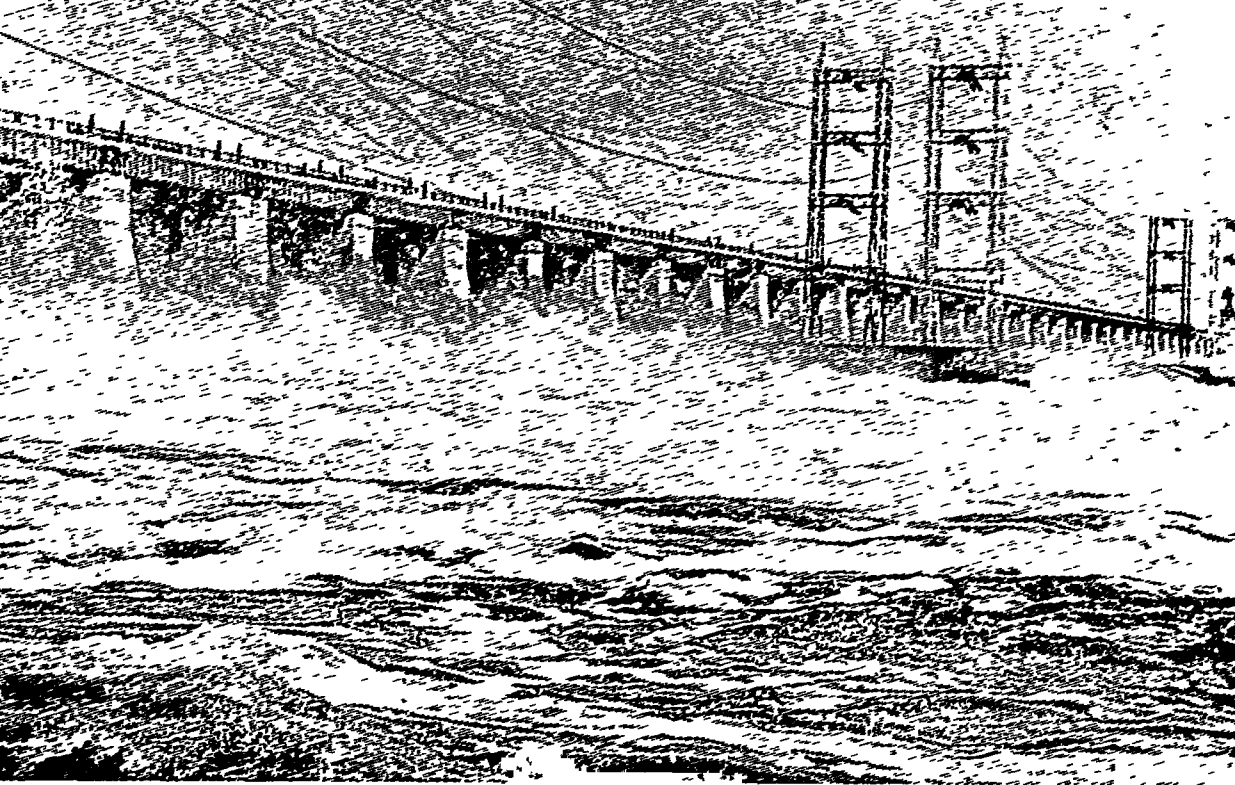
वोल्गा पर बना संसार का सबसे बड़ा पनबिजलीघर

स्तालिनग्राद मे भी एक विशाल बाँध और पनबिजलीघर बन रहा है। वहाँ वोल्गा से पूरब की ओर एक नहर निकाली गई है, जो ३७५ मील लम्बी है। स्तालिनग्राद मे जो पनबिजलीघर बन रहा है, उससे फी घंटे १७ लाख किलोवाट बिजली तैयार होगी।

कुइबिशेव और स्तालिनग्राद के जलागार कितने बड़े है, इसका अंदाज़ इसी से लगाया जा सकता है कि उनसे सींची जानेवाली ज़मीन का रकबा हालैण्ड, बेलजियम, डेनमार्क, स्विट्जरलैंड को मिलाकर उनके कुल रकबे के बराबर होगा। इसी तरह वहाँ तैयार होने वाली बिजली सन्

१९१७ से पहले पूरे रूस में तैयार होने वाली बिजली का दस गुना होगी।

कुइबिशेव और स्तालिनग्राद के पनबिजलीघर वोल्गा के पनबिजलीघरों की लड़ी में सबसे बड़े हैं। कुइबिशेव के बारे में तो रूसवालों का दावा है कि वह दुनिया का सबसे बड़ा पनबिजलीघर है।

इंजीनियरी के चमत्कार

(२)

हूवर बाँध

हूवर बाँध अमरीका की प्रसिद्ध नदी कोलोरेडो पर बना हुआ है। यह एरिजोना और नेवादा राज्यों के बीच में है। वह ७२७ फुट ऊँचा है और कंक्रीट का बना हुआ है। उसकी शक्ल कमान जैसी है।

कोलोरेडो नदी बर्फीले पहाड़ों से निकलती है। उसके ऊपरी भाग में मूसलाधार वर्षा होती है। बाँध बनने से पहले यह कैलीफोर्निया की खाड़ी तक फसलें बरबाद कर देती थी। मामूली तौर पर इस नदी में फी सेकेंड लगभग २,००० घनफुट पानी बहता है जो बाढ़ के जमाने में २,००,००० घनफुट फी सेकेंड हो जाता है।

इसलिए कोलोरेडो के पानी को सिंचाई के लिए ज्यादा से ज्यादा

उपयोगी वनाने के लिए दिसम्वर सन् १९२८ मे अमरीकी कांग्रेस ने एक कानून वनाया। उस कानून द्वारा यह तै किया गया कि ८५ करोड रुपए के ख़र्च से उस नदी पर एक वाँध वनाया जाए। क़ानून वनने के वाद वाँध की योजना और नक़्शे वग़ैरह तैयार करने मे लगभग दो साल लग गए, और १९३० मे वाँध वनाने का काम शुरू हुआ। पूरे पाँच साल की मेहनत के वाद सन् १९३५ मे वह वाँध वना।

जिस जगह वाँध वनाना तै हुआ वहाँ नदी का पाट २६० फ़ुट से ५०० फ़ुट तक चौड़ा था, और उसके दोनो किनारों पर १,००० फ़ुट से ५०० फ़ुट तक ऊँचे पहाड़ थे। ऐसे वाँधों के वनाने का काम शुरू करना भी वहुत कठिन होता है। आने जाने और माल लाने ले जाने के लिए पहले रेलें और सड़कें वग़ैरह वनाई गईं। काम करनेवालों के रहने के लिए मकान आदि वनाए गए। इस तरह वहाँ एक पूरा शहर आवाद हो गया। मगर वाँध वनाने से पहले सवसे ज़रूरी यह था कि नदी का वहाव दूसरी तरफ़ को मोड़ दिया जाए। उसके लिए नदी के दोनों ओर पचास पचास फ़ुट व्यास की दो दो सुरंगे वनाई गईं, जिनमे से हर एक सुरंग की लम्वाई ४,५०० फ़ुट थी। पथरीली चट्टानों में इतनी वड़ी वड़ी सुरगे खोदना कोई मामूली काम नहीं था। उसके वाद पत्थर तोड़ने, वजरी वनाने, रेत छानने, कंक्रीट (रोड़ी) आदि वनाने के लिए वड़ी वड़ी मशीने तैयार

हूवर वाँध जहाँ वनाया गया है, वहाँ केवल खड़े नंगे पहाड़ों से घिरा वियावान ही था, कोई वस्ती नहीं थी। जव वाँध का कार्य आरंभ हुआ तो वहाँ सरकार को ५,००० मजदूरों और उनके परिवारो के लिए एक नगर वसाना पड़ा।
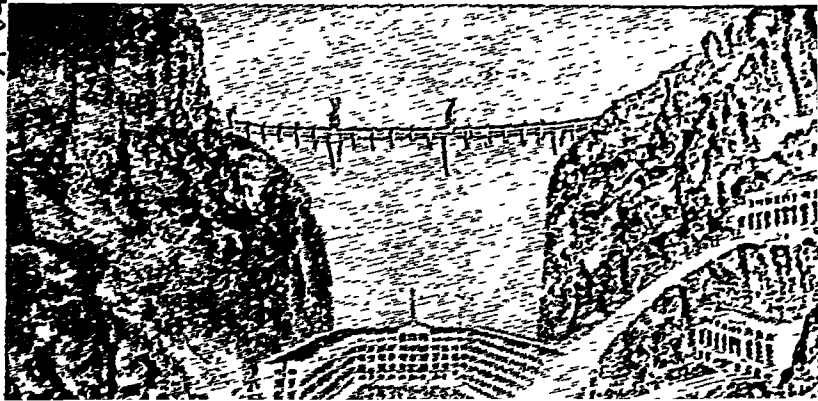
की गई। शुरू के इन कामों मे दो साल और लगभग सत्रह करोड़ रुपए खर्च हुए।

नदी का बहाव मोड़ देने के बाद नवम्बर १९३२ में नींव की खुदाई शुरू हुई। कुल लगभग १६ लाख घन गज मिट्टी खोदी गई, जिस पर लगभग ढाई करोड रुपए खर्च हुए। खुदाई का काम रात दिन होता था और वह तख़मीने से २८ महीने पहले, जून १९३३ में पूरा हो गया। उसके बाद जून १९३३ मे ही गारा डालने का काम शुरू हुआ। पत्थर तोडने और रेत छानने से लेकर कंक्रीट को बांध की जगह ले जाकर डालने तक का सारा काम मशीनो से होता था। बांध में जगह जगह कंक्रीट डालने के लिए बड़ी बड़ी बाल्टियाँ थी, जिन्हें लोहे के रस्सो पर चलनेवाली ट्रालियाँ ऊपर ले जाती थी। हर बाल्टी मे ७ घन गज कंक्रीट आता था, जिसका वजन ३५० मन होता था।

बांध के पास ही नीचे की ओर २०० फुट ऊँचा और १५०० फुट लम्बा बिजलीघर बनाया गया, उसमें १७ मशीनें लगी है, जिनमे से पन्द्रह तो एक लाख पन्द्रह हज़ार हार्स पावर की, और दो ५५,००० हार्स पावर की है। बिजलीघर तक पानी पहुँचाने के लिए बांध में तीस तीस फुट व्यास के चार पाइप भी लगाए गए है। तब के अमरीकी राष्ट्रपति हूवर ने ३० सितम्बर १९३५ को उस बांध का उद्घाटन किया। उन्ही के नाम पर उसे 'हूवर बांध' कहते है।

सुप्रसिद्ध हूवर बांध के पानी के निर्गम ...
बांध की मुख्य दीवार जिस में नली निकाली ...

लकड़ी का काम

इमारत आदि के लिए लकड़ी का चुनाव करते समय यह देखना चाहिए कि लकड़ी भारी और टिकाऊ हो, और मौसम के असर से न सिकुड़े न टेढी हो। उसमे रेगे कम हो ताकि वरमा या रुखानी लगाने से फटे नही।

कटाई और चिराई के लिए हमेशा पक्की लकडी का प्रयोग करना चाहिए। चिराई दो तरह से होती है। एक तो लकड़ी की सीधी चिराई दूसरी किरनो के अनुसार चिराई। पक्की लकड़ी के कटे हुए गोल सिरे के बीचोबीच लकड़ी का कुछ भाग काला सा दिखाई देता है। यह काला भाग लकड़ी की लम्बाई मे आर पार पाया जाता है। इसे रेत या लकड़ी की मज्जा कहते है। ग़ौर से देखने पर रेत से छाल की ओर बहुत सी सीधी धारियाँ जाती हुई दिखाई देगी। इनको ही लकड़ी

सीधी चिराई
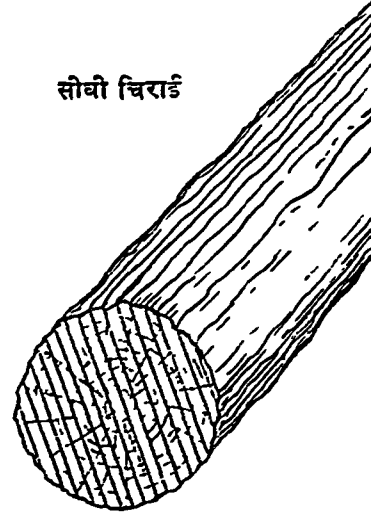
किरनों के अनुसार चिराई

की क़िरन कहते है। इन्ही धारियो पर चीरने को किरनो के अनुसार चिराई करना कहते हैं। इस चिराई मे वहुत सी लकडी वेकार जाती है और समय भी काफी लगता है, परन्तु लकडी के सिकुडने या फैलने का डर नहीं रहता।

लकड़ी दो तरह से सुखाई जाती है। सुखाने का एक ढग तो यह है कि लकडी को खुली हवा मे, या १५ दिन पानी मे डालकर, तव हवा मे सुखाते हैं। दूसरा ढग यह है कि ख़ास तरह के वने हुए कमरो मे लकडी को रख देते है, और वैज्ञानिक ढग से वनाए नलो द्वारा कमरे मे भाप छोडते है। भाप की नमी कमरे से वाहर निकल जाती है, लेकिन उसकी गरमी कमरे मे ही वनी रहती है। उस गरमी से लकड़ी सूख जाती है। लकडी सुखाने का यह वैज्ञानिक तरीका वहुत महँगा पडता है, पर लकडी वहुत जल्दी काम मे आने लायक हो जाती है और उससे वढिया और कीमती चीज़े वन सकती है। हवा द्वारा सुखाने के लिए ज़मीन पर दो इच मोटी राख की तह विछाकर उस पर लकड़ी का चट्टा लगा दिया जाता है। चट्टा लगाने मे इस वात का ध्यान रक्खा जाता है कि हवा सव लकड़ियो मे वरावर लगती रहे। धूप और वर्षा से वचाने के लिए चट्टे के ऊपर टीन या छप्पर छा देते है।

लकड़ी का काम दस तरह के औज़ारों से होगा (१) काटने के, (२) खुरचने के, (३) रन्दने के, (४) कतरने के, (५) जॉच करने के (६) सूराख करने के, (७) ढकेलने तथा खींचने के, (८) कसकर दवाए रखने के, (९) सहयोग देने के, और (१०) सफाई करने के।

काटने के औजारो मे दो तरह की आरियाँ होती है। एक सीध में काटनेवाली, दूसरी गोलाई मे काटनेवाली। सीधे मे काटनेवाली आरियों मे 'रिप' आरी २४से २८इच तक और 'क्रासकट' २० से २६इच तक
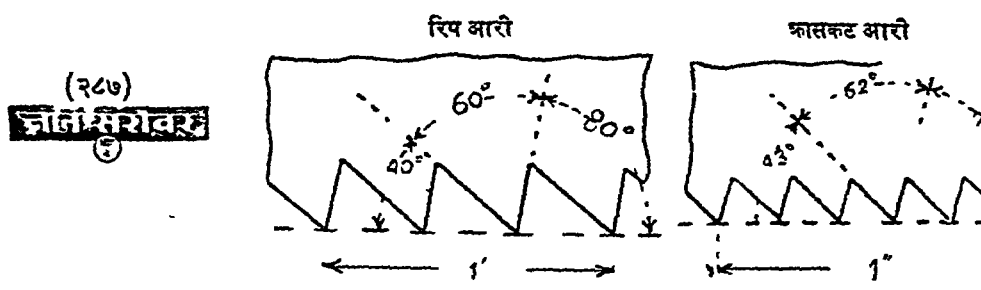
लम्बी होती है। लकड़ी को गोलाई में काटने या उसमे घुमावदार नमूना वनाने के लिए गोलाई में काटनेवाली आरी का प्रयोग होता है। वे छोटी वड़ी हर किस्म की होती है। उनमे से कुछ के नाम ये है, (क) धनुषाकार आरी, (ख) गोलाई मे काटनेवाली आरी, (कम्पास-सा), (ग) सूराख वनानेवाली आरी (होल सा), (घ) प्लाई काटने की आरी।

रन्दने के औज़ारो को रन्दा कहते है। रन्दे का प्रयोग लकड़ी को छीलने, चिकनाने और उसकी सतह को ज़रूरत भर नीची करने के लिए किया जाता है। रन्दे से लकड़ी पर मामूली खुदाई के नमूने भी वना सकते है। रन्दे आम तौर से कई तरह के होते हैं। वड़े रन्दों की चौड़ाई और मोटाई सवा दो इंच और लम्वाई १४ से १८ इंच तक होती है। उनका काम लकड़ी की खुरदरी सतह को छीलकर उसको कुछ समतल और चिकना कर देना होता है। छोटे रन्दे साढ़े सात इंच से लेकर ९ इंच तक लम्वे, २ इंच मोटे और दो इंच चौड़े होते है। वड़े रन्दे के इस्तेमाल के वाद उसी लकड़ी को छोटे रन्दे से चिकनी और नाप के अनुसार समतल करते है। दूसरे क़िस्म के रन्दे वे होते है जिनसे लकड़ी के गोल या घुमावदार हिस्से रन्दे जाते है। उनकी भी दो खास क़िस्में, स्पोक गेव और कम्पास प्लेन है। स्पोक गेव रन्दा हमेशा उस ओर चलाया जाता है जिधर लकड़ी के
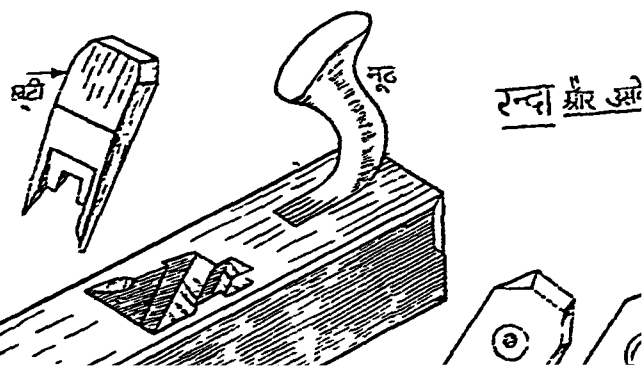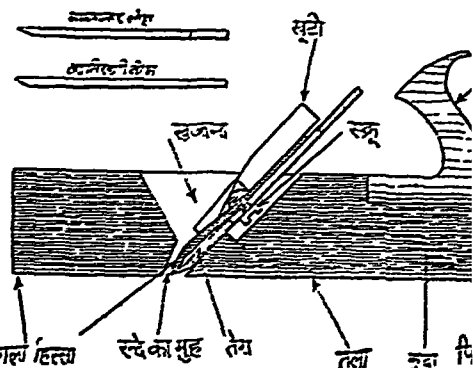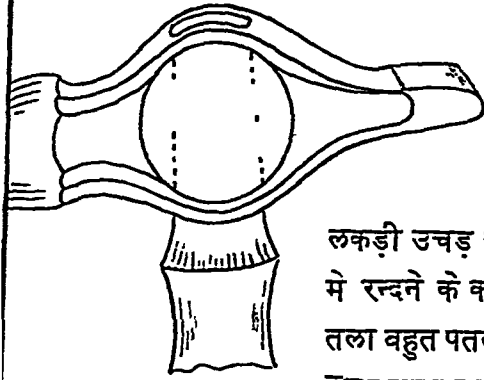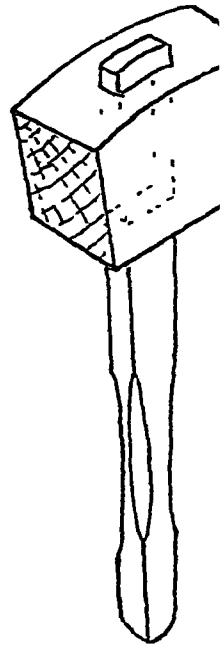
रेगो के रुख होते है, क्योकि उसे उल्टा चलाया जाए तो लकड़ी उचड़ जाती है। कम्पास प्लेन गोलाई मे रन्दने के काम आता है। कम्पास प्लेन का तला वहुत पतला होता है और कमान की तरह इधर उधर घूम भी सकता है। तीसरी तरह के रन्दे वे होते हैं, जिनसे कारनिसो के नमूने वनाए जाते है। उनमे पताम रन्दा, गलता रन्दा, गुरुजखाप रन्दा, झिरी रन्दा आदि मुख्य है।
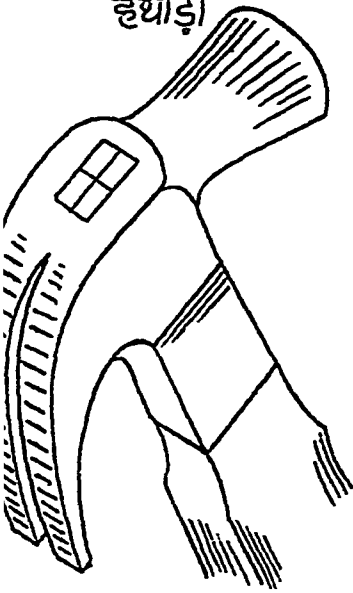
लकड़ी के जोड़ वैठाने के लिए, पेच या कील को फँसाने या अलग करने के लिए मुगरी, हथौड़ा, पेचकस और जम्बूर का प्रयोग किया जाता है। वे औजार छोटे वडे दोनो तरह के होते है।

रुखानी, गोल्ची और वसूला काटने और कतरने के औज़ार है। गोल्ची से गोल या गहरी नाली सी वना सकते है। वे दो तरह की होती है। साधारण और स्क्राइविंग गोल्ची स्क्राइविंग गोल्ची नक्काशी के काम आती है। रुखानियाँ कई
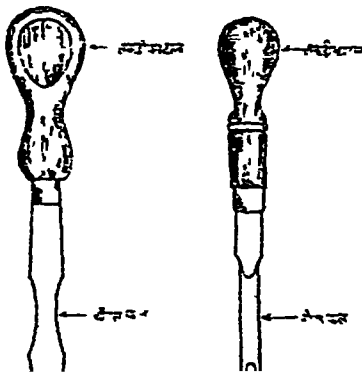
तरह की होती है। सादी, पहलदार, मार्टिज़, गड्ढेदार और तिरछी धारवाली रुखानियाँ। वसूला काटने और छीलने के काम आता है।
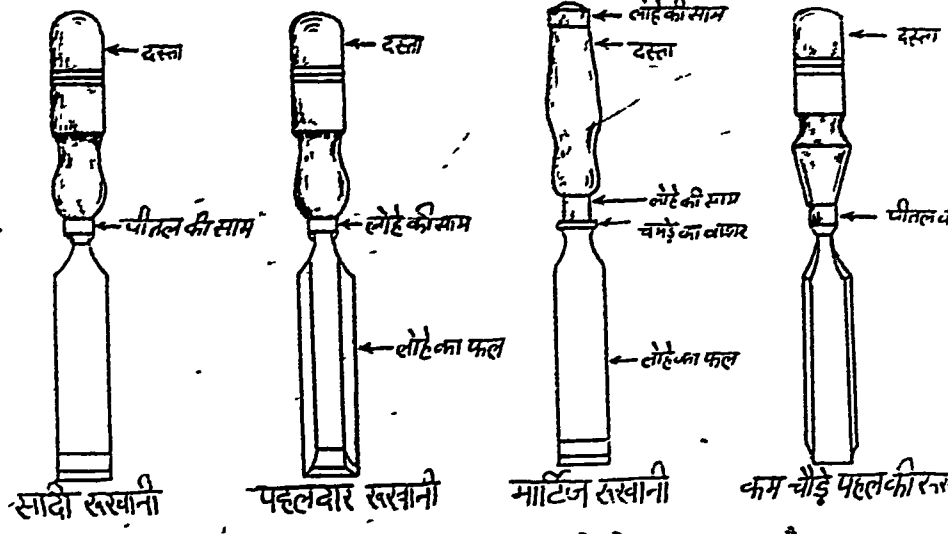
सादी रुखानी — पहलदार रुखानी — मार्टिज रुखानी — कम चौड़े पहलकी रुखानी

ब्रेस दो तरह के होते है, (१) सादा ब्रेस और (२) रैचेट ब्रेस। सादा ब्रेस उल्टा नहीं घूमता, जबकि रैचेट ब्रेस दोनों ओर घुमाया जा सकता है। उससे बड़े बड़े सूराख़ किए जा सकते हैं। छोटे सूराख़ के लिए बरमा होता है। बहुत छोटे छोटे पेंच लगाने के लिए ब्राडल नामक एक चपटे, गोल और तेज़ धार के औज़ार का प्रयोग किया जाता है।

रैचेटब्रेस (हथकल)

गुनिया, बेविल, खतकश और विंग परकार से लकड़ी पर निशान बनाने का काम लिया जाता है। गुनिया और उसकी एक क़िस्म माइटर स्क्वायर से ठीक निशान लगाकर लकड़ी पर चौकोर कोने बनाते हैं। बेविल के फल की दस्ती घुमाई जा सकती। गुनिया की दस्ती कसी रहती है। बेविल द्वारा हर एक कोण पर समानान्तर रेखाएँ खींची जा सकती है। खतकश भी दो तरह के होते है। एक काटने वाले, दूसरे निशान लगाने वाले। एक साथ दो निशान लगानेवाले खतकश को

गुनिया
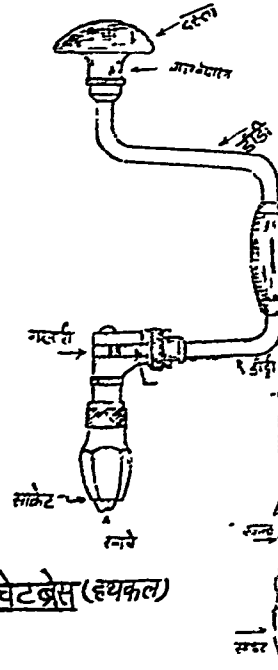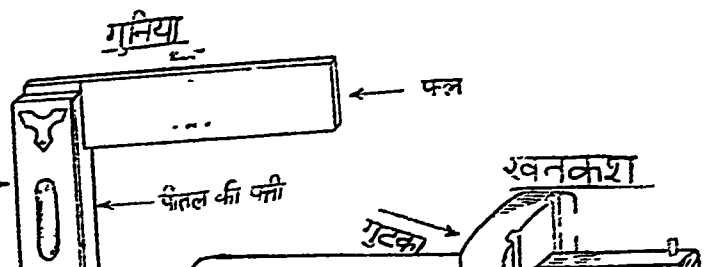
खतकश

दोहरा खतकश कहते है। गोल निशान- लगानेवाले औज़ार को विग परकार कहते है। लकड़ी को मनचाहे कोण पर काटनेवाले यंत्र को गेरिंग-टूल कहते है।

लकड़ी के सामान की मजबूती असल में जोड़ो पर निर्भर होती है। इसलिए जोड़ वहुत ही सावधानी से लगाने चाहिए। जोड़ तीन तरह से लगाए जाते है कील या पेच द्वारा, सरेस द्वारा और लकडी मे लकड़ी फँसा कर। दो लकडियों के आखिरी सिरों को मिलानेवाले जोड़ को टक्कर लगानेवाले जोड कहते हैं। उसकी खास किस्मे तीन है :—

कोनो के जोड़

(क) साधारण वट जोड—दो लकडियो को कील या सरेस से जोडने को कहते है। उसे टकरी जोड भी कहते है।

(ख) पताम जोड—एक लकडी मे दूसरी लकडी की मोटाई के वरावर पताम वनाकर कील, पेच या सरेस से जोड़ने को पताम जोड़ कहते हैं। दोनो लकड़ियो में पताम वनाकर जोडने को दोहरा पताम जोड़ कहते है। (चित्र पृ० २९२ पर)

(ग) डैडोवट जोड—एक लकड़ी मे सामने की ओर झिरी, और दूसरी मे वच्चा वनाकर जोड़ने को डैडोवट जोड या नली वच्चा जोड़ कहते है। (चित्र पृ० २९२ पर)
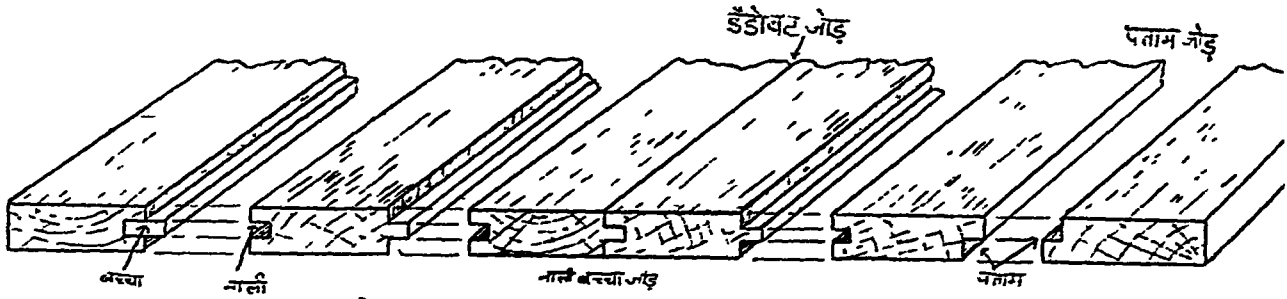
इनके अलावा हार्उज़िग जोड़, रिवेटेड माइटर वट जोड़, निकिल जोड़, खुला और अधखुला जोड़, वीम जोड़, वाक्स डवटेल जोड़ आदि टक्कर मिलानेवाले जोड़ की ही किस्मे है।
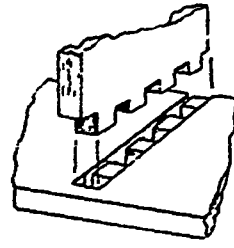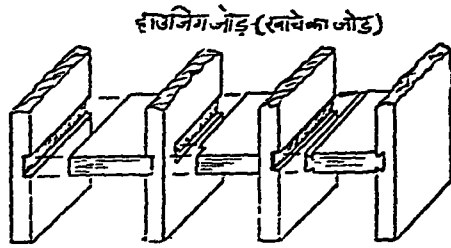
साधारण हार्उजिग जोड़—एक लकड़ी मे दूसरी लकड़ी की मोटाई के वरावर गड्ढा वनाकर वैठाने को साधारण हार्उज़िग जोड़ कहते है।
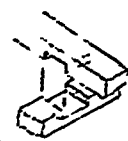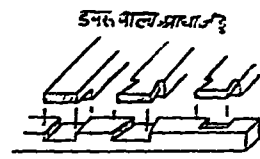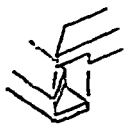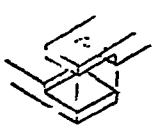
डमरूनुमा जोड़—एक टुकड़े की टक्कर को डमरूनुमा और दूसरे मे वैसा ही खाँचा वनाकर जोड़ने को डमरूनुमा जोड़ कहते है।

लैप्ड जोड़—दोनों लकड़ियो मे गड्ढा वनाकर जोड़ने को लैप्ड जोड़ कहते हैं।

व्रिडिल जोड़—टक्कर की तरफ लकड़ी मे तीन भाग करके वीच का हिस्सा निकालकर और दूसरी लकड़ी की टक्कर मे भी तीन भाग करके इधर उधर के दो हिस्से निकालकर जोड़ देने को व्रिडिल जोड़ कहते है।

मार्टिज़ और टेनन जोड़—एक लकड़ी मे चूल और दूसरी मे उसके वरावर छेद वनाकर जोड़ने को मार्टिज़ और टेनन जोड़ कहते हैं। ये भी कई तरह के होते हैं।

मार्टिज एंड टेनन
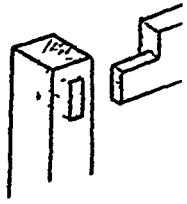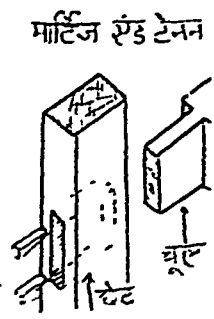
ब्रिडिल जोड़
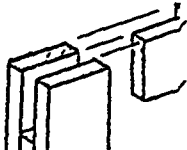
माइटर जोड—तस्वीरो के चौखटे आदि वनाने के लिए लकडी के टुकड़े को ४५° के कोण पर काटा जाता है। फिर उन्हे अलग अलग कई तरह से जोड़ते हैं। उसे माइटर या कलम जोड कहते है।
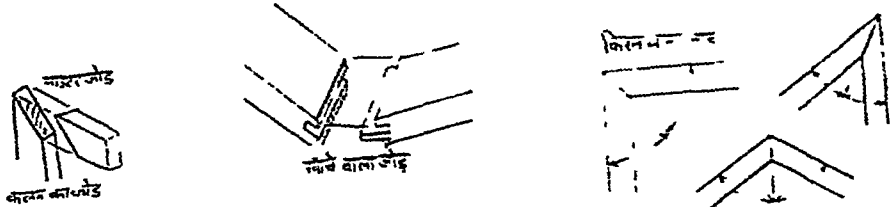
रगो या लकीरों द्वारा किसी दृश्य या वस्तु का ऐसा आकार वनाना जिसे देखते ही असली चीज का ठीक ठीक अनुमान हो जाए उस दृश्य या वस्तु की ड्राइंग कहलाता है। ड्राइग दो तरह की होती है, सुविक्षेपद्रेखीय विक्षेप और समितीय विक्षेप। जब किसी वस्तु के भाग समतल, उभार या अलग अलग हिस्से अलग अलग दिखाए जाते है तो उसे सुविक्षेपद्रेखीय विक्षेप कहते हैं; और जब किसी वस्तु के तीनो भाग समतल, उभार या भिन्न भिन्न हिस्से साथ साथ दिखाए जाते है, तो उस स्थिति को समितीय विक्षेप कहते है। ड्राइंग के दोनो तरीके यहाँ दिए हुए चित्रों द्वारा भली भाँति समझे जा सकते है।
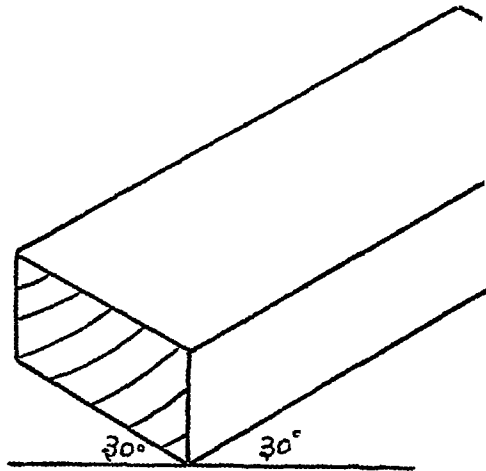
ममितीय विक्षेप (आइसोमेट्रिक पोजेक्शन)

सुविक्षेपद्रेखीय विक्षेप (आर्थोग्राफिक पोजेक्शन)
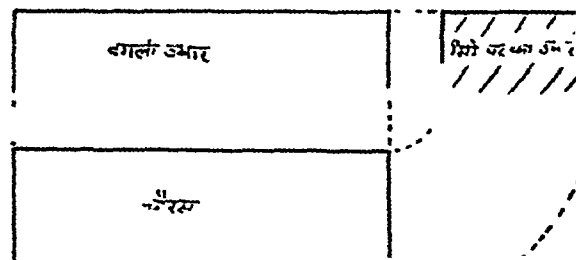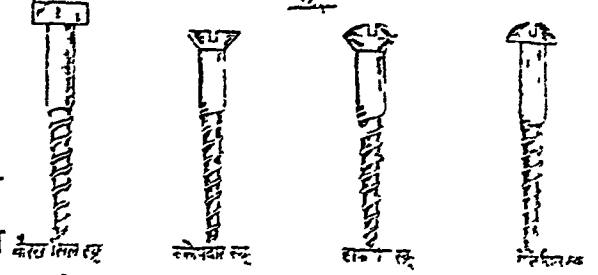
जोड़ की तरह लकड़ी के सामान की मज़वूती वहुत कुछ मुनासिव कील, स्क्रू और वोल्ट के इस्तेमाल पर निर्भर होती है।

स्क्रू की नोक तेज होनी चाहिए। उसकी चूड़ियाँ ठीक होनी चाहिए, ताकि लगाए जाते समय वे लकड़ी मे आसानी से अपना रास्ता वना सकें। वोझिल या मोटी लकड़ियाँ जोड़ने मे नट वोल्ट का उपयोग किया जाता है। वोल्ट की फुलिया जितनी ही चौड़ी होगी, वोल्ट की पकड़ उतनी ही मजवूत होगी। वोल्ट की डाँड़ी की मोटाई सूराख़ के अनुसार ही होनी चाहिए। डाँड़ी अगर पतली होगी तो उसकी पकड़ कमजोर होगी। वोल्ट को दूसरी ओर से ढिवरी द्वारा खूव कस देना चाहिए। यदि ढिवरी फिट न वैठती हो तो वागर लगाकर ढिवरी को कस देना चाहिए।

घरेलू उद्योग धंधे

(२) मुर्ग़ीख़ाना

मुर्ग़ी पालने का काम अव एक घरेलू धंधा वन गया है। उसे सफलता से चलाने के लिए कुछ वातो का जानना ज़रूरी है।

प्रति मुर्गी तीन वर्ग फुट जगह की आवश्यकता होती है। थोड़ी जगह मे वहुत सी मुर्गियाँ भर देने से गंदगी वढती है और मुर्गियों मे तरह तरह की वीमारियाँ पैदा हो जाती हैं।
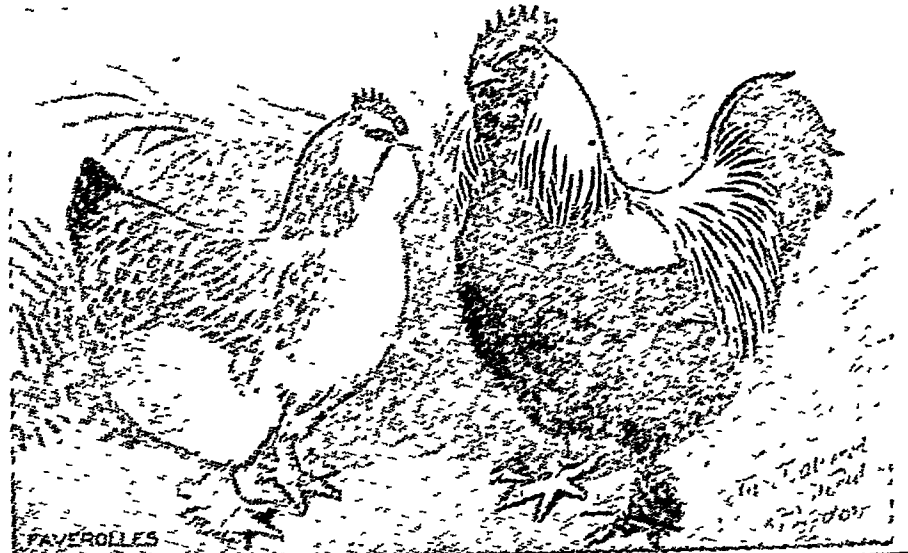
मुर्गियों के

मुर्गियो का दरवा

आराम करने की जगह को दरवा कहते है। सवसे अच्छा दरवा वह समझा जाता है जिसके ऊपर फूस का छप्पर हो और जिसमे चारो ओर जाली लगी हो। दीवारो की जगह लोहे के पोल गाड़कर उनके चारो ओर महीन छेद की जाली लगा दी जाए तो और अच्छा रहता है। तेज़ वर्षा, लू और कड़ी सर्दी से वचत के लिए जाली पर टाट के पर्दे डाल दिए जाते है। दरवे के वाहर मुर्गियो के घूमने फिरने के लिए एक वाडा होना चाहिए। वाड़े की चारदीवारी छे फुट ऊँची होनी चाहिए। दरवे और वाड़े की लम्वाई चौड़ाई मुर्गियो की संख्या पर निर्भर है। अगर मुर्गियाँ भारी नस्ल की न हो तो वाड़े की चारदीवारी ऊँची रखनी चाहिए।
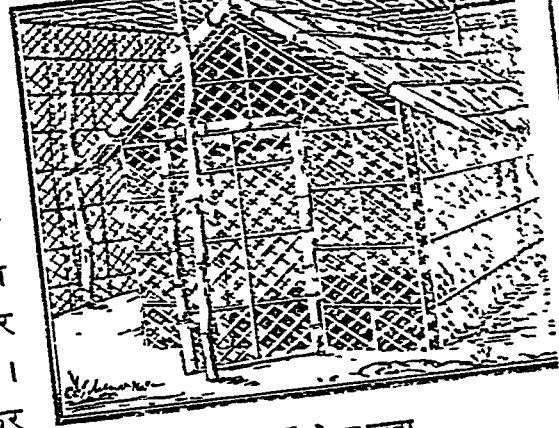
अच्छी नस्ल के अंडे और वच्चे प्राप्त करने के लिए अच्छी नस्ल की मुर्गियाँ पालना ज़रूरी है। अच्छी अंग्रेज़ी नस्ल की मुर्गियो में लेग हार्न, न्यू हैम्पशायर, लाइट ससेक्स, रोड आइलैंड इत्यादि मशहूर हैं। मुर्गी पालने का धंधा कम से कम अच्छी नस्ल की दस मुर्गियो से शुरू करना चाहिए जिनमे नौ मादा और एक नर हो। उन दस के अलावा चार पाँच देशी मुर्गियाँ रखना भी

खराब मुर्गी

अच्छी मुर्गी, बड़ी कलगी, चोंच दरमियानी और चमकदार, पीठ चौड़ी और बड़ी।
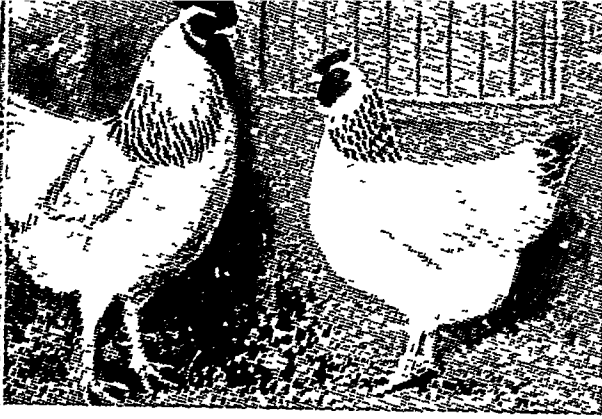
लाइट ससेक्स नस्ल की मुर्गियाँ

ज़रूरी है। देशी मुर्गियों को अंडों पर बिठाकर अच्छी नस्ल की मुर्गियों की संख्या बढ़ाते रहना चाहिए।

अंडों पर बिठालने के लिए किसी जान पहचान की जगह से ऐसी पठोर मुर्ग़ियाँ खरीदनी चाहिए, जिन्हें कोई बीमारी न हो। देशी मुर्गियों को दरबे में रखने से पहले उनके परों और बाजुओं में नीम का तेल ज़रूर मल देना चाहिए, क्योंकि खुद अंडे देने के बाद वही मुर्ग़ियाँ कुड़क होकर अच्छी नस्ल की मुर्ग़ियों के अंडे सेती हैं। यदि वे रोगी हुईं तो उनकी बीमारी दूसरी मुर्गियों और उनके बच्चों को भी लग जाएगी।

मुर्ग़ियों को अंडे देने के वास्ते शांति और एकान्त की जरूरत होती है। इसके लिए बालू से आधी भरी हुई, कम ऊँची और चौड़े मुँह की मिट्टी की एक नाँद रख देना चाहिए, ताकि उसमें दो तीन मुर्ग़ियाँ एक साथ आराम से बैठकर अंडे से सकें।

आजकल अपने आप बंद होने-वाला एक दरबा भी बाज़ार में मिलता है। बड़े पैमाने पर मुर्गी पालनेवालों के लिए वह अच्छी चीज़ है। अंडे से बच्चे निकालने की एक मशीन भी आती है। वह दो प्रकार की होती है। एक मिट्टी के तेल से चलनेवाली और

INSECT POWDER
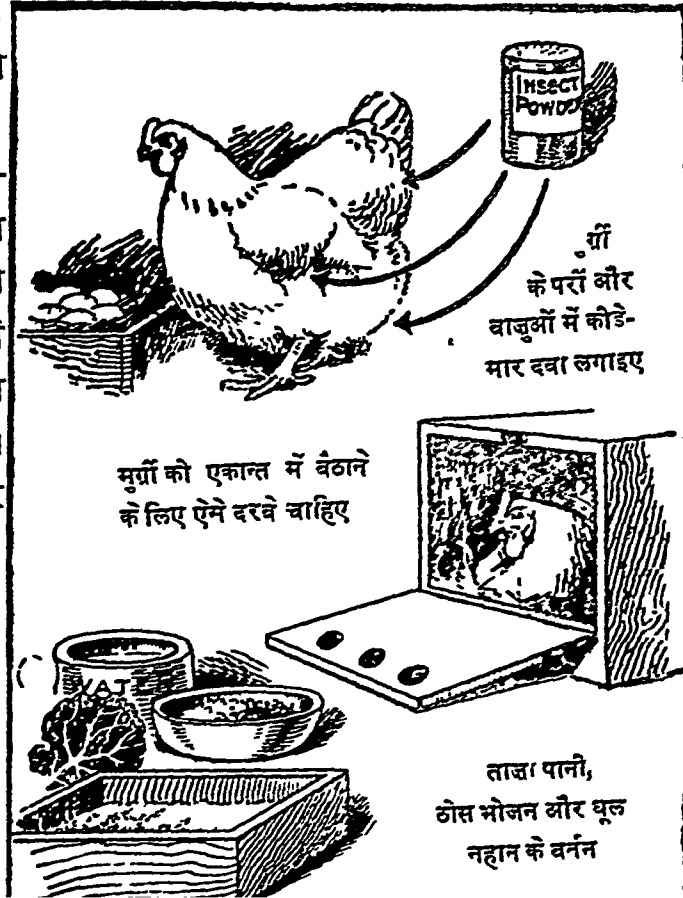
मुर्गी के परों और बाजुओं में कीड़े-मार दवा लगाइए

मुर्ग़ी को एकान्त में बैठाने के लिए ऐसे दरबे चाहिए

ताजा पानी, ठोस भोजन और धूल नहान के बर्तन

दूसरी विजली से चलनेवाली। उस मशीन को 'सेनी' कहते हैं। उससे एक साथ ५० अंडे सेये जा सकते हैं।

कुड़क मुर्गी के नीचे ९ से १२ तक अंडे रखे जा सकते है। अंडे सेते समय मुर्गी को ठोस भोजन देना चाहिए, ताकि वह अधिक से अधिक देर तक अपने पंखो में अंडो को छिपाए बैठी रहे। तीसरे पहर दस पन्द्रह मिनट के वास्ते मुर्गी को वाहर निकाल देना चाहिए। मुर्गी के नीचे अंडे रखने का समय जुलाई से मार्च तक होता है। परन्तु सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर तथा मार्च के महीने सबसे अच्छे माने जाते हैं। बड़ी नस्ल के वच्चे ९ महीने और छोटी नस्ल के छे महीने की उम्र मे अंडा देना शुरू कर देते है।

अंडों मे से निकले हुए वच्चे चूज़े कहलाते हैं। अंडे से निकलने के वाद ३६ से ४८ घंटे तक उन्हे कुछ खाने पीने को नही देना चाहिए। उसके वाद उन्हे पानी, मक्खन निकला हुआ दूध और वारीक चुगा देना चाहिए। ६ छटाँक मक्का के आटे में ३ छटाँक ज्वार का आटा, ४ छटाँक मूँगफली की खली और ३ छटाँक गेहूँ का चोकर मिलाकर चुगा बना लेना चाहिए। उसमे थोड़ा सा नमक भी डाला जा सकता है। डबल रोटी का चूरा, गेहूँ और चावल का दलिया भी उचित भोजन है।

लकड़ी या मिट्टी के किसी छिछले वर्तन मे चूजो के लिए दाना पानी रख देना चाहिए, ताकि अपनी इच्छा के अनुसार वे जव चाहे खा पी सके। डेढ़ महीने के हो जाने पर चूज़ो को हैज़ा, चेचक आदि छूत की वीमारियो के टीके लगवा देना चाहिए। छे महीने

एक मुर्गीखाने में ताज़े निकाले हुए अंडे
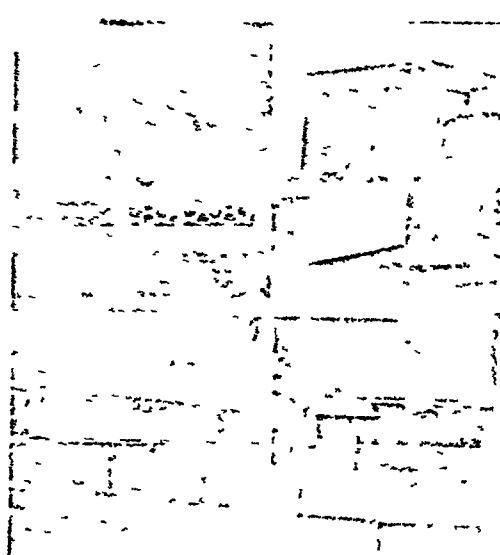
की उम्र पर दुबारा टीका लगवा देने से इन बीमारियो का खतरा बहुत कम हो जाता है।

मुर्गियों को सुबह सवेरे साफ़ पानी और ठोस भोजन देना चाहिए। प्रति मुर्गी एक छटाँक के हिसाब से मक्का, ज्वार या गेहूँ का दलिया देना चाहिए। उनको हरी सब्ज़ी भी खिलाना चाहिए। शाम को दो घंटा दिन रहने पर मुर्गियों को फिर दाना दिया जाना चाहिए। यदि हो सके तो लहसुन, प्याज़, गोश्त, क़ीमा, छिछड़े इत्यादि भी देते रहना चाहिएं। पुदीने को पीसकर और पानी में मिलाकर मुर्गियों को पीने के लिए देने से उनका हाज़मा दुरुस्त रहता है, और अंडों के छिलके मज़बूत होते हैं।

मुर्ग़ियों के खाने और पानी पीने के बर्तन ऐसे हो जिनमे मुर्गी आसानी से अपनी चोंच डाल सके। पानी के बर्तन मे लोहे के टुकड़े डाल रखने से लोहा पानी के साथ मिलता रहता है। उस पानी को पीने से मुर्गी के पर जल्दी नहीं झड़ते और वह अंडे अधिक देने लगती है।

मुर्गियों के कुछ रोगों की पहिचान

मुर्गियो को आम तौर से तीन तरह के रोग होते है—

(१) हैजा और चेचक आदि छूत की बीमारियाँ।

(२) अपच, और पेचिश जैसी पेट की बीमारियाँ।

...हुई दुम—मुर्गियों की यह एक आम बीमारी है।

मुंह आना:—भूख कम हो जाती है। मुर्गी हांफने लगती है। पर गिर जाते हैं और आँखें अक्सर बंद रहती हैं और अंत में मुर्गी मर जाती है।

हवा की नालों में सूजन:—मुर्गी अक्सर बैठ जाती है और जोर २ से हांफने लगती है।

चेचक

पैर के तलवों की सूजन

(३) और बाहरी बीमारियाँ, जैसे चोट लगना, अडे खाने लगना और खपरा हो जाना इत्यादि ।

छूत की बीमारियो से बचाव के लिए सबसे अच्छा इलाज टीका लगवाना है। जो मुर्गियाँ पेट के रोगों की शिकार हों उनको दरबे से अलग कर देना चाहिए। बाहरी बीमारियो का मामूली इलाज करना चाहिए। उन बीमारियो का असर बच्चो पर नहीं पडता।

मुर्गीखाने की ठीक देख भाल करते रहने से मुर्गियाँ रोग से बची रहती हैं। उन्हे रोग से बचाने के लिए यह जरूरी है कि कौए आदि उनके खाना पानी को गदा न करने पाएँ। किसी भी बीमार मुर्गी को बाड़े मे रहने या आने न दे। मौसम की सख्ती से मुर्गियो को बचाते रहे और मुर्गीखाने में रत्ती भर भी गदगी न रहने दे। किसी मुर्गी को अनमनी देखते ही उसे तुरंत बाडे से बाहर निकाल दे। कीडे मकोडो से बचाने के लिए महीने मे दो बार दरबे मे गैमक्सीन जरूर छिडकिए। इन सब बातो पर ध्यान रखने से मुर्गियो को बीमार पडने से काफी हद तक बचाया जा सकता है।

भारत के हर राज्य मे सरकारी मुर्गीखाने हैं। और उनकी शाखाएँ पूरे राज्य मे फैली होती है। सरकारी आदमी गाँव गाँव जाकर मुफ्त सलाह देते है और सस्ते अडे मुर्गियाँ भी पहुँचाते हैं। सरकारी मुर्गीखानो का मेम्बर बन जाना चाहिए। मुर्गीखानो के अधिकारियो से खुद भी मिलकर जानकारी प्राप्त की जा सकती है। उनसे यह भी मालूम किया जा सकता है कि लाभ उठाने के लिए मुर्गीखाने को किस तरह चलाना चाहिए। देहली मे किंग्सवे कैंप पर 'जगत् पोल्ट्री फार्म' एक अच्छा लाभदायक फार्म है। इसी तरह एटा मे एक अच्छा फार्म 'मिशन पोल्ट्री फार्म' है।
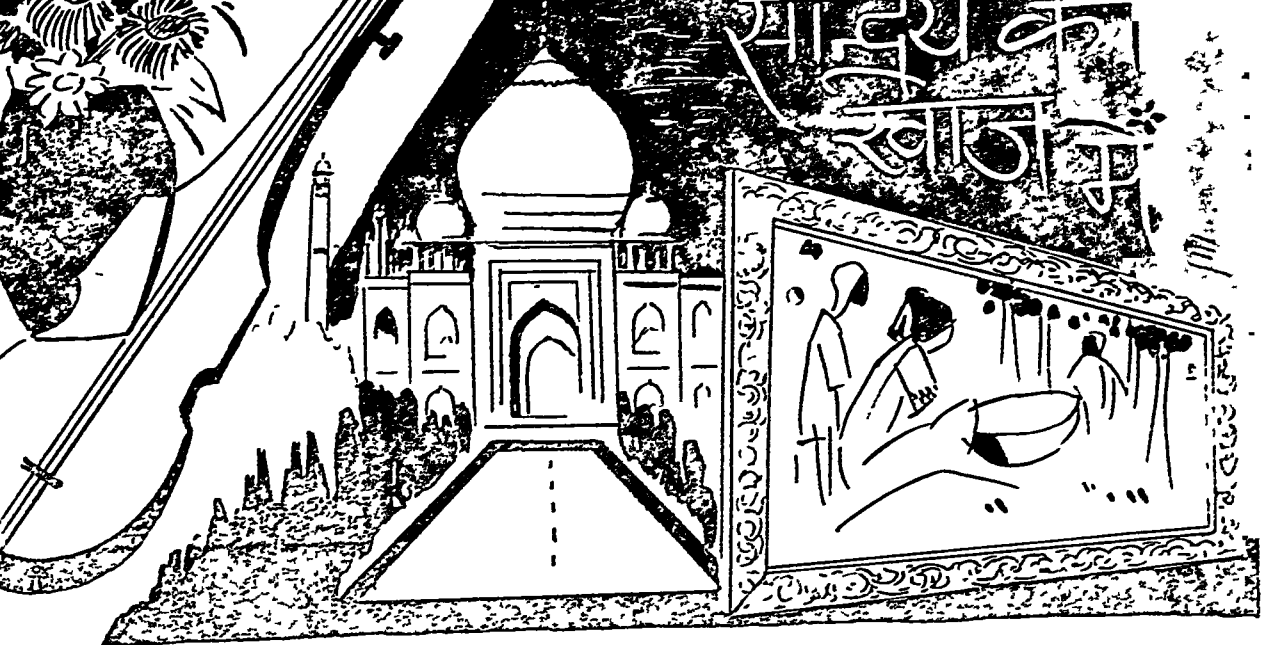
अजन्ता और एलोरा

हजारों साल पहले हमारे देश मे पहाड़ काटकर मंदिर वनाने की प्रथा चल पड़ी थी। तब से सैकड़ो गिरि-मदिर भाँजा, कार्ले, कन्हेरी, नासिर, वरार आदि में वनते रहे। मनुष्य की वनाई भारतीय गुफ़ाओं में अजन्ता की गुफाएँ शायद
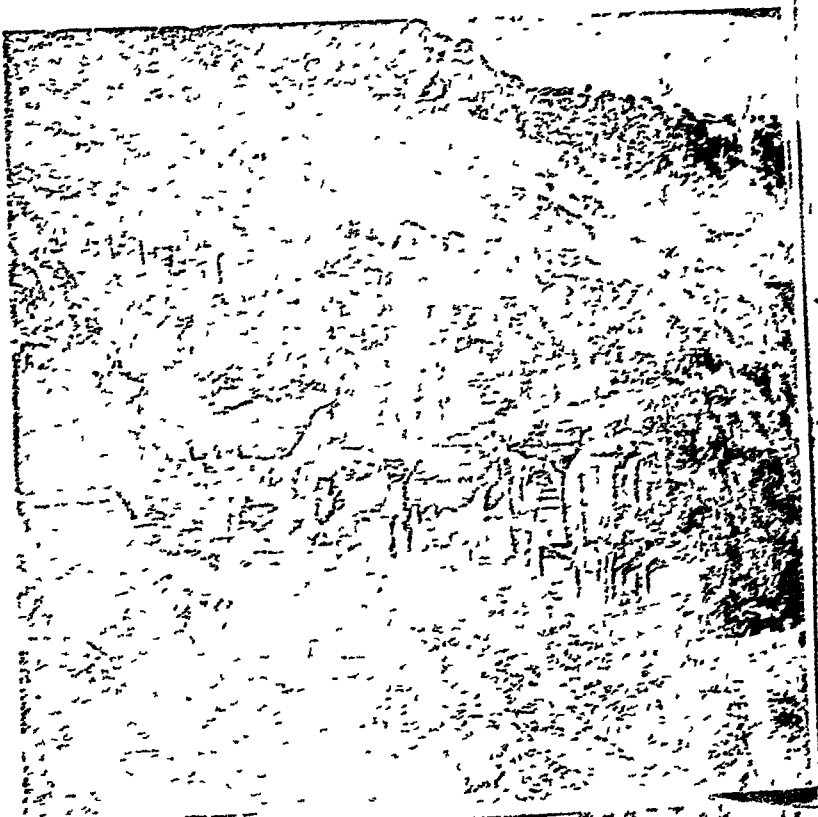
अजन्ता के गुफा मन्दिरों

सबसे पुरानी हैं। एलोरा एलिफेंटा आदि की गुफाएँ सबसे बाद की हैं।

बम्बई और हैदराबाद के बीच नगे पहाडो की एक माला उत्तर से दक्षिण तक चली गई है। उसे सह्याद्रि पर्वतमाला कहते हैं। अजन्ता के गुफा मदिर उसी पर्वतमाला मे हैं। उनके पास ही थोडी दूर पर बाघुर नदी पहाडो के पैर मे साँप सी लिपटकर कमान की तरह मुड़ गई है। वहाँ सह्याद्रि पर्वतमाला यकायक आधे चाँद जैसी बन गई है। वहाँ ऊँचाई कोई ढाई सौ फुट है। हरे भरे वन के बीच एक पर एक सजाए गए मच की तरह ऊँची उठती हुई वह पर्वतमाला हमारे पुरखो को भा गई। उन्होने पहाड काटकर खोखले किए फिर उनमें सुदर भवन बनाए और उन भवनो के खभो पर विहँसती हुई मूर्तियाँ उभारी। इतना ही नही, भवनो के भीतर की दीवारे और छते भी रगड कर चिकनी की और उनकी सतह पर चित्रों की एक दुनिया बसा दी। दूर दूर तक उन चित्रो की सुदरता की धूम मच गई। पर समय ने पलटा खाया। अजन्ता और उसको जीवन देनेवालो का युग खत्म हो गया। जगल ने गुफाओं को चारों ओर से ढक लिया। पास रहनेवाले भी भूल गए कि वे एक महान् कलामडप के निकट बसते है।

सिलसिले का दृश्य

आज से कोई अस्सी साल पहले पुराने हैदराबाद राज्य मे अजन्ता के पास अंग्रेजी सेना की एक टुकड़ी ठहरी थी। एक दिन उसका एक कप्तान शिकार के पीछे घोड़ा दौड़ाता उधर निकला, तो सहसा उसकी नजर सीढ़ियों के एक सिलसिले के ऊपर चित्रो से भरे भवनो की पाँति पर टिकी। वह घोड़े से उतरकर एक भवन मे घुसा। बरामदे और हाल की दीवारों पर छाई हुई छटा को देखकर वह ठगा सा रह गया। उसी कप्तान की बदौलत संसार ने अजन्ता की गुफाओं को फिर से पाया।

अजन्ता की गुफाओ की दीवारों पर गुमनाम कलाकारो ने जीवन की सारी भिन्नताएँ दिखलाकर कूची और छेनी की जबानी जीवन के समूचेपन की कहानी पेश की है। कही बंदरों की कहानी है, तो कही हाथियो और हिरनो की। कही क्रूरता और भय की कहानी है, तो कही दया और त्याग की। जहाँ पाप दरसाया गया है, वहाँ क्षमा का सोता भी फूट रहा है। कलाकारो ने राजा और कगाल, विलासी और भिक्षु, नर और नारी, मनुज और पशु, सभी के चित्रो से गुफाओ को सजाया है। उन चित्रो मे महात्मा बुद्ध का जीवन हजार धाराओं मे होकर बहता है।

बुद्ध कही हाथ मे कमल लिए खडे है और उनके उभरे नयनो की ज्योति मन्द मन्द धारा की तरह आगे को फैलती जा रही है। और पास ही उसी तरह कमलनाल धारण किए यशोधरा त्रिभंग में खड़ी है।

लड़ते हुए हाथी

फिर यशोधरा और राहुल के चित्र हैं--भिन्न भिन्न अवस्थाओं के, अलग अलग भावनाओं के। उनमें से एक है 'महाभिनिष्क्रमण' का चित्र। उस समय का चित्र जब गौतम सदा के लिए ससार की माया से नाता तोड़कर घर छोड़ रहे है। यशोधरा और राहुल नींद में खोए हुए भी गौतम के गृहत्याग पर जैसे अपने धड़कते हुए हृदयों को सँभाले हुए है। बालक राहुल के साथ यशोधरा का एक और चित्र वह है, जब बुद्ध पति की तरह नहीं भिखारी की तरह यशोधरा के दर्वाज़े पर आते है और भिक्षा-पात्र को आगे बढा देते है। यशोधरा का जीवनधन भिखारी बन कर आया है! वह क्या दे, क्या न दे? वह महाभिक्षु तो सोना-चाँदी, मणि-माणिक्य, हीरा-मोती को मिट्टी के मोल भी नही गिनता। पर नही, उसके पास कुछ है, जो हीरा-मोती से भी कही अधिक मूल्यवान है। उसका एक मात्र लाल, उसके कलेजे का टुकड़ा राहुल। और वह झट राहुल को बुद्ध की ओर बढा देती है। चित्रकार ने जैसे उस घड़ी मे यशोधरा के ख़ुशी से मगन रूप को अपनी रेखाओं मे बाँध लिया है।

अजन्ता के गुफा मन्दिरो मे बुद्ध के पिछले जन्मो की कथाओं के भी ढेरो चित्र मौजूद है। बुद्ध के पिछले जन्म की कथाओं को "जातक" कहते है।

महाभिक्षु को यशोधरा की भिक्षा

ज़ातक कथाएँ कुल ५५५ हैं, और जिस पुस्तक में उन्हें संग्रह किया गया है, उसे भी 'जातक' ही कहते हैं। जातकों का बौद्धों में बड़ा मान है। जातकों के अनुसार बुद्ध अपने पिछले जन्मों में हाथी, बंदर, हिरन आदि के रूप में कई योनियों में पैदा हुए थे और संसार के कल्याण के लिए दया और त्याग का आदर्श क़ायम करके बलिदान हो गए थे। बुद्ध के पूर्व जन्म के चित्रों में यह बड़ी खूबसूरती के साथ दिखाया गया है कि उस समय पशुओं तक ने उचित राह पर चलने में किस प्रकार कष्ट सहे और त्याग किए।

अजन्ता में लगभग २९ गुफाएँ हैं, जो २५० फ़ुट ऊँचे सीधे खड़े पहाड़ को हाथ से काटकर बनाई गई हैं। उनके बनाने में कितना समय, कितनी मेहनत, कितना धन लगा होगा इसका कुछ अनुमान उन गुफ़ाओं को देखकर किया जा सकता है, जो पूरी नहीं बन पाई हैं। शायद किसी राजनीतिक उथल पुथल के कारण कला के उस अद्भुत संसार की रचना बंद हो गई होगी और कुछ गुफ़ाओं को अधूरी ही छोड़कर उनके सिरजनहार अपनी राह चल दिए होंगे। कुल २९ गुफाओं में से २४ विहार और ५ चैत्य हैं। विहार एक प्रकार के मठ होते थे, जिनमें बौद्ध भिक्षु रहा करते थे। चैत्य एक प्रकार के मंदिर थे, जिनमें पूजा के लिए स्तूप या बुद्ध की मूर्ति स्थापित होती थी।

अजन्ता के गुफ़ा मंदिरों के बाहर बरामदे की दीवारों में मेहराबनुमा खिड़कियाँ हैं, जो भीतर रोशनी पहुँचाने के

एक चैत्य का भीतरी भाग
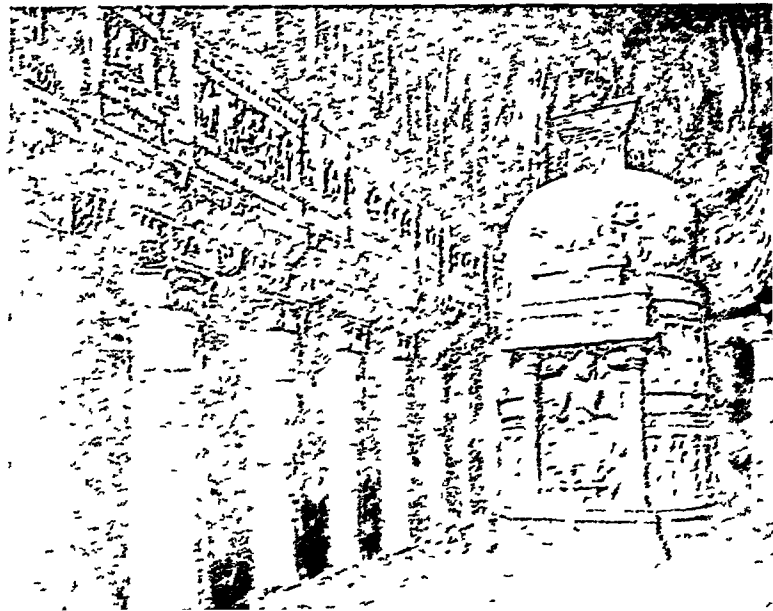
लिए बनाई गई थी। उन खिड़कियों की बनावट लकड़ी की खिड़कियो जैसी है, और उनके बाहर और भीतर बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ बनी हुई है। वे मूर्तियाँ असाधारण रूप से सुंदर है। फिर भी उनकी सुन्दरता उभर नही पाती। चित्रो की सुन्दरता उसे दबा लेती है, क्योकि अधिकतर गुफा मंदिरो की दीवारो पर और छतो पर भी एक से एक सुंदर चित्र छाए हुए है।

अजन्ता की गुफाओ का निर्माण ईसा से करीब दो सौ साल पहले शुरु हो गया था, और कोई नौ सौ साल तक चलता रहा। यानी सातवी सदी तक वे गुफाएँ बनकर तैयार हो चुकी थी। एक दो गुफाओ मे करीब दो हजार साल पुराने चित्र भी सुरक्षित है। पर अधिकतर चित्र पाँचवी और सातवी सदी के बीच के ही बने है। पहली गुफाओं और पहले चित्रो के बनने के समय अजन्ता और दक्षिण भारत मे आंध्र-सातवाहनो का राज्य था और आखिरी गुफाओ और चित्रो के समय चालुक्यो का। चालुक्यो के दरबार मे ईरान के बादशाह खुसरु दूसरे ने राजदूत भेजे थे। फलत अजन्ता मे ईरानी लोगो का भी चित्र आँक दिया गया। उतने पुराने युग मे जितने अधिक और जैसे जीते जागते, चलते फिरते से चित्र अजन्ता मे बने वैसे और कही नही बने।

एलोरा अजन्ता से लगभग ७५ मील दूर औरंगाबाद जिले मे है। जैसे अजन्ता के चित्रो की खूबसूरती बेमिसाल है, वैसे ही एलोरा की मूर्तियो की कारीगरी बेजोड है। पर इसका यह अर्थ नही है कि एलोरा की दीवारों पर चित्रकारी है ही नही, जैसे अजन्ता मे मूर्तियो के होते हुए भी प्रधानता चित्रो की है, वैसे ही चित्रो के बावजूद

ईरानी राजकुमार और राजकुमारी
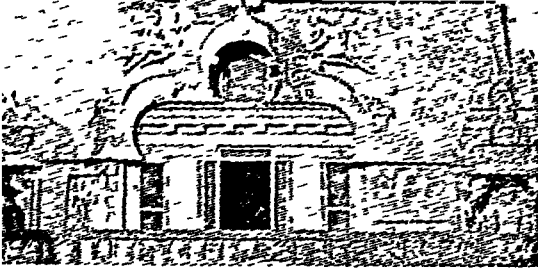
रा के एक गुफा मंदिर के ऊपरी तले का बाहरी भाग

एलोरा मे प्रधानता मूर्तियों और वेलवूटों की है।

एलोरा के मदिरों की संख्या तीस से ऊपर है। वे मंदिर लगभग वारादरी के नमूने पर दो दो तीन तीन मंजिलो मे कटे हुए है, जवकि अजन्ता की गुफ एँ, एक ही तल की है और एक ही नजर मे वहाँ की सारी खूवसूरती समेटी जा सकती है। यों तो ठोस पहाड़ को काटकर एक मज़िल के भवन वनाना भी कुछ आसान काम नहीं है, पर उसे काटकर उसमे दो और तीन मजिल की इमारते वनाना तो वहुत ही विरते का काम है।

अजन्ता के चैत्य और विहार वौद्धों के है, पर एलोरा मे वौद्ध, हिन्दू और जैन तीनो धर्मो के विहार और मंदिर मौजूद है। उनमे एक चैत्य और ग्यारह विहार वौद्धों के है, सत्रह हिन्दू मंदिर है और वाक़ी जैन। भारत मे धर्मो और सप्रदायों की विविधता हमेशा रही है, पर कलाकारों ने कला के सृजन मे हिन्दू, वौद्ध आदि के भेद कभी नहीं किए। एक ही कला-रूप का विकास होता रहा, और वौद्ध, हिन्दू, जैन सभी कलाकार उसका समान रूप से व्यवहार करते रहे। उनके अधिकतर देवता भी समान है। यही कारण है कि एलोरा मे तीनो सप्रदायों के मंदिरों की रचना मे एक ही कला-रूप अपनाया गया है। उनमे एक ही प्रकार के कटाव अपने भिन्न भिन्न रूपों मे वरते गए है।

एलोरा में एक जैन देवी की मूर्ति

मोटे, चिकने, चमकते हुए खंभों पर इतने सुंदर और अनन्त बेलबूटे काटे गए हैं कि देखकर अचरज होता है। ऐसे सुंदर खंभे भारत के दूसरे गुफा मंदिरों में और कहीं देखने में नहीं आते।

एलोरा के चिकने चमकते हुए खंभे

एलोरा के मंदिर लगभग तीन सौ वर्ष में राष्ट्रकूट राजाओं के समय में बने थे, जिन्होंने छठी सदी से लेकर लगभग नवीं सदी तक राज्य किया था। अकेले कैलाश मंदिर लगभग १०० साल में बना। दशावतार मंदिर संगतराशी का अद्भुत नमूना है, जिसमें विष्णु के दसों अवतारों की अत्यन्त सुंदर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

परन्तु एलोरा के मंदिरों का मुकुटमणि तो कैलाश मंदिर ही है, जिसमें शिव की भव्य मूर्ति विराज रही है। संसार में चट्टान काटकर सैकड़ों मंदिर बनाए गए हैं, पर कैलाश के जोड़ का मंदिर कहीं नहीं बना। पहाड़ की कोख से तीस लाख हाथ पत्थर निकालकर एक इतनी विशाल दुमंज़िली इमारत गढ़ दी गई है, जिसमें मय अपने हाते के समूचा ताजमहल रख दिया जा सकता है। आदमी के पौरुष का इतना बड़ा सबूत और कहीं देखने में नहीं

कैलाश मंदिर

कैलाश मन्दिर में महायोगी शिव की मूर्ति

आता। शिव के मंदिरों में आमतौर से सूराखदार घड़े लटका दिए जाते हैं, ताकि शिवलिंग पर निरंतर जल की बूँदें टपकती रहें। पर कैलाश के कलाकारों को ऐसी मामूली कल्पना नहीं भाई! उन्होंने इंजीनियरी का ऐसा चमत्कार दिखाया कि आज के बड़े बड़े इंजीनियर भी उसे देखकर दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं। कैलाश मंदिर गढ़नेवालों ने दूर बहती एक नदी की धारा को मोड़ दिया और पहाड़ों के अंदर ही अंदर उसे इस प्रकार शिवलिंग पर सरका लाए कि आज हजारों साल बीतने के बाद भी मूर्ति पर निरंतर जल टपकता रहता है। उस मंदिर में चट्टानों से काटकर समूचे के समूचे हाथी खड़े कर दिए गए हैं। इसी प्रकार काल भैरव, काली और शिवजी के भिन्न भिन्न गणों की भयानक और डरावनी मूर्तियाँ भी गढ़ी गई हैं, जो एक से एक सजीव और जीती जागती दिखाई देती हैं।

एलोरा के हिन्दू गुफा मंदिरों में दो और मंदिर बहुत महत्व के हैं। एक में शंकर का ताण्डव नृत्य और दूसरे में रावण के कैलाश पर्वत

अवलोकितेश्वर पद्मपाणि (अजन्ता)
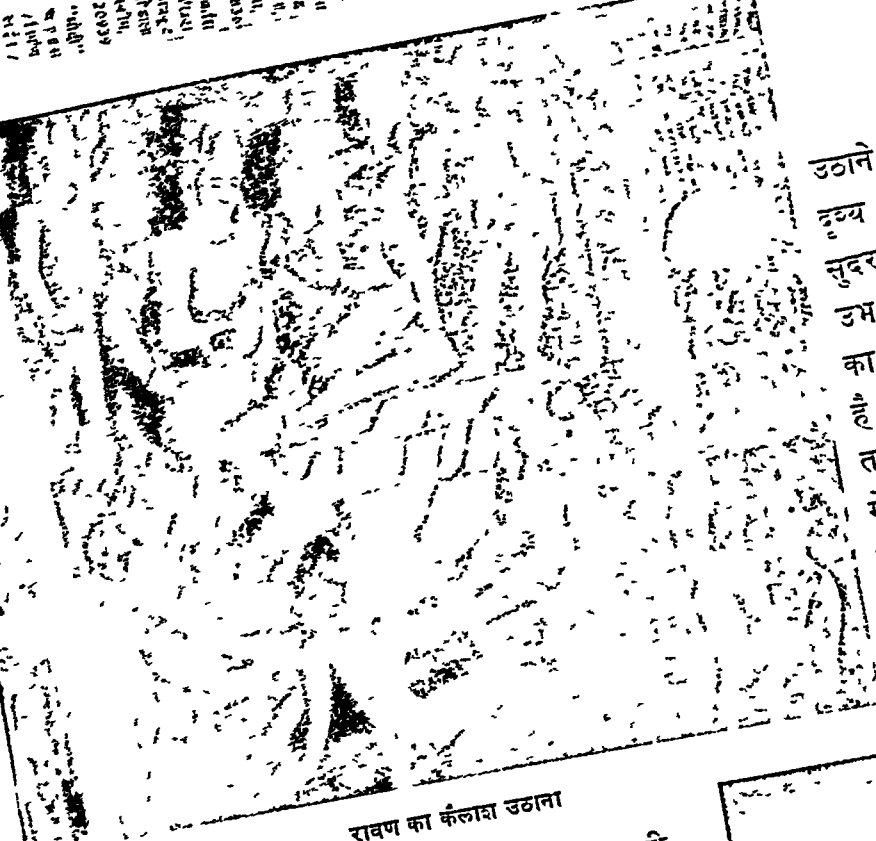
उठाने का दृश्य बड़ी सुंदरता से उभार और काढ़ा गया है। शिव के ताण्डव नृत्य मे असाधारण वेग दिखलाकर जैसे

ताण्डव करते हुए शि

रावण का कैलाश उठाना

पत्थर मे प्राण फूँक दिए गए है। उसी प्रकार असीम शक्ति और महान् परिश्रम के संयोग से रावण के रूप मे से जैसे एक अद्‌भुत तेज फूट रहा है। लगता है कि जैसे कैलाश पर्वत की चूलें ढीली हो गई है, और सृष्टि उलट पलट होनेवाली है।

अजन्ता और एलोरा के मंदिर संसार के गुफा मंदिरो मे बेमिसाल है।
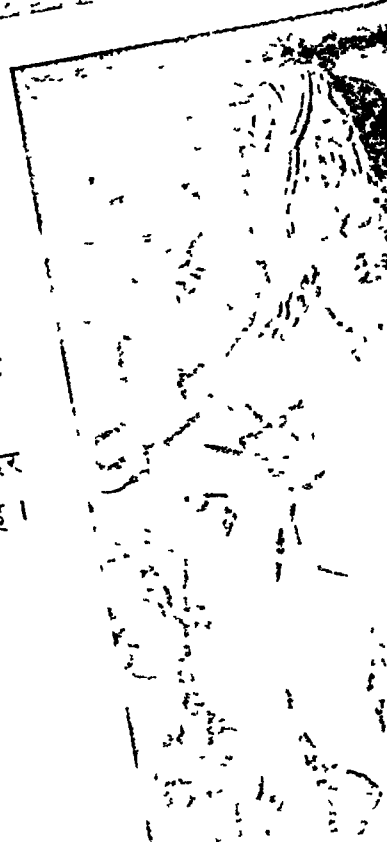
(२) भारतीय चित्रकला

भारतीय चित्रकला के सबसे पुराने नमूने सिंहनपुर और मिर्जापुर की गुफ़ाओं मे मिलते है, जो कम से कम दस और अधिक से अधिक पचीस हजार साल पुराने कहे जाते है। उन गुफाओं की दीवारों पर हाथियों, जंगली साँडों, वारहसिंघों और आदमियों की भी शक्ले लकीरो से वनाई गई है। उनमे शिकार के दृश्य भी है, जिनमे उत्साह और फुर्ती की झलक वहुत साफ़ है।

आदि चित्रों का नमूना

साँड़ का चित्र (मोहंजोदड़ो)

उसके वाद के जो चित्र मिलते है, वे लगभग पाँच हज़ार साल पुरानी सिंधु घाटी की सभ्यता के जमाने के है। वे मोहंजोदड़ो, हड़प्पा और नाल मे पाए गए है। उस जमाने मे आदमी ने अभी कागज का इस्तेमाल नहीं सीखा था। इसलिए वह अपने वर्तनों और मटकों को चटक रंगो से रंगता था और उन पर जानवरों आदि की शक्ले वनाता था।

उसके वाद के लगभग ३,००० साल मे भारतीय चित्रकला मे क्या कुछ हुआ इसका पता नही चलता। उस जमाने के चित्रों के नमूने हमे नहीं मिलते। पर संस्कृत साहित्य

हड़प्पा में पाए गए वर्तन, जिन पर चित्रकारी की हुई है

फड़कामुख मुद्रा
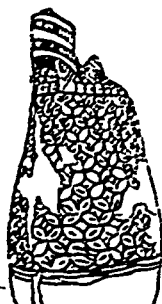
में चित्रों से सजे बड़े बड़े कमरों, चलती फिरती नुमाइशों और मानव चित्र बनाने का अनेक बार ज़िक्र आया है। तीसरी ई० सदी के वात्स्यायन के प्रसिद्ध ग्रंथ कामसूत्र में चित्रकला के बारीक से बारीक सिद्धान्त बताए गए हैं, जिससे यह साफ प्रगट है कि उसके सदियों पहले से चित्रकला का नियमित अभ्यास जारी था। उससे यह भी पता चलता है कि चित्रकार के लिए नृत्यकला की जानकारी एकदम ज़रूरी समझी जाती थी। इसमें शक नहीं कि भारतीय चित्रकला की जो अपनी निजी ख़ूबियाँ हैं—यानी शरीर की, ख़ासकर हाथ की, 'मुद्राएँ' और 'भंग' यानी उठने, बैठने, चलने, फिरने आदि हर प्रकार के अंग संचालन में एक लय और ताल का होना—उनसे यह साफ मालूम होता है कि गति की वह सारी सुंदरता नृत्यकला से सीखी गई थी। प्राचीन भारत की चित्रकला की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि आदमी के शरीर की नसें उभरी हुई नहीं मिलेंगी, और न चेहरे पर परेशानी, चिंता या कष्ट के भाव मिलेंगे। भारतीय चित्रकला की यह विशेषता उसकी बिल्कुल अपनी है।

स्वास्थ्य प्रदान मुद्रा

असल में चित्रकला के उन्हीं भारतीय सिद्धांतों को अजन्ता के चित्रकारों ने अमली जामा पहनाया था। अजन्ता

त्रिभंग
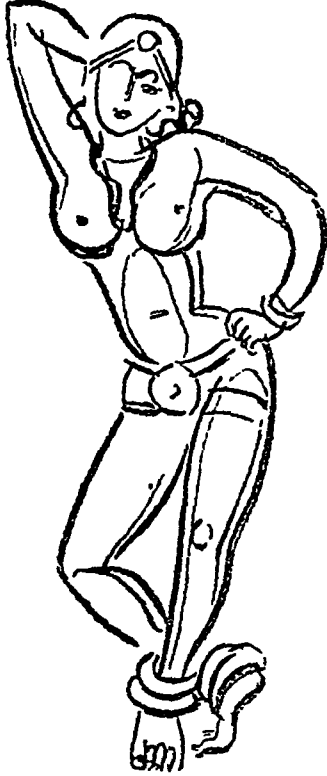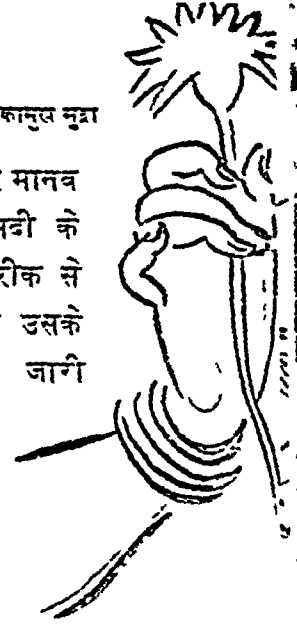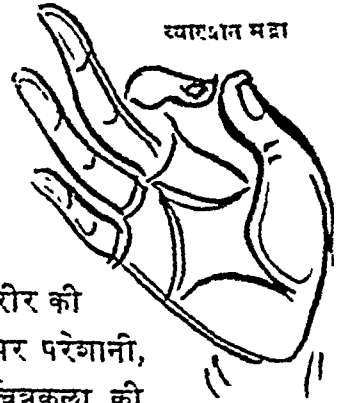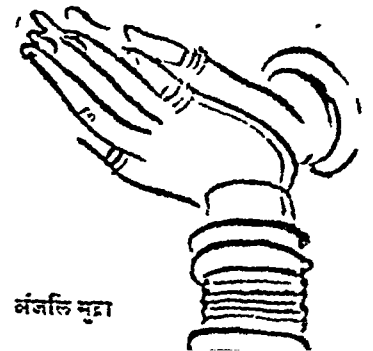
अंजलि मुद्रा

के चित्रों का युग भारतीय इतिहास का सुनहरा युग था। अजन्ता की दीवारों पर जो चित्र मिले हैं, उनमें सबसे प्राचीन शुंग और कुषाण राजाओं के समय के हैं। शुंग राजाओं का काल मौर्यों के बाद यानी आज से कोई बाइस सौ साल पहले शुरू हुआ। उन चित्रों में सबसे पुराने चित्र अजन्ता की नवीं और दसवीं गुफ़ाओं में हैं। उन चित्रों में बनी पगड़ियों की शक्ल सामने से गाँठदार है, जैसा कि शुंग राजाओं के समय में रिवाज था।

गुप्त राजाओं का जमाना तीसरी चौथी सदी से छठी सदी तक रहा बाद में वह हूणों के हमलों से टूट गया। पर देश की चित्रकला पर उस युग के चित्रों के चमत्कार का असर करीब करीब सौ साल और रहा। उसके बाद चालुक्य राजाओं का युग शुरू हुआ, और सातवीं सदी में उनका यश सबसे अधिक बढ़ा। उसी जमाने में अजन्ता के सबसे सुंदर चित्र बने थे।

गुफाओं की दीवारों पर चित्र खास ढंग से बनाए जाते थे। गुफाएँ खोदने के बाद पहले उनकी दीवारों को हमवार किया जाता था। फिर उन्हें लीपकर उन पर गोबर मिले पत्थर के पाउडर का लेप चढ़ाया जाता था। बाद में उन पर चूने का हल्का पलस्तर चढ़ाकर दीवार की सतह को अलग अलग नाप के टुकड़ों में बाँट लिया जाता था। फिर उन टुकड़ों में रेखाओं द्वारा शक्लें उभारी जाती थीं, और उन पर रंग चढ़ा दिए जाते थे।

गुफाओं की दीवारें और खंभे पलस्तर करके चित्र आँकने योग्य बनाए जाते थे।

एक युवता (अजन्ता)

नर्तकी-दल (अजन्ता)

अजन्ता की अपनी खास कलम है, जिसकी विशेष पहचान आँखो और उँगलियो की शक्ले है। आँखे कमल जैसी लम्बी और उँगलियाँ नाज़ुक टहनियो की सी लचीली दिखाई जाती है। इस कलम के कुछ नमूने बाघ, बादामी, सित्तनवासल और एलोरा की गुफाओ मे भी पाए जाते है। वे आम तौर से ६०० और ९०० ई० के बीच बने है।

बाघ की नौ गुफाएँ मध्य प्रदेश (मालवा) मे बाघ नदी के किनारे है। उनमे से चौथी और पाँचवी गुफाओ मे चित्र बने हुए है। बादामी चालुक्यो की राजधानी थी। वह आन्ध्र प्रदेश मे है। वहाँ की चारो गुफाओ मे चित्र बने है। मद्रास राज्य मे तजोर के पास सित्तनवासल मे पल्लवो की बनवाई गुफाओ की दीवारो पर भी चित्र बने हुए है।

गायिकाएँ (बाघ)

सिगरिया का एक भित्तिचित्र

अजन्ता के चित्रकारो का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि उनकी कलम उस युग मे वाहर के देशों पर भी छा गई थी। श्रीलका मे अजन्ता क़लम के भित्तिचित्र आज भी मौजूद है, जिनमे सिगरियावाले चित्र वहुत सुंदर वने है। पामीर के पास तुखारिस्तान के तकलामकान रेगिस्तान मे पाए गए मीरान के मंदिर मे वने चौथी सदी के सुन्दर भित्तिचित्र भी अजन्ता कलम के ही हैं। इसी प्रकार वह कलम चीन, जापान और कोरिया मे भी पहुँची। चीन के कान्सू प्रांत मे पाँचवी छठी ईस्वी सदी में वने अजन्ता कलम के चित्र तानहुआंग की सैकड़ो गुफाओ मे मौजूद है। तिव्वत, नैपाल, वर्मा, स्याम और कम्वुज के पगोडों मे सैकड़ो भित्तिचित्र ग्यारहवी से तेरहवीं सदी तक वनते रहे थे, जो भारत की ही देन है।

मध्य युग का दूसरा भाग ९०० और १२०० ई० के वीच माना जाता है। उस युग मे धीरे धीरे भित्तिचित्रों की कला का गिराव और उनकी कमी होने लगी थी। उन चित्रों में न पहले के चित्रों जैसी सुंदरता है, न शक्लों में वह सुडौलपन, सलोनापन या गाम्भीर्य है। पर उस युग के आखिरी वरसों में तालपत्रों की पोथियों पर छोटे छोटे चित्र वनने लगे थे, जिनका पूर्वी और पश्चिमी भारत मे विशेप प्रचार था। वे चित्र किताबों के हाशियों पर वनाए जाते थे। उन चित्रों को अपभ्रंश क़लम के लघु चित्र कहते है। अपभ्रंश क़लम नाम इसलिए पड़ा कि वे चित्र आम तौर से जिन पोथियोंके हाशियों पर वने, वे पोथियाँ अपभ्रंश मे लिखी थी। धीरे धीरे उन लघु चित्रों

पाल शैली का तालपत्र पर वना एक चित्र
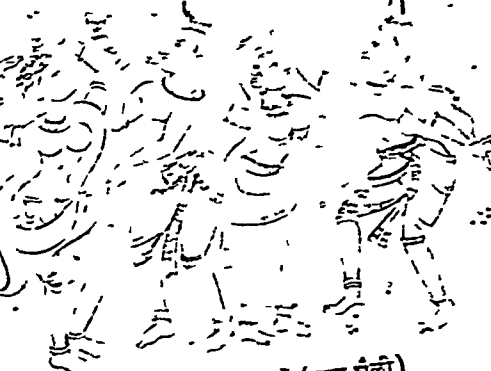
की दो अलग अलग शैलियां बन गई—
पूर्वी शैली और पश्चिमी शैली। बंगाल बिहार
में उन दिनों पाल राजाओं का शासन था।
इसलिए पूर्वी शैली को पाल शैली भी कहते हैं।
तिब्बत और नेपाल में बने पोथियों के चित्र
भी उसी शैली के माने जाते हैं। पाल शैली

नर्तकियाँ और गायिकाएँ (पाल शैली)

के लघु चित्र अधिकतर
ताड़पत्र पर लिखी हुई
पोथियों पर बने हुए हैं। वे
चित्र बुद्ध और बौद्धधर्म
के देवी देवताओं के हैं।
पूर्वी शैली के चित्रों पर
अजन्ता का खासा प्रभाव है।

ताड़पत्र पर नेपाल में बना पोथी चित्र

पर उनमें स्वतंत्र लय और गति की कमी है। उन चित्रों में
बने प्राणियों को देखने से ऐसा लगता है कि वे अजन्ता की
चित्र वस्तुओं की तरह हिल डुल या चल फिर नहीं सकते।
पूर्वी शैली के चित्रों की पहचान यह है कि उनमें नाक विशेष लम्बी
होती है, चेहरा एक ओर होता है, और इस कारण दूसरी आँख
का कुछ हिस्सा ही दीखता है।

पश्चिमी शैली को जैन शैली भी कहते हैं, क्योंकि पश्चिमी
भारत में जैन धर्म का गहरा प्रभाव था और पश्चिमी कलम के
चित्र श्वेताम्बर जैन-पोथियों पर ही अधिक मिलते हैं। उनकी

नर्तकी (जैन शैली)

वसन्त विलास (पश्चिमी शैली)
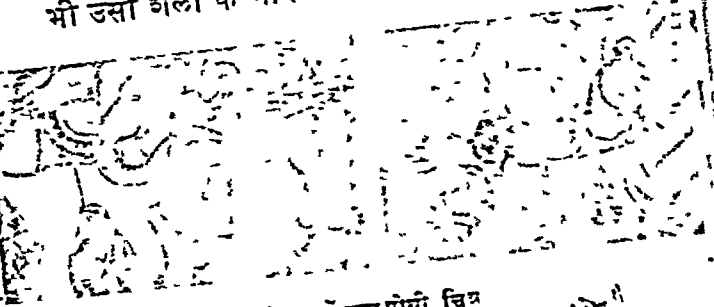
पहचान यह है कि नाक गरुड़ जैसी आगे को निकली हुई होती है। ठुड्डी छोटी, एक आँख आम की फाँक जैसी कान तक फैली, दूसरी का कुछ भाग दीखता हुआ, उँगलियाँ ऐंठी हुई, पेट पिचका हुआ, और आकृति जकड़ी हुई होती है। उनमे रंगों की विविधता कम होती है। लाल और पीले रगों का प्रयोग अधिक होता है। पच्छिमी शैली के चित्र आगे चलकर, चौदहवी पन्द्रहवीं सदी मे, कागज पर भी वनने लगे। धीरे धीरे वह शैली पच्छिम से पूरव की ओर भी फैली और इस कारण उसकी उम्र भी वढ़ गई। उसका एक रूप काश्मीर मे भी प्रचलित हुआ, जिसे काश्मीरी शैली कहने लगे।

भित्तिचित्रो की अजन्ता क़लम के वाद से १४ वीं सदी तक भारत की चित्रकला के गिराव का युग था। पर चौदहवी सदी के वीच मे ही पच्छिमी शैली का दो प्रकार से विकास होना शुरू हुआ। एक तो तालपत्रो की पोथियो पर वनने के साथ ही इकहरे कागजों पर भी चित्र वनने लगे। दूसरे भारतीय सगीत की राग रागिनियो की मिठास और नज़ाकत को आकार दिया जाने लगा। कृष्ण-लीला और रीति काव्य के चित्र वनने लगे, तथा वारहमासे को आदमी की भावनाओं मे चित्रित किया जाने लगा। वे चित्र अधिकतर पच्छिमी शैली की गुजराती परम्परा के माने जाते है?

यही कारण है कि भारतीय चित्रकला ने जव नया मोड़ लिया तो उस नए मोड का आरम्भ गुजरात से हुआ। वही वह राजस्थानी कलम पैदा हुई, जिसने भारतीय चित्रकला को एक नई प्रेरणा, एक नया जोग दिया, और जिसकी सोलहवी सत्रहवीं

निराश नायिका (राजपूत कलम)

सदी में मुगल कलम के साथ महान् उन्नति हुई।

राजस्थानी कलम और उसके तुरत पहले की पच्छिमी शैली के चित्रों में विशेष अन्तर ये है कि पच्छिमी शैली के चित्र अधिकतर ग्रंथों या इकहरे कागज़ पर बने है, और राजस्थानी कलम के चित्र कई परत जमाए हुए कागज (वसलियो) पर। पहली मे दूसरी आँख का भी एक भाग दीखता है, दूसरी मे नहीं। पहली मे आँखे साधारण होती है। दूसरी मे वे मछली की तरह कटावदार है। दूसरी शैली मे रंग अनेक और अधिक चटक है।

राजस्थानी कलम को राजपूत कलम भी कहते है। उसका जन्म गुज-रात मे हुआ था, पर उसका विकास राजपूत राजाओ के दरबार मे ही हुआ। सोलहवी सदी के राजस्थानी कलम के चित्र जैन ग्रंथो के पन्नो पर भी बने हुए मिलते है। पर वे आम तौर से अलग कागजो पर ही बनाए गए है। सत्रहवी सदी मे राजस्थानी चित्रो का केंद्र बुंदेले रजवाडो मे बना और वहा भी रागमाला और कृष्णलीला के चित्र बनने लगे। पर तब तक के चित्रो की चित्रकारी कमजोर थी। उनको बढिया राजस्थानी चित्रो की मिसाल नही कहा जा सकता। राजस्थानी कलम अठारहवी सदी मे जाकर पूरी तौर से विकसित हुई। उदयपुर, नाथद्वारा, बूँदी, जोधपुर और विशेष रूप से जयपुर उसके मशहूर केंद्र बने। फिर धीरे धीरे राजस्थानी कलम का विस्तार दक्खिन भारत मे तंजोर, मैसूर और रामेश्वरम् तक हो गया।

यहाँ राजस्थानी कलम की एक और शैली का उल्लेख कर देना मुनासिब होगा। उसे बसौली शैली कहते है। बसौली जम्मू के पास है। सत्रहवी सदी मे मध्यप्रदेश के एक राजघराने

उद्यान दृश्य (बसोली शैली)
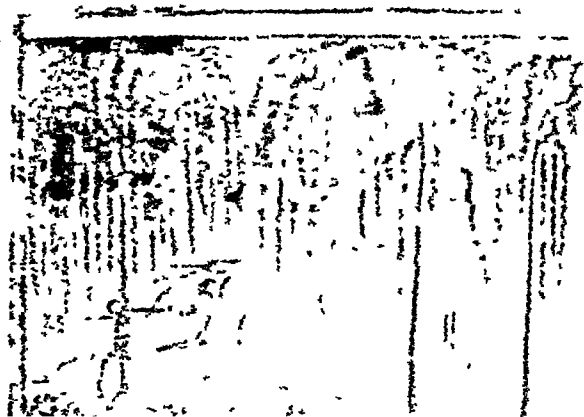
ने वहाँ उसके वीज वोए, वाद मे इसकी काफी उन्नति हुई और उसका काफी आदर भी हुआ। वसौली शैली के चित्रो मे रंग तेज़ होते है, जमीन सपाट होती है, आँखे मछली जैसी वड़ी वड़ी तथा ललाट पीछे को हटता हुआ होता है। चित्रों पर टाकरी या देवनागरी लिपि मे लिखावट भी होती है। अठारहवी सदी के वीच तक वह शैली पूरी तरह उभार पर आ चुकी थी।

मुगलो के भारत मे आने से पहले इस देश मे अपभ्रंश और राजस्थानी क़लमे और उनकी शाखाएँ फैली हुई थीं। यानी भारतीय चित्रकला की अपनी मुद्राएँ, अपनी भावभंगियाँ, अपने रंग और अपने अंदाज़ वन चुके थे।

उधर जव मुगल आए तो वे भी अपने साथ वह ईरानी कलम लाए, जो एक सम्पन्न कलम थी। उस पर चीनी कलम का गहरा असर था। चीन की चित्रलिपि का प्रभाव प्रायः सारे मध्य एशिया की चित्रकला पर पड़ा था। इस प्रकार भारत मे जो मुगल आए वे चीन और ईरान की मिली जुली संस्कृति के वारिस थे। उनके पास चित्रकला की एक सम्पन्न विरासत थी। वावर खुद वहुत सुंदर लिखनेवाला था। हुमायूँ भी कला का पारखी और पुजारी था। उसने शीराज के ख्वाजा अव्दुस्समद और तवरेज के मीर सैयदअली जैसे प्रसिद्ध ईरानी चित्रकारो को अपने दरवार मे वुला लिया था। उनके ही व्रश का जादू था जिसने हमारे देश में वह कलम चलाई, जिसे मुगल कलम कहते हैं। वह कलम भारत मे ही जन्मी और फली फूली, हालाँकि उसका जन्म विदेशी प्रभाव से हुआ था।

यारे दानिश का एक मुगल चित्र

मुग़ल कलम के चित्रो मे तीन तरह के चित्र खास है। मानव-चित्र, पुस्तको की कथा और घटनाओ के चित्र; और प्रकृति की सुदरता के चित्र।

ऊपर बाएँ—मुगल कलम का एक चित्र
ऊपर दाहिने—राजपूत कलम में बनी टोडी रागिनी
नीचे बाएँ—पहाड़ी चित्रकला का एक [illegible]
नीचे पश्चिमी अपभ्रंश कलम का एक नमूना
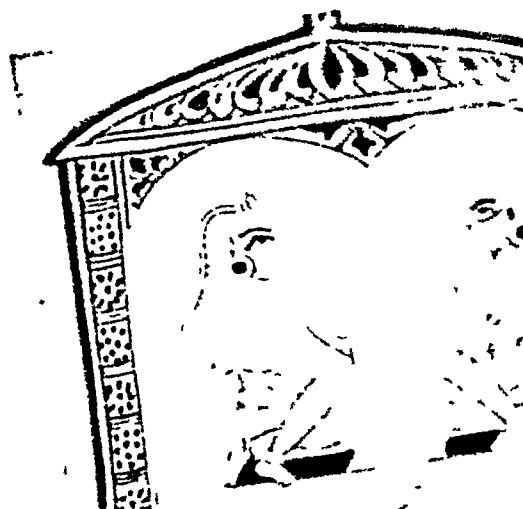
मुगल कलम मे आकृति का तीन चौथाई भाग, पेड़ों के तने गाँठदार लता कुंज बहुत विरल, और चोटियो की पर्तों से ढके लहरदार पहाड़ लगभग आकारहीन बनाए जाते थे। उनमे रंग तेज और एक दूसरे के वज़न मे होते थे। उनमे एक नए किस्म की दरबारी बनावट और नज़ाकत होती थी, जो राजपूत कलम के सांस्कृतिक निखार और आध्यात्मिक सौंदर्य से भिन्न चीज़ थी। अकबर के ज़माने के चित्रों मे मानव चित्र और पोथी चित्र ही अधिक है।

और तदबीर (महाभारत का एक मुग़ल चित्र)

उस ज़माने के चित्रो मे पोथी चित्र बेशुमार बने। फारसी, संस्कृत, और हिन्दी की अनेक पुस्तकों को चित्रो द्वारा सजाया और समझाया गया। किस्सा अमीर हम्ज़ा, अकबरनामा, शाहनामा, रज्मनामा (महाभारत), रामायण, नल-दमयन्ती के चरित, कलीला दमना (पंचतंत्र) आदि अनेक ग्रथ चित्रो से सजाए गए। केवल किस्सा अमीर हम्ज़ा की बारह जिल्दे तैयार हुई, जिनमे चौदह सौ चित्र दिए गए। रामायण, महाभारत और पचतत्र के किस्सो की संख्या से ही अदाज़ा लगाया जा सकता है कि उनमे कितने अनगिनत चित्रों की ज़रूरत हुई होगी। पचतत्र के कई सचित्र

साकी मीना और साग़र (मुग़ल कलम का एक चित्र)

फ़ारसी अनुवादों मे सबसे अधिक लोकप्रिय 'अनवार सुहेली' है। उसकी चार जिल्दे तैयार हुई थीं। उनको सजानेवाले चित्रकारों मे दस हिन्दू और छे मुसलमान थे। अकबर के दरबार मे मुसलमान चित्रकारों से कही अधिक हिन्दू चित्रकार थे।

जहाँगीर चित्रो की समझ और परख मे अकबर से भी बढ़-चढ़कर निकला। जहाँगीर का जमाना मुगल क़लम के चित्रों का सुनहरा युग था। अकबर ने ईरानी कलम का भारतीयकरण किया था। पर जहाँगीर के चित्रकार एक बार फिर ईरानी कलम की ओर झुके और चित्रों मे विशेष रूप से चेहरे की गढ़न ईरानी ढंग की बनने लगी। पर जहाँगीर धीरे धीरे वैसे चित्रो की ओर से उदासीन हो गया और स्थानीय घटनाओ के चित्रण को प्रोत्साहन देने लगा। पोथियाँ चित्रो से सजाई जाने लगीं। जहाँगीरनामा उसकी बहुत सुंदर मिसाल है। पोथी चित्रो में घटनाओं के चित्र बनाने पर ही ज़ोर था। वैसे चित्र बनाने मे बिशन दास बेजोड़ था। पर जहाँगीरकाल के पशु पक्षियों के चित्र तो बेजोड़ है। ऐसे चित्रों के बनाने-वाले चित्रकार मसूर का नाम बहुत प्रसिद्ध हुआ। कहते है कि मुग़ल कलम और युरोपीय क़लम के

मंसूर द्वारा चित्रित जहाँगीर का तुर्की मुर्ग़

ईसा का जन्म

(युरोपीय कला से प्रभावित मुग़ल क़लम का एक चित्र)
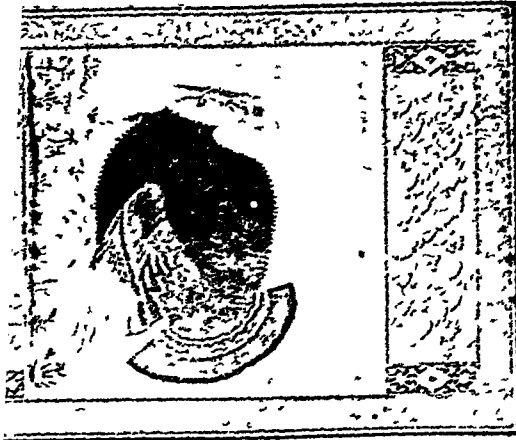
सम्पर्क से ही यह बात पैदा हुई थी। यहाँ इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है कि यह वही ज़माना था जब यूरोप में इटली और स्पेन से हालैंड तक असाधारण चित्रकारो का तांता लगा हुआ था, और एक से एक सुंदर चित्र वहां बन रहे थे। जहाँगीर के दरबार मे अनेक युरोपीय आए। उनमें से कई अपने साथ युरोपीय चित्र भी लाए। जहाँगीर के चित्रकारों ने उनकी नकलें उतारी, जिनमें से बहुतेरी असल से भी बाज़ी ले गई। इस तरह मुगल क़लम पर युरोपीय चित्रकला का प्रभाव पड़ा।

शाहजहाँ की बनवाई इमारतें ससार में प्रसिद्ध है। पर लगता है चित्रों की तरफ उसने कम ध्यान दिया। फिर भी चित्र बने और उनमे रंग तथा रूप की समृद्धि बढ़ी। शाहजहाँ काल की मुगल कलम मे नारी रूप का चित्रण अधिक हुआ। औरगज़ेब की नजर तंग थी। वह चित्रकला को धर्म के विरुद्ध मानता था। इसके बावजूद खुद औरगज़ेब के अनेक चित्र मिलते है, जिनसे ज़ाहिर होता है कि चित्रकला मरी नहीं। मुगल कलम का गौरव मुहम्मदशाह के ज़माने तक बना रहा। यहाँ तक कि शाहआलम दूसरे के ज़माने मे भी कुछ सुदर चित्र बने।

नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के हमलो से भारतीय चित्रकला की धारा मे भारी उथल पुथल हुई। चित्रकार दिल्ली और आगरे के केंद्र छोड़कर इधर उधर बिखर गए। उन्होंने छोटे छोटे सूबेदारो और नवाबों के दरबारो मे जाकर शरण ली।

अठारहवी सदी के बीच में जब मुगल सल्तनत का पतन हो गया, तब बहुत से प्रसिद्ध दरबारी चित्रकार पनाह की खोज मे हिमालय के पहाड़ी दरबारो मे भी पहुँचे। वहाँ उनकी चित्रकला ने एक नया रूप धारण

किया। वहाँ मुगल क़लम पर दरबारीपन की जकड़ टूटी और पहाड़ी जीवन के स्वाभाविक खुलेपन का वेरोक टोक चित्रण होने लगा। इस प्रकार जो एक नई कलम पैदा हुई, उसे पहाड़ी कलम कहा जाता है। उसे राजपूत क़लम का दूसरा (संस्करण) निखार भी माना जाता है, क्योंकि राजपूत कलम मुगल कलम को देती और उससे लेती हुई, उसके बराबर चलती और विकसित होती आई थी। काँगड़ा मे पहाड़ी कलम का सबसे शक्तिशाली केंद्र था। वैसे चंबा, मंडी,

...नान : राजपूत और मुग़ल क़लम का मिश्रण

नहान, सिरमौर, टिहरी गढ़वाल आदि में भी उसके अनेक प्रसिद्ध केंद्र कायम हुए। पहाड़ी क़लम का युग अधिकतर अठारहवीं सदी के बीच से उन्नीसवीं सदी के बीच तक माना जाता है। उसमे मुग़ल आकृति मे बनावटी नज़ाक़त की जगह पहाड़ी स्वस्थता और अनगढ़ मेल पैदा हुआ। पहाड़ी कलम की एक खास बेल गढ़वाल

राधा और कृष्ण वर्षा से रक्षा के लिए वृक्षों की छ...
पहाड़ी (काँगड़ा) क़लम

मे लगी जिसके चित्रकार मोला राम का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

जहाँगीर के जमाने में मुगल कलम पर जो यूरोपीय प्रभाव पड़ना शुरू हुआ था, वह धीरे धीरे अंग्रेजी हुकूमत के प्रभाव के साथ साथ बढ़ता रहा। वह प्रभाव दो क्षेत्रो मे अलग अलग रूपो मे प्रगट हुआ। एक रूप वह था, जिसे पटना शैली कहते है। यूरोपीय हाथी-दाँत और कागज पर बननेवाले चित्रो की कला पुर्तगालियो और अंग्रेजो के जरिए हमारे देश मे आई थी। उसे पटने के चित्रकारो ने विशेष रूप मे अपनाया और विकसित किया, धीरे धीरे ऐसे चित्रकारो के वहाँ कई घराने बन गए। आनेवाले ईश्वरी प्रसाद और उनके लड़के रामेश्वरप्रसाद का घराना उन घरानो मे काफी प्रसिद्ध है। पटना शैली के चित्र आकार में छोटे होते है। उनमे मुगल कलम की बारीकी के साथ यूरोपीय शैली का जिंदापन बड़ी खूबी से मिला हुआ होता है। बनारस के दल्लू लाल, लालचन्द और गोपालचन्द भी पटना शैली के ही चित्रकार थे।

महादेव-पार्वती . मोलाराम

विश्वामित्र और मेनका : रवि वर्मा

यूरोप के असर से चित्रकला का एक दूसरा रूप दक्खिन और पच्छिम के कलाकारों ने उभारा। वह रूप बहुत घटिया साबित हुआ, क्योंकि वे कलाकार यूरोप के ऊपरी-रूप चित्रण मे ही उलझ कर रह गए। वे उसमें भारत की आत्मा नहीं डाल सके। त्रिवेन्द्रम के राजा रविवर्मा उस कलम के सबसे प्रसिद्ध चित्रकार थे।

कुछ दिनों बाद भारत मे अंग्रेज़ी 'आर्ट स्कूल' खुले, और भारतीय चित्रकला का वह युग प्रारंभ हुआ जिसे पुनर्जागरण का युग कहते हैं। एक ओर सामाजिक सुधार के आंदोलनो और आज़ादी के संघर्षों ने और दूसरी ओर ऐतिहासिक सांस्कृतिक खोजों से प्राप्त भारत के प्राचीन गौरव के चिह्नों ने नई प्रेरणा दी। अजन्ता के शानदार गुफा चित्र तभी मिले थे। वे गुफा चित्र भारतीय चित्रकला के आदर्श बन गए। उसका एक आंदोलन उठ खड़ा हुआ। जिसके नेता कलकत्ता आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल हैवेल और शिक्षक अवनीन्द्र नाथ ठाकुर थे।

उस आंदोलन ने कला में स्वस्थ राष्ट्रीयता को जन्म दिया। अवनीन्द्र नाथ खुद कुशल चित्रकार थे। उनके प्रभाव और प्रेरणा से बहुत से प्रतिभाशाली चित्रकार सामने आए। उनमें नन्दलाल बोस,

शिव का विषपान नन्दलाल बोस

बाउल मुकुल दे

शकुन्तला अवनीन्द्रनाथ

के बाद देवीप्रसाद राय चौधरी

उस्ताद मंसूर की चित्रशाला में जहाँगीर
ईश्वरदास
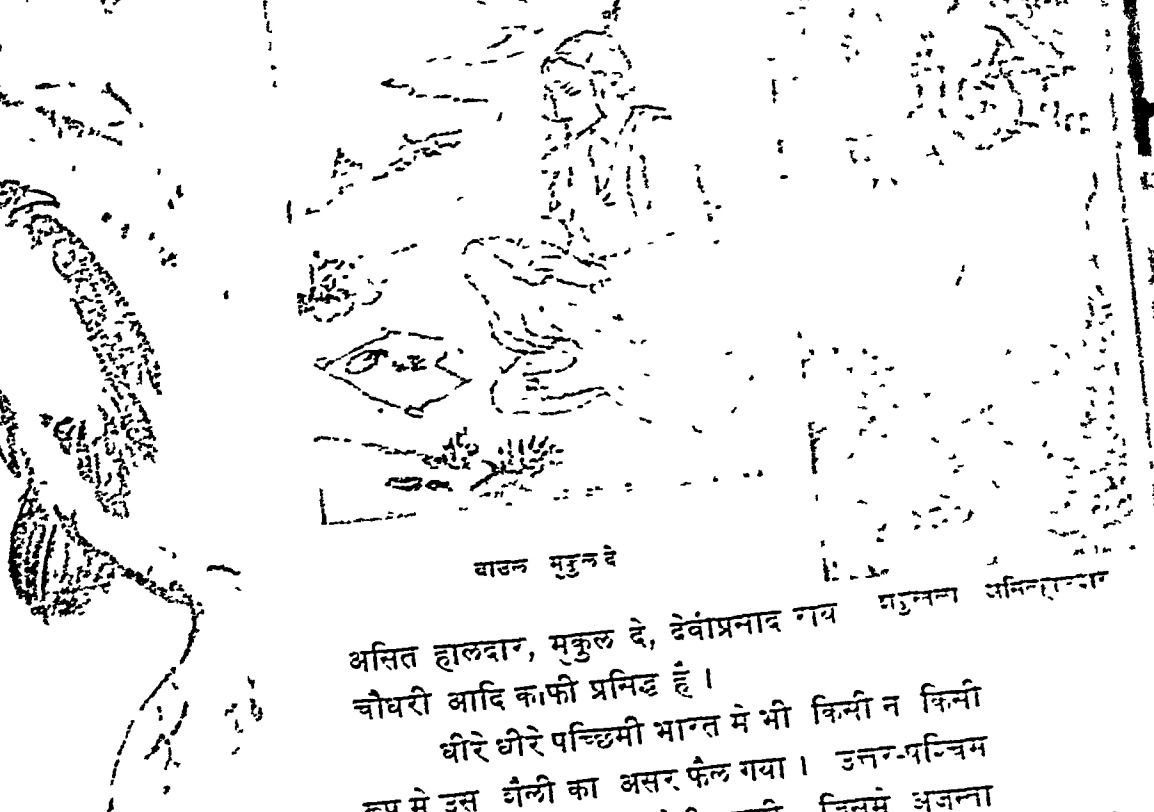
असित हालदार, मुकुल दे, देवीप्रसाद राय चौधरी आदि काफी प्रसिद्ध है।

धीरे धीरे पच्छिमी भारत मे भी किसी न किसी रूप मे उस शैली का असर फैल गया। उत्तर-पश्चिम भारत, उत्तर प्रदेश आदि मे एक नई रोमैंटिक शैली चली, जिसमे अजन्ता का गहरा पुट था। विजयवर्गीय, जिज्जा, ईश्वरदास आदि सब उसी शैली के चित्रकार है। उस शैली मे अजन्ता और मुगल कलमो का सगम है।

अजन्ता कलम मे गाँव के जीवन का यथार्थ मिलाकर यामिनीराय ने एक नया रास्ता खोला। अमृता शेरगिल ने उसे और फैलाया और आगे
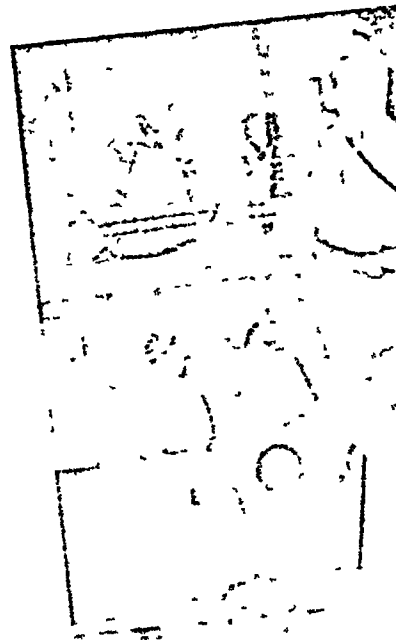
वढ़ाया। अमृता की कला ने सामाजिक यथार्थ को ईमानदारी और हमदर्दी के साथ चित्रित करने का काम शुरू किया। नए भारत के सामाजिक अभिप्रायों को उसने तरह तरह के रूप दिए। उनमे सबसे महान् 'भारत माता' का रूप है। अमृता की वनाई हुई वच्चो के साथ भारत माता की वीमार काली काया देखनेवालो को केवल अचभे मे ही नही डालती, वल्कि कुछ कर गुजरने की प्रेरणा भी देती है।

पिछले पचास वर्षो मे युरोप मे अनेक चित्र-शैलियों के प्रयोग होते रहे है। सेजान, मोने, और वाद मे जार्ज व्राक, मातिस, पिकासो, हाली आदि उसके अगुआ रहे हैं। आज के युग मे भारत पर उनका प्रभाव पड़ना अनि-ार्य था। वैसे नए प्रयोग देश मे पहले पहल अवनीन्द्र नाथ के भाई गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने किए थे। उन्होने सेज़ान की शैली मे त्रिकोणो और सीधी लकीरो द्वारा आकृतियाँ वनाईं। पर उन्हीं के साथ वह प्रयास समाप्त हो गया। इधर यूरोप की नई शैलियो से शक्ति ग्रहण कर नई राह निकालनेवाले चित्रकार अधिकतर वम्वई, गुजरात और महाराष्ट्र के है। आरा, वेन्द्रे आदि उसी परम्परा के है। उनमे अनुभूति गहरी होती है, और अभिव्यंजना शक्तिशाली। मकवूल फिदाहुसैन भी इस नई शैली का शानदार चित्रकार है। उसके चित्रों के विषय और भाव ऊँचे वर्ग से आए हुए नहीं है। उसकी आकृतियाँ खुरदरी हैं, पर उनकी अभिव्यक्ति ग़ज़व की है। रगो के धब्वो द्वारा चित्रण करने का उसका ढंग व्यापक सहानुभूति को जैसे जवान दे देता है। हरा रंग अक्सर गरीवी और उदासी को साकार कर देता है। भविष्य निश्चय ही मकवूल की क़द्र करेगा। रामकिंकर वैज और राभकुमार ने भी सामाजिक भावों को रूप देने के प्रयोग किए है।

स्वप्न-लोक गगनेन्द्रनाथ ठाकुर
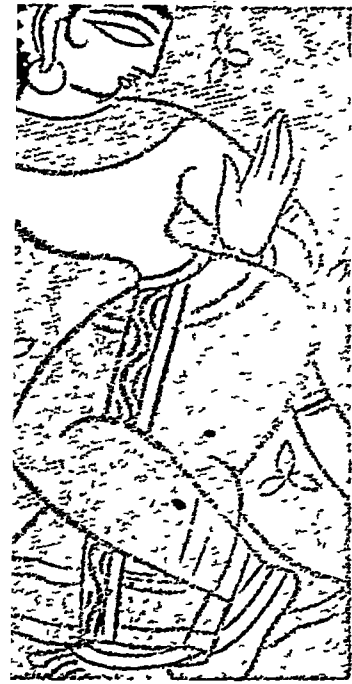
दुल्हन का शृङ्गार : अमृता शेरगिल

…पिनी : यामिनी राय

नारी : रामकुमार

संथाल परिवार : रामकिंकर

लकड़हारे : आरा

शृङ्गार : बेन्द्रे

यात्रा का अन्त — अवनीन्द्र नाथ टागुर
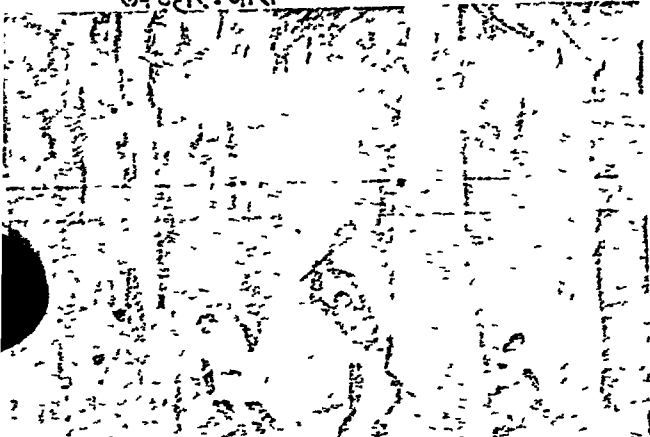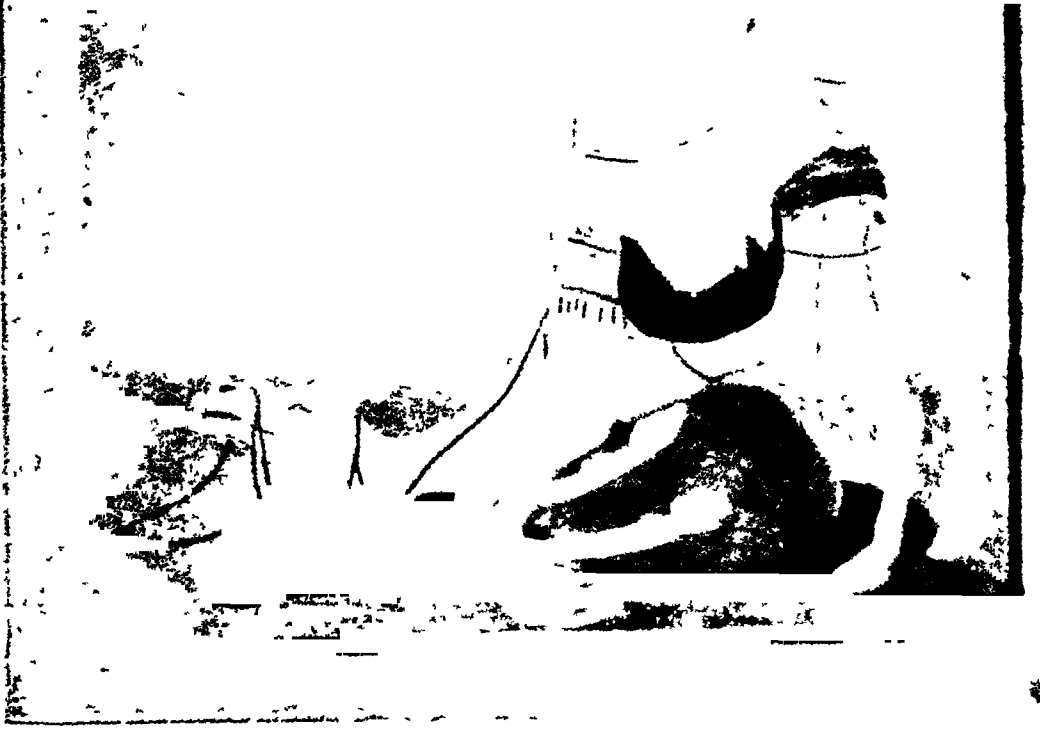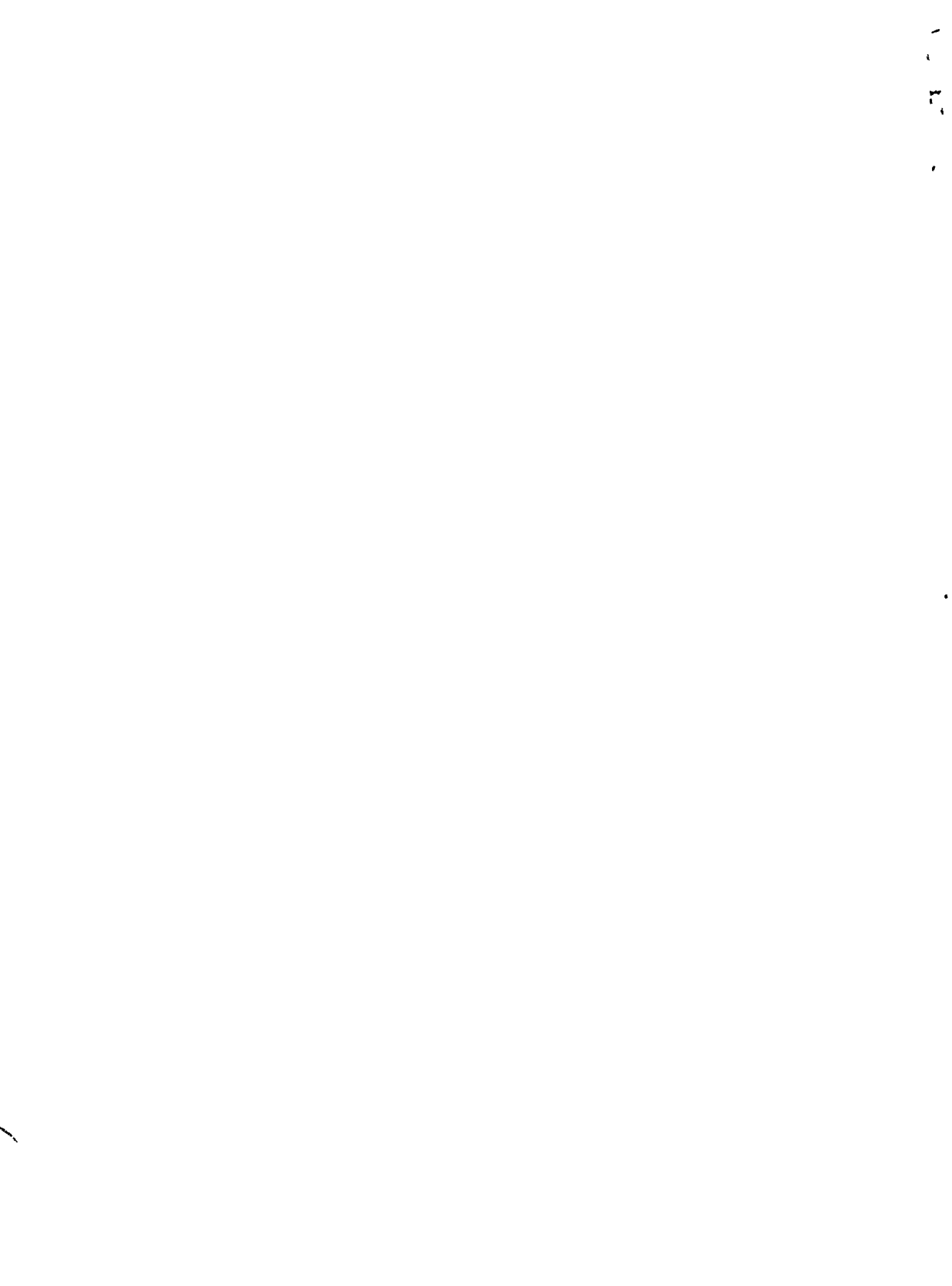
काबुलीवाला

मेरी छोटी लडकी मिन्नी पाँच बरस की है। वह घड़ी भर भी बोले बिना नही रह सकती। चुप रहना वह जानती ही नहीं। पैदा होने के बाद बोलना सीखने मे उसे केवल एक साल लगा था। उसके बाद से हालत यह है कि वह जब तक जागती रहती है, जब तक सो नही जाती, तब तक जबान बंद रखकर एक मिनट भी नही गँवाती। उसकी माँ अक्सर डाँटकर उसका मुंह बंद कर देती है। लेकिन मुझसे यह नहीं होता। मिन्नी का चुप रहना मुझे बहुत अस्वाभाविक लगता है। इसलिए मुझसे उसका मौन देर तक नही सहा जाता। यही कारण है कि मुझ से वह बडे उत्साह के साथ बात करती है।

सुबह को मैने अपने उपन्यास का सत्रहवाँ अध्याय लिखना शुरु ही किया था कि मिन्नी आ गई। उसने आते ही शुरू कर दिया, "बापू! हमारा दरबान रामलाल काग को कौआ कहता है। वह कुछ नही जानता। क्यो न बापू ?"

मै जब तक उसे बतलाऊँ कि हर प्रान्त या देश की भाषा मे अन्तर होता है, मिन्नी ने एक दूसरा ही किस्सा छेड दिया। बोली, "देखो बापू, भोला कहता था कि हाथी अपनी सूंड से आकाश मे पानी फेंकते है। बस बकता रहता है, दिन रात बकता है। उसका मुंह भी नही पिराता।'

उसके बाद मिन्नी मेरी लिखने की छोटी मेज के साथ मेरे पैरो के पास

वैठ गई। वैठकर वह "अगड़म वगड़म" खेलने लगी। अपने दोनों घुटनों पर वारी वारी से थपकी मार मारकर वह जल्दी जल्दी कहने लगी। "अगड़म वगड़म, अगड़म वगड़म"। उस समय मेरे उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में कथा का नायक प्रतापसिंह नायिका कंचनमाला को लेकर जेलखाने की ऊँची खिड़की से कूदने को तैयार था। वह ग्रँधेरी रात में नीचे वहनेवाली नदी में कूद पड़ने को एक पैर आगे वढ़ा चुका था।

मेरा घर सड़क के किनारे है। एकाएक मिन्नी 'अगड़म वगड़म' खेलना छोड़कर दौड़ी हुई खिड़की के पास गई ग्रौर चिल्ला चिल्ला कर ज़ोर से पुकारने लगी, "कावुलीवाला! ग्रो कावुलीवाला!"

एक लम्वा तड़ंगा कावुली पठान सड़क पर धीरे धीरे चल रहा था। वह एक मैला ग्रौर ढीला ढाला लम्वा कुर्ता पहने था, सिर पर साफ़ा था, पीठ पर एक झोली थी ग्रौर हाथ मे दो चार ग्रंगूर के गुच्छे। कहना कठिन है कि उसे देखकर मेरी रत्न जैसी विटिया के मन में क्या भाव पैदा हुए। वह कावुली को तावड़तोड़ पुकारने लगी। मैंने सोचा अभी आकर वह मुसीवत की तरह सिर पर सवार हो जाएगा ग्रौर मेरे उपन्यास का सत्रहवाँ अध्याय पूरा न हो पाएगा।

मिन्नी के वार वार ज़ोर से पुकारने पर कावुली ने मुँह फेरकर हँसते हुए देखा ग्रौर हमारे घर की ग्रोर वढ़ा। मिन्नी एकदम दौड़कर घर के भीतर भागी ग्रौर लापता हो गई। उसके मन मे यह वात अन्धविश्वास की तरह समाई हुई थी की कावुली अपनी झोली मे उसके जैसे दो चार वच्चे वंद रखता है।

"कावुलीवाला! ओ कावुलीवाला!"

इधर काबुलीवाला आया और हँसते हुए मुझे सलाम करके खड़ा हो गया। मैंने सोचा कि मेरे उपन्यास के पात्र प्रतापसिंह और कंचनमाला दोनो ही बड़े संकट मे पड़े है, फिर भी इस आदमी को घर मे बुलाकर कुछ न खरीदना अच्छा न होगा। इसलिए कुछ खरीदा गया। उससे बात सौदे के साथ साथ और भी इस तरह की बाते हुई।

अन्त मे जाते समय उसने पूछा, "बाबू, आपकी लड़की कहा गई ?"

काबुली के बारे मे मिन्नी के मन मे जो भ्रम था, उसे दूर करने के विचार से मैंने उसे अन्दर से बुला भेजा। वह आई और मुझसे सटकर खड़ी हो गई। वह काबुली अपनी झोली के भीतर से कुछ किशमिश और खुबानी निकालकर उसे देने लगा मगर मिन्नी ने नही लिया। वह दूने सन्देह के साथ मेरे घुटनो से और भी सट गई। पहला परिचय इस तरह हुआ।

कुछ दिन बाद, सुबह किसी काम से बाहर जाते समय मैंने देखा कि मेरी सुपुत्री दर्वाजे की बेंच पर बैठी धड़ल्ले से बाते कर रही है और वही काबुली उसके पैरो के पास बैठा हँस हँसकर उसकी बाते सुन रहा है। बीच बीच मे टूटी फूटी हिन्दुस्तानी मे अपनी राय भी देता जा रहा है। मिन्नी ने अपने पाँच साल के जीवन मे जितने लोगो से परिचय किया था, उनमे पिता के सिवा उसकी बात को इतने धीरज से सुननेवाला अभी तक और कोई नही मिला था। मैंने यह भी देखा कि मिन्नी का छोटा सा आँचल किशमिश बादाम से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा, "तुमने उसे यह सब क्यो दिया ? अब कभी इस तरह न देना।" यह कहकर मैंने जेब से एक अठन्नी निकालकर उसे दी। उसने बिना संकोच के अठन्नी झोली मे डाल ली।

" काबुली हँस हँसकर बाते सुन रहा था

घर लौटा तो देखा कि उस आठ आने के कारण घर मे सोलह आने गड़बड़ मची हुई है। मिन्नी की माँ एक सफेद चमकती हुई गोल गोल चीज़ हाथ मे लिए मिन्नी को डाँट रही है, "यह अठन्नी तूने कहाँ से पाई ?" मिन्नी कह रही थी, "कावुलीवाले ने दी है।" माँ ने पूछा, "कावुलीवाले से तूने क्यो ली ?" मिन्नी ने रुँआसी आवाज मे कहा, "मैंने नहीं माँगी। उसने आप ही दे दी।" मै मिन्नी को उस विपत्ति से उवार कर अपने साथ वाहर ले गया।

मुझे मालूम हुआ कि कावुली के साथ मिन्नी की वह दूसरी ही भेट नही थी। उस वीच लगभग रोज़ ही आकर ग्रौर घूस मे पिस्ता, वादाम और किशमिश देकर उसने मिन्नी के छोटे से लोभी हृदय पर वहुत कुछ अधिकार जमा लिया है।

मैंने देखा कि दोनों मित्रो मे कुछ वँधी टकी वाते ग्रौर हँसी मज़ाक भी होता था। रहमत (कावुली का नाम) को देखते ही मिन्नी हँसकर पूछती थी, "कावुलीवाले, ग्रो कावुलीवाले, तुम्हारी इस झोली मे क्या है ?"

रहमत हँसते हुए जवाव देता, "हाँथी"।

झोली मे हाथी होना असम्भव वात थी। यही उसकी हँसी का सूक्ष्म भेद है। वहुत सूक्ष्म है, यह तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी इस मजाक मे दोनों को खूव मजा आता था। ग्रौर सर्दियों की सुवह में एक जवान ग्रौर एक नावालिग वच्ची की सरल हँसी मुझे भी वहुत अच्छी लगती थी।

उन दोनों मे एक ग्रौर वात होती थी। रहमत मिन्नी से कहता, "खोंखी (मुन्नी) तुम ससुराल न जाना।"

वंगाली की लड़की जन्म से ही शगुर बाड़ी (ससुराल) शब्द से परिचित

होती है। लेकिन हम लोग कुछ आजकल के ढंग के आदमी थे, इस कारण हमने अपनी बच्ची को ससुराल की जानकारी नहीं कराई थी। इसलिए रहमत के अनुरोध को वह ठीक से समझ नहीं पाती थी। मगर किसी बात का कोई जवाब न देकर चुप रहना उसके स्वभाव के खिलाफ था। वह पलटकर रहमत से प्रश्न करती 'तुम ससुराल जाओगे?' रहमत घूँसा तानकर कहता, "हम ससुर को मारेगा।" मिनी यह सोचकर कि ससुर नाम के किसी एक अनजाने जीव की पिटाई होगी, खिलखिलाकर हँस पड़ती।

सर्दियों के साफ सुथरे दिन हैं। पुराने समय में राजा महाराजा लोग इन्हीं दिनों दिग्विजय करने निकला करते थे। मैं कभी कलकत्ता छोड़कर कहीं नहीं जाता, इसलिए मेरा मन सारे संसार में चक्कर काटता रहता है।

अपने घर के कोने में बैठा हुआ भी जैसे मैं सदा परदेस में ही रहता हूँ। बाहर की दुनिया के लिए मेरा मन जाने कितना लालायित रहता है। पर मैं ऐसा अचल हूँ, बिल्कुल पेड़ पौधों के स्वभाव वाला, कि घर का कोना छोड़कर कभी बाहर निकलने का प्रसंग आने पर मेरे सिर पर गाज सी गिर पड़ती है। इसलिए सुबह को अपने छोटे से कमरे में मेज के सामने बैठकर इस काबुली से गपशप करके मेरी घूमने की इच्छा बहुत कुछ पूरी हो जाती है। काबुली रहमत खाँ अपने बादल जैसे गंभीर स्वर में टूटी फूटी बंगला में कहता था, "दोनों तरफ ऊबड़ खाबड़, नीचे ऊँचे पहाड़ों की पाँत, ऊँचे पहाड़, बहुत दुर्गम। जले हुए, काले या लाल रंग के पत्थरों की शिलाएँ, एक के ऊपर एक, बेतरतीब, जिन पर चढ़ना या चलना आसान नहीं। बीच में तंग रेगिस्तानी रास्ता, मरुभूमि। सामान से लदे ऊँट, कतार बाँधकर उस पर चढ़ रहे

हैं। सिर पर साफा लपेटे सौदागर, बैपारी और राहगीर, कोई ऊँट पर कोई पैदल। किसी के हाथ में बर्छा, किसी के हाथ में पुराने ज़माने की बंदूक ......।" काबुली की इसी तरह की अपने देश की बातों से तस्वीरों की तरह ये सब दृश्य घूम जाते थे।

मिन्नी की माँ बहुत ही शक्की स्वभाव की औरत है। उनके मन में हमेशा शक बना रहता है कि दुनिया भर के शराबी खास तौर से हमारे घर को ताक कर दौड़े आते हैं। इतने दिन (बहुत दिन नहीं, क्योंकि अभी उनकी उम्र अधिक नही हुई) इस दुनिया मे रहकर भी यह भय उनके मन से दूर नहीं हुआ कि इस दुनिया मे हर जगह चोर, डाकू, उठाईगीरे, शराबी, साँप, बाघ, भालू, मलेरिया, बिच्छू, चमगादड़ और गोरे भरे पड़े हैं।

रहमत ख़ाँ काबुली के बारे मे उन्हे पूरी तरह से इतमीनान नहीं था। उनके मन का सन्देह अच्छी तरह नहीं मिटा था। वे मुझसे काबुली पर ख़ास नजर रखने के लिए बार बार ताक़ीद कर चुकी थी। पर मै जब उनकी बातो को हँसकर उड़ा देने की कोशिश करने लगा, तो उन्होंने मुझसे बहुत से प्रश्न कर डाले। "क्या कभी किसी का बच्चा उड़ाया नही जाता? क्या काबुल देश मे गुलाम बनाने का दस्तूर नहीं है? क्या एक सयाने भारी भरकम काबुली के लिए एक छोटी सी बच्ची को चुरा ले जाना बिल्कुल असंभव है?"

मुझे मानना ही पड़ा कि बात असम्भव नही है, लेकिन विश्वास के लायक भी नही है। पर विश्वास करने की शक्ति सबमे बराबर नही होती। इसलिए मेरी स्त्री के मन मे भय बना ही रहा। फिर भी मै रहमत ख़ाँ को अपने घर मे आने से न रोक सका।

"क्या बच्चा उड़ाया नही जाता?"

रहमत हर साल माघ के महीने के बीचोबीच अपने देश चला जाता है। वह उन दिनों अपना सारा पावना वसूल करने में बहुत व्यस्त रहता है। क़र्ज़दारों के पास घर घर घूमना पड़ता है। फिर भी वह रोज़ एक बार मिन्नी को दर्शन दे जाता है या यों कहो कि उसे देख जाता है। देखने मे ऐसा लगता है, जैसे दोनों के बीच एक षड्यन्त्र चल रहा है। जिस दिन वह सवेरे नहीं आ पाता, उस दिन शाम को आता है। अँधेरे कोठे के कोने में ढीला ढाला कुर्ता पाजामा पहने, उस लम्बे तड़गे आदमी को एकाएक देखकर सचमुच मन के भीतर एक आशंका उत्पन्न हो जाती है।

लेकिन मिन्नी, "काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला !" पुकारती हँसती हुई दौड़ी आती है और दोनों अनमेल उम्र के मित्रो में वही हँसी मज़ाक होने लगते हैं। यह दृश्य देखकर मन प्रसन्न हो उठता है।

मेरी पुस्तक छप रही थी। एक दिन सुबह अपनी छोटी कोठरी में बैठा हुआ मैं उसी पुस्तक के प्रूफ पढ़ रहा था। जाड़ा विदा होनेवाला था, पर दो तीन दिन से सर्दी चमक उठी थी। लोगो के दाँत बजने लगे थे। खिड़की की राह से सुबह की धूप मेज़ के नीचे मेरे पैरो पर पड़ रही है। उसकी गरमी बहुत भली लग रही है, शायद आठ बजे का समय होगा। लोग हवाखोरी के बाद ठिठुरे ठिठुराए अपने घरो को लौट रहे है। इसी समय खिड़की के बाहर भारी शोर गुल सुनाई पड़ा।

आँख उठाकर देखा, हमारे रहमत खाँ को दो सिपाही बाँधे लिए आ रहे है, पीछे नटखट लड़कों का झुंड हुल्लड़ मचाता चला आ रहा है। रहमत खाँ के कपड़ों मे खून के दाग है, और एक सिपाही

"दो सिपाही बाँधे लिए आ रहे है"

के हाथ मे खून से भरा एक छुरा है। मैंने दर्वाज़े के वाहर जाकर सिपाहियों को रोका वे खड़े हो गए। मैंने पूछा, "मामला क्या है ?......."

कुछ सिपाहियो से और कुछ रहमत खाँ से सुनकर मुझे मालूम हुआ कि किसी ने रहमत खाँ से एक रामपुरी चादर ली थी। उसके कुछ दाम उस आदमी पर वाक़ी थे। रहमत के तगादे करने पर वह आदमी झूठ वोला और दाम देने से मुकर गया। इसी वात पर कहा सुनी हो गई, रहमत को ग़ुस्सा आ गया, और उसने उस आदमी को छुरा मार दिया।

रहमत उस झूठे वेईमान को ऐसी ऐसी गालियाँ दे रहा था जो न सुनने लायक थीं न सुनाने लायक। इतने मे "कावुलीवाला, ओ कावुलीवाला"! पुकारती हुई मिन्नी घर के वाहर निकल आई।

रहमत का चेहरा फ़ौरन खिल उठा। आज उसके कन्धे पर झोली नही थी। इसलिए झोली के वारे मे हमेशा होनेवाले उनके सवाल जवाव आज़ नहीं हो सके। मिन्नी जिस तरह हँसी मे हमेशा पूछा करती थी, उसी तरह छूटते ही पूछ वैठी, "तुम ससुराल जाओगे ?"

रहमत ने हँसकर कहा, "वही तो जा रहा हूँ।"

उसने देखा, इस उत्तर से मिन्नी को हँसी नही आई। तव वह हाथ दिखाकर वोला, "ससुरे को मारता, पर क्या करूँ हाथ वँधे है।"

घातक चोट पहुँचाने के अपराध मे रहमत को कई साल की सजा हो गई।

इसके वाद कुछ दिन मे उस पठान को मै विल्कुल भूल गया। मुझे इस वात का ख्याल भी नहीं आता था कि जव हम लोग घर में वैठकर रोज़ काम काज करते हुए दिन विता रहे थे, तव एक स्वाधीन जाति का वह पहाड़ी आदमी जेलखाने की ऊँची दीवारो के भीतर किस तरह वर्ष काट रहा होगा।

मिन्नी का रवैया और भी लज्जाजनक था। उसने खुशी से अपने पुराने मित्र को भुलाकर पहले एक साईस से दोस्ती की। फिर जैसे जैसे उसकी उम्र बढ़ती गई वैसे वैसे सखाओ के बदले धीरे धीरे एक पर एक सखियाँ जुडने लगी। यहाँ तक कि अब वह अपने बाप के लिखने पढने की कोठरी मे भी नही दिखाई देती। मैंने तो उसके साथ एक तरह से कुट्टी ही कर ली है।

कई साल बाद, एक बार सर्दियो की बात है। मेरी मिन्नी का ब्याह ठीक हो गया है। 'पूजा' की छुट्टियो मे उसका ब्याह होगा। कैलाश पर्वत पर वास करनेवाली भगवती (दुर्गा) के साथ साथ मेरे घर की आनन्दमयी मूर्ति भी पिता का घर अँधेरा करके पति के घर चली जाएगी।

सवेरा बहुत सुहावना और सुन्दर था। बरसात के बाद सर्दियो की नई धुली हुई धूप का रग सोहागे से गलाए गए खरे सोने जैसा हो रहा था। यहाँ तक कि गली के भीतर गदे और एक मे एक सटे घरो के ऊपर भी इस धूप की चमक ने एक अपूर्व शोभा बिखेर दी थी। आज मेरे घर मे रात बीतने से पहले ही शहनाई बजने लगी। उस शहनाई की वशी मेरी छाती की हड्डियो मे जैसे रो रोकर गूँज उठती है। मेरे मन मे समाई हुई, बेटी के वियोग की व्यथा को करुण भैरवी रागिनी शरत् की धूप के साथ जैसे सारे ससार में फैला रही है। आज मेरी मिन्नी का ब्याह है।

सवेरे से ही शोर हो रहा था। लोगो का आना जाना जारी था। आगन में बाँस गाडकर पाल ताना गया था। घर के कमरे, कोठे और बरामदे मे झाड़ फानूस टाँगे जा रहे थे, उससे ठूँ ठाँ की आवाजे निकल रही थी।

मैं अपने लिखने की कोठरी मे बैठा हिसाब देख रहा था। इसी समय रहमत खाँ आ टपका और सलाम करके खडा हो गया।

पहले तो में उसे पहचान ही न सका। न उसके कन्धे पर वह झोली थी, न गर्दन तक लटकते हुए उसके लम्बे पट्ठे। उसके शरीर में भी पहले जैसा तेज नहीं था। अन्त में उसके चेहरे पर पुरानी मुस्कान देखकर मैंने उसे पहचाना। मैंने कहा, "क्यों रे रहमत, कब आया तू ?"

उसने कहा, "कल शाम को ही जेल से छूटा हूँ, बाबू।"

उसकी यह बात कानों में जैसे खटक गई। किसी खूनी को मैंने कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा था। इसे देखकर मेरा पूरा हृदय जैसे सिमट गया। मेरी इच्छा हुई कि आज काम के दिन यह काबुली यहाँ से चला जाता तो अच्छा होता।

मैंने उससे कहा, "आज हमारे घर में एक काम है, मैं फँसा हूँ। आज तुम जाओ।"

मेरी बात सुनकर वह फ़ौरन जाने के लिए तैयार हो गया। लेकिन दर्वाज़े के पास पहुँचकर कुछ हिचकिचाते हुए उसने कहा, "क्या मैं खोखी को एक दफ़ा देख नहीं सकता ?"

वह शायद यह समझता था कि मिन्नी अभी वैसी ही, उतनी ही बड़ी होगी। पहले की ही तरह "काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला," कहती हुई दौड़ी आएगी, और कुतूहल जगानेवाले उनके पुराने हँसी खेल में किसी तरह का अन्तर नहीं पड़ेगा। यहाँ तक कि पहले की मित्रता को ध्यान में रखकर ही रहमत ख़ाँ एक पिटारी अंगूर और काग़ज की पुड़ियों में कुछ किशमिश बादाम शायद अपने किसी देसावरी दोस्त से माँग कर लाया था। उसकी अपनी झोली तो अब थी नहीं।

मैंने कहा, "आज घर में काम है। आज किसी से भेंट नहीं हो सकेगी।"

वह जैसे दुखी हो उठा। वह उस सन्नाटे में दमभर खड़ा रहा,

फिर एक बार निगाह जमाकर उसने मेरे मुँह की ओर देखा। उसके बाद 'बाबू सलाम' कहकर दर्वाज़े के बाहर हो गया।

मेरे मन मे कुछ व्यथा का अनुभव हुआ। मैं उसे पुकारने की सोच ही रहा था कि देखा वह खुद ही लौटा आ रहा है। पास आकर उसने कहा, ये "अंगूर, किशमिश और बादाम खोखी के लिए लाया था, उसे दे दीजिएगा।"

उन्हे लेकर मैं दाम देने लगा। उसने एकाएक मेरा हाथ पकड़कर कहा, "आपकी मुझ पर बड़ी मेहरबानी है। आपकी यह दया मुझे हमेशा याद रहेगी। मगर मुझे पैसे न दीजिएगा। बाबू, जैसे आपकी एक लडकी है, वैसे वतन मे मेरी भी एक लडकी है। मैं उसी के चेहरे को याद करके आपकी खोखी के लिए थोड़ी मेवा लेकर आता हूँ। मैं सौदा बेचने तो आता नही।"

इतना कहकर उसने बहुत ढीले ढाले कुर्ते के भीतर हाथ डालकर कहीं छाती के पास से मैले कागज का एक टुकडा निकाला। सँभालकर उसकी तहे खोली और कागज़ को मेरी मेज़ के ऊपर फैला दिया।

मैंने देखा, काग़ज़ के ऊपर एक छोटे से हाथ की छाप है। फोटो नहीं है, तैलचित्र नहीं है, हाथ के पंजे में ज़रा सी राख मलकर उसकी छाप इस कागज़ पर ली गई है, जैसे अंगूठे की निशानी ली जाती है। बेटी की इस यादगार को कलेजे से लगाए रहमत खाँ हर साल कलकत्ते के रास्तो मे मेवा बेचने आता था।

उस छाप को देखकर मेरी आँखो मे आँसू भर आए। तब मैं यह भूल गया कि वह एक काबुली मेवेवाला है और मैं एक इज्ज़तदार घराने का बंगाली हूँ। तब मैंने समझ लिया कि जो वह है, वही मैं हूँ। वह भी बाप है, मैं भी बाप हूँ। बहुत दूर किसी पहाड़ी घर मे रहनेवाली उसकी बच्ची के नन्हे से हाथ

के वेश में मिन्नी को देखकर काबुलीवाला सिटपिटा गया।

की छाप उसे मेरी मिन्नी की याद दिलाती है।

औरतों ने तरह तरह की आपत्ति की-। लेकिन मैंने एक नही सुनी। दुल्हन के वेश मे मिन्नी लजाती हुई मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उसे देखकर काबुलीवाला पहले तो सिटपिटाया। वह पहले की तरह अपनी वातचीत का सिलसिला नही जमा सका। अंत में हँसकर वोला, "खोंखी, तुम ससुरवाड़ी (ससुराल) जाएगा।"

मिन्नी अव ससुराल का अर्थ समझती थी। वह पहले की तरह उत्तर नहीं दे सकी। रहमत का प्रश्न सुनकर लज्जा से लाल हो गई और मुँह फेरकर खड़ी हो गई। जिस दिन काबुलीवाला से मिन्नी की भेंट पहले पहल हुई थी, वह दिन मुझे याद आ गया। मन न जाने क्यों व्यथित हो उठा।

मिन्नी के चले जाने पर एक गहरी साँस छोड़कर रहमत चुपचाप सहमा हुआ सा जमीन पर वैठ गया। एकाएक उसकी समझ मे आया कि उसकी लड़की भी अव इतनी ही वड़ी हो गई होगी। उसके साथ भी फिर नए सिरे से उसको जान पहचान करना होगी। वह उसे पहले की ही तरह नन्ही मुन्नी सी गुड़िया नहीं पावेगा। और यह कौन जानता है कि इन आठ वर्षो मे उसका क्या हुआ ?

मैंने उसे नोट देकर कहा, "रहमत, तुम अपनी लड़की के पास अपने देश लौट जाओ। तुम दोनों के मिलने का सुख मेरी मिन्नी का कल्याण करेगा' यह रुपया दान करने से मुझे दो एक खर्च काट देने पड़े। औरतें असन्तोष प्रकट किया। लेकिन मंगल के आलोक से मेरा उत्सव चम

नए भारत के निर्माता

लोकमान्य तिलक

बाल गंगाधर तिलक का जन्म २३ जुलाई सन् १८५६ को भारत के पश्चिमी समुद्र तट के एक कस्बे रत्नगिरि मे हुआ था। उनके पिता ने उन्हे बचपन से ही संस्कृत, गणित और मराठी की शिक्षा देना शुरू की, और १० वर्ष की उम्र मे वे संस्कृत समझने बोलने लगे। बाद मे उन्होने पूना हाई स्कूल से इंट्रेस परीक्षा पास की और दकन कालिज मे भरती हो गए। वहाँ से उन्होने सन् १८७६ मे पहली श्रेणी मे बी० ए० पास किया। सन् १८७९ मे उन्होने कानून पढना शुरू किया। कानून पढ़ते समय ही आगरकर से उनकी मित्रता हुई। आगरकर तिलक के साथ पढते थे। दोनो ने मिलकर प्रतिज्ञा की कि हम अपना जीवन देश की सेवा मे लगा देगे। सन् १८८० के शुरू मे दोनो मित्रो ने पूना मे एक स्कूल खोला, और जगह जगह ऐसे स्कूल खोलने की योजना बनाई

श्री आगकर

जिनमें देश भक्त अध्यापक विद्यार्थियों मे देश प्रेम जगा सके। फलत. सन् १८८४ मे डकन एजूकेशन सोसाइटी वनी और सन् १८८५ मे 'फ़रग्युसन कालिज' खुला।

उन्हीं दिनो १ जनवरी सन् १८८१ को तिलक और आगरकर ने मिल कर दो साप्ताहिक पत्र निकाले। मराठी मे "केसरी" और अंग्रेज़ी में "मराठी"। पर अभी साल भी नहीं वीतने पाया था कि दोनों अखवारों पर एक मुसीवत आ गई। उनमे कोल्हापुर रियासत के वारे में कोई गलत खवर छपी थी, जिसके छापने पर दोनों अखवारों में खेद प्रकट कर दिया गया था। फिर भी रियासत ने दोनों पत्रों पर मानहानि का मुकदमा चला दिया और अदालत ने दोनों मित्रो को चार चार मास की क़ैद की सज़ा दे दी। जेल से छूटने पर जनता ने दोनों का शानदार स्वागत किया। जेल के फाटक से जलूस वनाकर लोगों ने उन्हे घर तक पहुँचाया।

उन दिनों जनता के वीच खुले आम देश की आज़ादी की वात करना आसान न था। वाल गंगाधर तिलक ने जनता को जगाने और उसमे आज़ादी की भावना पैदा करने के लिए एक नया तरीक़ा निकाला, उन्होने "गणपति उत्सव" और "शिवाजी जयन्ती" दो नए उत्सव मनाने शुरू किए। महाराष्ट्र मे गणपति उत्सव वहुत पहले से मनाया जाता था। पर वाल गंगाधर तिलक ने उसे नए रूप में ढाला। उसमे देश की हालत पर भाषण और देशभक्ति के गीतों के नए कार्यक्रम जोड़े गए। गणपति या

लाला लाजपत राय

गणेश हिन्दुओं के एक देवता हैं। पर हिन्दू मुसलमान सभी उन उत्सवों में हिस्सा लेते थे। तिलक सरकार की दृष्टि में पहले ही चढ़ चुके थे। इसलिए अंग्रेज़ सरकार उन उत्सवों पर भी कड़ी नजर रखने लगी।

श्री विपिन

कुछ दिनों बाद बाल गंगाधर तिलक पूना की एक आम सभा में कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन के लिए प्रतिनिधि चुन लिए गए। कहा जाता है इस अधिवेशन में लाला लाज और विपिन चन्द्र पाल भी मौजूद थे। तीनों आगे चलकर बाल-पाल-ल नाम से देश के गरम दल के नेता मशहूर हुए।

सन् १८९७ में प्लेग और अकाल के कारण महाराष्ट्र की जनत खासकर किसान जनता दुखी और बेचैन हो उठी थी। तिलक ने ए पैमाने पर और संगठित रूप से जनता की सेवा की और प्लेग की रोकथ काम शुरू किया। उन्होंने सरकार से जनता की रक्षा करने और ल छूट देने की माँग की और किसानों से निर्भय होकर कहा कि अगर तुम्हा लगान देने को पैसे नहीं हैं तो घर का सामान बेचकर लगान मत अदा

सरकार ने प्लेग के बीमारों को घरों से निकाल निकाल कर एक अलग क्वारटीन में जमा कर देना चाहा। अंग्रेज सिपाही इस काम नियुक्त किए गए कि वे घर में घुसकर प्लेग के बीमारों को जब

निकाल कर क्वारंटीन मे ले जावे। उन गोरे सिपाहियों ने अपना काम करने मे अत्याचार करना शुरू कर दिया। घर घर में त्राहि त्राहि मच गई। तिलक ने गोरो के अत्याचारो के खिलाफ़ ज़ोरदार लेख लिखे। एक दिन किसी ने रेंड और आयर्स नाम के दो अंग्रेज अफ़सरों को मार डाला। अत्याचार कुछ रुक गए। पर दूसरी तरह का दमन शुरू हो गया। उन दो अंग्रेज़ों की हत्या के लिए लोगों को उभाड़ने का आरोप लगाकर तिलक पर मुक़दमा चलाया गया। कहा गया कि उन्होंने 'केसरी' में जोशीले लेख लिख-कर जनता को भड़काया, और उन्हे १८ महीने सख्त कैद की सज़ा दे दी गई।

अब तिलक केवल महाराष्ट्र के ही नहीं सारे भारत के नेता बन चुके थे। उनके मुक़दमे की पैरवी और उनकी रिहाई का आंदोलन भारत मे फैल गया। अंग्रेजी पार्लमेंट के कई सदस्य, प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर और डा० हण्टर जैसे लोग तिलक की योग्यता का लोहा मानते थे। उन्होने महारानी विक्टोरिया से तिलक को रिहा करने की अपील की। एक वर्ष क़ैद काटने के बाद वे छोड़ दिए गए। छूटने पर दो दिन के भीतर दस हज़ार से ऊपर आदमी उनके दर्शन के लिए उनके घर आए। देश विदेश के बधाई पत्रों का ढेर लग गया।

सन् १९०५ में कांग्रेस में दो दल हो गए थे--नरम दल और गरम दल। गरम दल के नेता बाल-पाल-लाल थे। "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है", तिलक का यह नारा देश के घर घर मे गूँज उठा था। गरम दलवालों ने विदेशी, खासकर अंग्रेजी, माल के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार का आंदोलन शुरू किया। नरम दलवालों से उनका मतभेद बढ़ा। यहाँ तक कि सन् १९०७ की सूरत-कांग्रेस के बाद गरम दलवालों को कांग्रेस छोड़ना पड़ी, और उन पर जोरो के साथ दमन शुरू हो गया।

सन् १९०८ मे केसरी के कुछ लेखो को लेकर तिलक पर फिर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। उन्होंने अपने को निर्दोप बताते हुए अदालत में कुल मिलाकर २५ घटे तक भापण दिया। उस भापण से देश मे एक नया जीवन आया और अंग्रेजो की अदालतो मे जनता का विश्वास भी घटा, पर तिलक को सजा मिले विना न रही। ५२ वरस की उम्र मे उन्हे छे साल की कड़ी कैद और १,००० रुपए जुर्माने की सजा दे दी गई। जिसके विरोध मे देश ने कई दिन तक हड़तालें मनाई। विद्यार्थी स्कूल कालिज नहीं गए और वम्वई की सूती मिलो के मजदूर लगातार छे दिन तक काम पर नही गए।

तिलक को सजा काटने के लिए वर्मा के माँडले नगर की एक जेल में भेज दिया गया। वही उन्होने गीता पर वह अनमोल पुस्तक लिखी, जिसका नाम "गीता-रहस्य" है। गीता-रहस्य मे श्री कृष्ण के उपदेश कर्मयोग की प्रेरणात्मक व्याख्या की गई है। सजा काटकर माँडले जेल से छूटने पर ५८ बरस की उम्र मे उन्होंने 'होमरूल' आदोलन शुरू किया। फल यह हुआ कि सन् १९१६ मे उन पर फिर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। पर अपील मे हाई कोर्ट ने उन्हें वरी कर दिया। उसी साल लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन हुआ, जिसमें गरम और नरम दलों में एक समझौता हो गया, और तिलक फिर कांग्रेस मे आ गए।

जव तिलक जेल मे थे, उस समय वेलटाइन शिरौल नाम के एक अग्रेज ने "इडियन अनरेस्ट" (भारत मे अशाति) नाम की एक पुस्तक लिखी।

लदन में तिलक १० हौलेप्लेस में ठहरे थे।

लंदन में होमरूल लीग के शिष्ठ मंडल में तिलक (बाएँ से तीसरे)

जिसमे तिलक को हिंसावादी, मुसलमानो का शत्रु, आदि कहा गया था। तिलक ने इंगलैंड जाकर पुस्तक के लेखक पर मानहानि का मुकदमा चलाया। भारत सरकार ने उस मामले मे शिरौल की खूब मदद की। तिलक मुकदमा हार गए। पर उस हार से अंग्रेजी अदालतों की साख को बड़ा धक्का पहुँचा। इंगलैंड मे रहते हुए तिलक ने वहाँ भी भारत के लिए "होमरूल आंदोलन" का खूब प्रचार किया।

भारत लौटने पर १९१८ मे उनकी साठवी वर्षगाँठ देशभर मे धूमधाम से मनाई गई। उस अवसर पर जनता ने उन्हें एक लाख रुपए की थैली भेट की। तिलक ने वह सब रुपए होमरूल लीग को दे दिए। उसके बाद ही देश में १९१९ का वह क़ानून लागू हुआ जिसके अनुसार विलायत की पार्लमेंट ने भारत के लोगों को स्वराज्य के नाम पर कुछ थोथे अधिकार देकर टालना चाहा। १९१९ के दिसम्बर मे कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन में भाषण करते हुए तिलक ने उन अधिकारों को 'अधूरा, असंतोष-प्रद और निराशाजनक' बताया। उसके बाद ही सन् १९२० की पहली अगस्त को बम्बई में उनका देहान्त हो गया। सारा देश रो पड़ा। लाखों रोते बिलखते लोगों के साथ तिलक की अर्थी निकली। गांधी जी, नेहरू जी, लाला लाजपतराय और मौलाना शौकतअली आदि ने अर्थी को कंधा दिया। उनके साथ मीलों लम्बा जलूस था। देश के करोड़ों लोगों ने दस दिन तक तिलक का मृत्युशोक मनाया।